गुरुत्तं

भाग-III

प्रवचनकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशक

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

कृति : गुरुत्तं भाग-III

मंगलाशीष : श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

प्रवचनकार : आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका श्री 105 वर्धस्वनंदनी

प्राप्ति स्थान: निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, बौलखेड़ा, भरतपुर (राज.)

संस्करण : प्रथम सन् 2017
: द्वितीय सन् 2019

प्रतियाँ : 1000

मुद्रक : एन.एस. एन्टरप्राईजिज
2578, गली पीपल वाली,
धर्मपुरा, दिल्ली-110006
दूरभाष : मोबाईल : **9811725356, 9810035356**
e-mail : swaneeraj@rediffmail.com

पुरोवाक्

निज स्वभाव से दूर हो जीव संसार में परिभ्रमण कर रहा है। अनंत सुख प्राप्त करने हेतु जीव को निज स्वभाव में आना ही होगा और इस स्वभाव को प्राप्त करने के लिए, स्वभाव का सद्भाव करने के लिए सुभाव यानि अच्छे भावों को लाना पड़ेगा, प्रज्ज्वलित दीप को लेकर चलना होगा, सम्यक्त्व को प्राप्त करना होगा। यह सम्यक्त्व संसार रूपी वृक्ष के लिए कुठार के समान है। जो सम्यक्त्व उत्तम पुरुषार्थ है, धर्म रूपी वृक्ष की जड़ के समान है, परम ज्योति है, परम तप है, मोक्ष महल का प्रथम सोपान है, पुण्य तीर्थों में प्रधान है, समस्त कल्याणों का बीज है, अनुपम सुख का निधान है व मोक्ष का कारण है, जिस सम्यक्त्व के प्राप्त होते ही जीव का समस्त ज्ञान सम्यक् ज्ञान कहलाता है, ऐसे सम्यक्त्व को प्राप्त करने में जिनेन्द्र देव की वाणी, उनके सूत्र निमित्त हैं। आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी ने नियमसार में कहा भी है **''सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं''**।

अत्यंत पुण्यकर्म का उदय है जो आज वर्तमान में जब चारों ओर भौतिकता की अंधी दौड़ है तब आचार्य देव के मुख से जिनदेव की वाणी को, उनके सूत्रों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिसके माध्यम से जीव महान् सम्यक् दर्शन को भी प्राप्त कर सकता है अर्थात् अनादिकाल से चल रहे चक्र का अंत प्रारंभ किया जा सकता है। जिस संसार रूपी वृक्ष को विषय-कषायों का मिथ्यात्व का, खाद-पानी देकर वृद्धिंगत कर रहे थे उसको सम्यक्त्व रूपी कुठार के माध्यम से उखाड़ा जा सकता है। वर्तमान में आचार्य देव ही जिनेंद्र देव के समान हैं। आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी कहते हैं-

जिणबिबं णाणमयं संजम सुद्धं सुवीयरायं च।
जं देइ दिक्ख सिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा॥ -बो.पा.

आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी कहते हैं जो ज्ञानमय हैं, संयम से शुद्ध हैं, अत्यंत वीतराग हैं तथा कर्मक्षय में कारणभूत हैं, शुद्ध शिक्षा-दीक्षा देते हैं वे आचार्य परमेष्ठी जिनबिंब हैं। उनका उपदेश मिथ्यात्व को विगलित करने वाला है, समाज, देश या भव्य जीवों का सम्यक् मार्ग निर्देशन करने वाला है। भटके हुए जीवों को समीचीन मार्ग दर्शाने वाला है।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज का चातुर्मास गत वर्ष (2015) जयपुर, मानसरोवर में हुआ। अज्ञान अंधकार को तिरोहित करने वाले, जैसे कपिला गाय की पूँछ बहुत लंबी होती है, एक बार घुमाने मात्र से अपने शरीर पर स्थित सैकड़ों मक्खियों को एक साथ उड़ा देती है उसी प्रकार अपनी वाणी से अनेक शंकाओं का समाधान करने वाले, सम्यक्ज्ञान का प्रकाश करने वाले उपदेश पूज्य गुरुदेव ने दिए। उनके बहुमुखी ज्ञान का आँकलन करना सहज साध्य नहीं है।

प्रस्तुत कृति 'गुरुत्तं-III', अपनी चर्या और ज्ञान के माध्यम से जन-जन को उपदेश देने वाले परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज के प्रवचनों का संकलन है। यहाँ चातुर्मास के अंतर्गत हुई 'मीठे प्रवचन श्रृंखला' के प्रवचनों का संकलन किया गया है। जिस प्रकार पूर्वाचार्यों ने श्रावकों को निश्चय व व्यवहार मार्ग बताए, रहन-सहन-संस्कारादि की बातें कहीं। उसी प्रकार एक ओर पूज्य गुरुवर श्री ने आध्यात्मिक ग्रंथ ''परमात्म द्वात्रिंशतिका'' ग्रंथ का वाचन किया। इसी प्रवचन श्रृंखला के अंतर्गत 'जीवन की अंतर्धारा', 'मास्टर मेडिसन' जैसे प्रवचन दिए तो वहीं व्यवहारिक दृष्टि से 'अब तो छोड़ो चमड़े का व्यापार', 'ममता में क्रूरता क्यों?' जैसे मर्मभेदी उपदेश भी दिए।

इनसे वंचित रहने वाले भव्य जनों तक गुरु की यह कल्याणकारी वाणी पहुँच सके, इस हेतु इन प्रवचनों का संकलन ''गुरुत्तं-III'' के रूप में किया गया है।

यदि इस पुस्तक के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से इसका अध्ययन करें। इस पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती, मुद्रण-प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुजनों को पूज्य गुरुवर श्री का मंगलमय शुभाशीष। गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे। शताधिक वर्षों तक यह वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अक्षर शिल्पी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु.....

-आर्यिका वर्धस्व नंदनी

अनुक्रमणिका

1.	अब तो छोड़ो चमड़े का व्यापार	1
2.	बचपन की संजीवनी	15
3.	भगवान् का फरमान	39
4.	जीवन की अन्तर्धारा	65
5.	झुर्रियों की यथार्थता	83
6.	मत कर अर्थ को व्यर्थ	101
7.	परिणाम जवानी के जोश का	121
8.	पुकार नहीं पुचकार	143
9.	माटी पर मिटने वाले	161
10.	निन्यानवे का चक्कर	179
11.	ममता में क्रूरता	201
12.	मास्टर मेडीसन	221

प्रवचन 1

अब तो छोड़ो चमड़े का व्यापार

सरे आम नीलामी की मौहर,

लगती है लड़के के माथे पर,

और सीना तान इज्जत पाने खड़े हैं,

लड़की के द्वारे पर।।

अब तो छोड़ो चमड़े का व्यापार

मानव जीवन अनेक विषमताओं से भरा हुआ है। संसार में एक भी प्राणी ऐसा न मिलेगा जिसके जीवन में निरन्तर धूप ही धूप हो और ऐसा भी कोई प्राणी न मिलेगा जिसने अपनी यात्रा सदैव छाया में पूर्ण की हो। फूलों के साथ शूल अवश्य ही प्राप्त होते हैं, नदी के किनारे भी दो होते हैं एक अनुकूल, दूसरा प्रतिकूल। जीवन भी अनुकूल और प्रतिकूल उभय चक्र का अनुयोग है। कई बार जीवन में अनुकूलता ही अनुकूलता होती है तो कई बार प्रतिकूलता ही प्रतिकूलता और कई बार तो ऐसा लगता है जब दुर्दिन के श्याम घन मंडराते हैं कि इससे ज्यादा घनघोर, भयंकर पाप या दु:ख हो नहीं सकता, किंतु जब पुण्य का उदय आता है तब व्यक्ति सब कुछ भूल जाता है।

महानुभाव ! जब पुण्योदय के समय व्यक्ति पाप करता है उस समय यदि उसे याद आ जाये कि इस पाप का उदय मुझे ही भोगना पड़ेगा तब नि:संदेह मान लेना कि 98-99% व्यक्ति पाप करना छोड़ देंगे। हमने अपने जीवन में कई ऐसे व्यक्तियों को देखा है जो पुण्य के उदय में खूब इतराये और पाप के उदय में उन्होंने आँसू बहाये। कई ऐसे व्यक्तियों को भी देखा जिन्होंने पाप के उदय में खूब पुण्य को कमाया व पुण्य के उदय में बहुत ही अनुकूल फल पाया। जीवन हमारी शर्तों पर नहीं जिया जा सकता, जीने के लिये सामने वाले की शर्तों को भी स्वीकार करना अनिवार्य होता है, यदि सिर्फ अपनी शर्तों पर ही जीवन जीने की छूट मिल जाये तो संसार से जाने की आवश्यकता ही न पड़े। कोई भी तीर्थंकर या महापुरुष संसार से विरक्त इसलिए हुए कि संसार में सुख नहीं है, संसार तो पराधीन है,

बंधन युक्त है, क्षणिक सुखाभास है, ''चार दिन की चाँदनी फिर अंधियारी रात।'' इस संसार में क्या रहना। यह संसार तो नि:संदेह धोखे की टाटी है, ''जिया जग धोखे की टाटी'' धोखे ही धोखा है, चाहे कितनी ही लंबी जिंदगी प्राप्त की हो उस उम्र का अंत होता है, ऐसी कोई आयु शाखा नहीं जो टूट कर अलग न हो, नीचे न गिरे।

व्यक्ति संसार में रहता हुआ अपना जीवन यापन करने के लिए अर्थ पुरुषार्थ का सेवन करता है, काम पुरुषार्थ को भी करता है किंतु जब तक अर्थ पुरुषार्थ धर्म से संरक्षित और धर्म द्वारा नेतृत्व नहीं होता है वही अर्थ अनर्थ का कारण बन जाता है। आचार्य भगवन् शिवकोटि महाराज ने लिखा है-

''अत्थो अणत्थ मूलो'' अर्थ अनर्थ का मूल है। जीवन में यदि पैसा बढ़ता चला जा रहा है तो वह अनर्थों का कारण होता है। जीवन में यदि यौवन अवस्था, सत्ता की प्राप्ति, पर्याप्त भोग सामग्री और विवेकहीनता इनमें से एक भी चीज हमारे जीवन में आ जाती है तो वह दुर्गति के लिये पर्याप्त है। सत्ता को प्राप्त कर अहंकार प्राय:कर के सबके मन में आ जाता है, मुश्किल है सत्ताधारी की प्रवृत्ति विनम्र हो जाये। यदि यौवन से युक्त हो तो नि:संदेह वह स्वयं को तीन लोक का शहनशाह समझता है। यदि निरोगी काया, यौवन अवस्था, सत्ता, अर्थ सब कुछ उसके पास है तो समझो वहाँ पर अनर्थ ही अनर्थ ज्यादा है। इतिहास उठाकर देखोगे तो पाओगे ऐसे बहुत ही कम सम्राट हुए जिन्होंने अनर्थ नहीं किया। जिसने पाप का फल देख लिया हो ऐसा सम्राट अनर्थ करने से बच गया यह एक अलग बात है।

गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त कर जाते हुये विद्यार्थी अपने गुरु को गुरु दक्षिणा देने लगे, उनमें एक राजकुमार भी था, राजकुमार से उनके गुरु

ने कहा-मैं तुमसे गुरुदक्षिणा दूसरे प्रकार से लेना चाहता हूँ, उसने कहा-गुरुदेव ! जो आपका आदेश। गुरुजी ने आश्रम में काम करने वाले व्यक्ति से कहा-इस राजकुमार की पीठ पर दस कोड़े लगाये जायें, राजकुमार भौचक्का रह गया कि यह भी कोई गुरु दक्षिणा है क्या? और सभी से तो अन्य प्रकार की वस्तुयें लीं, किसी ने कोई नियम लिया, फिर मेरी पीठ पर दस कोड़े क्यों? किंतु गुरु का आदेश था और बिना गुरु दक्षिणा दिए विद्या सफल नहीं होती। राजकुमार हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और सेवक ने दस कोड़े लगाये, राजकुमार तड़प गया। जाते समय गुरु ने राजकुमार से कहा-तुम जाकर के राजा बनोगे, राज्य का संचालन करोगे तुम्हें जीवन में याद रहेगा कि पीठ पर जब कोड़ा पड़ता है तो क्या कष्ट होता है इसीलिए किसी को भी दण्ड देने के पहले अपने इन कोड़ों की याद कर लेना।

महानुभाव ! सत्य बात ये है कि व्यक्ति जब जीवन में पहले कष्ट को भोग लेता है, पुनः पुण्य का उदय आने पर आकाश में उड़ता नहीं जमीन पर चलता है, चाहे दृष्टि आकाश में हो पर पैर जमीन पर रहते हैं। तो अर्थ जब तक धर्म से नियंत्रित नहीं होता है तब तक जीवन में नियम से अनर्थ का कारण बनता है।

यह एक प्रेक्टीकल बात है कि जब व्यक्ति के पास पैसा कम होता है तब चार भाई एक थाली में भोजन कर लेते हैं, एक ही कक्ष में घर के दस सदस्य रह लेते हैं, जब पैसा बढ़ गया तब चार मकान होने पर भी घर वालों को रहने की जगह नहीं है। घर से बाहर रह रहे वे माता-पिता जिन्होंने अपने चार-पाँच-छः बच्चों को पाल पोस कर बढ़ा किया वे बच्चे अपने माता-पिता का ख्याल नहीं रख पा रहे। पैसा तो बढ़ा अर्थ तो बढ़ा किंतु अनर्थ आना शुरू हो गया।

ज्यों-ज्यों पैसा बढ़ता है त्यों-त्यों चित्त में से पवित्रता जाने लगती है। ज्यों-ज्यों धन बढ़ता है त्यों-त्यों वहाँ धर्म नष्ट होता चला जाता है, यदि धर्म का अंकुश नहीं है तो। भरत चक्रवर्ती के पास बढ़ा धन भी अनर्थ का कारण बन सकता था, किन्तु उन्होंने नियम ले लिया मैं नित्य दिगम्बर साधुओं को आहारदान देकर ही आहार ग्रहण करूँगा। नियम ले लिया जहाँ पिताश्री आदिनाथ का मोक्ष हुआ वहाँ स्वर्ण जिनालय व रत्नों की मूर्तियाँ स्थापित करूँगा। उन्होंने धन को सद् उपयोग में लगाया।

जो धन तुमने अपनी मेहनत व ईमानदारी से कमाया है उसको हम दावे के साथ कह सकते हैं कि आपके धन का कोई एक पैसा भी ले नहीं सकता, तुम कहीं भी छोड़ देना तुम्हारा पैसा कोई पचा नहीं पायेगा। तुम्हारे भाग्य का ही तुम्हारे पास आयेगा। यह तुम्हारे मन की भूल है कि दूसरे के भाग्य का भी तुम्हें मिल जायेगा। व्यक्ति लाखों कमाता है तो लाखों गँवाता है। जैसा पैसा आता है वैसे चला भी जाता है। एक वेश्या ने धन कमाया सोचती है मैंने जीवन में शरीर बेचकर पाप कमाया अब कुछ पुण्य कार्य कर लूँ उस धन के माध्यम से, वह इसके लिये किसी साधु संन्यासी की खोज में पहुँची गंगा घाट पर, वहाँ कोई फक्कड़ मिला जो अपनी राम चुनरिया ओढ़ कर बैठा हुआ था, वेश्या ने उसके चरणों में प्रणाम किया और कहा-महात्मा जी 16 दिन आपका निमंत्रण हमारे यहाँ है। वह महात्मा जी 16 दिन तक उसके यहाँ खूब भोजन करते रहे और दक्षिणा भी प्राप्त करते रहे। वेश्या ने कहा-महात्मा जी अब मुझे आशीर्वाद तो दे दो, वे बोले किसका आशीर्वाद ? वह बोली-मैं वेश्या हूँ और मैंने पाप किया है, आपको निमन्त्रण करके मैं पापों से मुक्ति चाहती हूँ। अहो ! तूने वेश्या होकर मुझे भोजन कराया, चल खैर कोई बात नहीं, यदि मैं

सच्चा संन्यासी होता तो भ्रष्ट हो गया होता। वह बोली क्या मतलब ? मतलब ये

सोलह तिथि पूरी हुयीं, खायी खीर और खांड।
पौ को धन पौ में गयो तुम वेश्या हम भांड॥

हम तो भांड हैं, ऐसा कहकर वह फक्कड़ वहाँ से चला गया।

महानुभाव ! वेश्या ने जैसे धन कमाया वह वैसे ही चला गया। आप भी आँख बंद करके सोचना अपनी स्वयं से लेकर जहाँ तक तुम्हारी निगाह जाये वहाँ तक कि जिसने बेईमानी से जितना धन कमाया है उतना उसका धन डूबता चला जाता है। ईमानदारी से कमाने वाले का एक पैसा भी नहीं डूबता।

यह तमिलनाडु की घटना है। लगभग 1900 वर्ष पहले की बात एक जुलाहा था, वह कम्बल बनाता व बेचता था, उसके कम्बल बहुत अच्छे होते थे, वह एक हफ्ते बाद अपने कम्बलों का पेमेन्ट ले लेता था। एक व्यापारी ने उससे दो कम्बल खरीद लिये और कहा अगले सप्ताह पैसा दे दूँगा, अगले सप्ताह वह आया तो उसने फिर टालते हुआ कहा अगले सप्ताह पैसे दे दूँगा, इस प्रकार टालते-टालते 3-4 हफ्ते हो गये। उस व्यापारी के मन में बेईमानी थी, वह दो महीने बाद उस जुलाहे से कहने लगा तुम क्यों बार-बार मेरे पास आ जाते हो? वह बोला आपने अभी तक मेरे कम्बल के पैसे नहीं दिये इसलिये। वह व्यापारी बोला मेरी दुकान में आग लग जाने से तुम्हारे वो कम्बल जल गये। जुलाहे ने कहा तुम्हें पैसे नहीं देने तो मत दो किन्तु मेरे कम्बल जल नहीं सकते।

जब व्यापारी नहीं माना तो जुलाहा राजा के पास पहुँचा। राजा के सामने सारी बात रखी। राजा ने सेठ को बुलाया और पूछा, सेठ ने

कहा हाँ मैंने कम्बल खरीदे तो थे किन्तु मेरी दुकान में आग लग जाने से सारे कम्बल जल गये। जुलाहा सामने ही खड़ा था, वह कहता है राजा साहब! यदि मेरे कम्बल जल गये तो मुझे एक भी पैसा नहीं चाहिये, किन्तु मेरे कम्बलों को आग जला नहीं सकती, वह मेरी ईमानदारी व पसीने का है, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि उन्हें आग नहीं जला सकती सत्य कभी आग में जलता नहीं है। राजा को बहुत आश्चर्य हुआ-कि ये तो बहुत लम्बी-चौड़ी बात कह रहा है कि इसके कम्बल जल नहीं सकते, बोले ऐसे कैसे हो सकता है, कम्बल तो सामान्य हैं।

राजा ने कहा-तुम्हारे पास और भी कम्बल हैं क्या? उसने कहा-हाँ ये रहे मेरे हाथ के कम्बल। राजा ने दरबार में ही उन कम्बलों में आग लगवा दी, वे धूँ-धूँ करके जलने लगे, किंतु सभा के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा केवल मिट्टी का तेल जला कम्बल ज्यों की त्यों साबुत बचे रहे। वह कहता है-महाराज ! मैंने जीवन में ईमानदारी का खाया है एक पैसा भी किसी का बेईमानी से लिया नहीं और कभी लूँगा भी नहीं, राजा उसकी ईमानदारी से बड़ा प्रभावित हुआ और सोलह आने उसे इनाम स्वरूप दिये और सेठ से भी उसके पैसे दिलवाये। वह कहता है-महाराज क्षमा करो मुझे इनाम नहीं चाहिये क्योंकि मैंने ईमानदारी करके अपने कर्त्तव्य का पालन किया, किसी पर अहसान नहीं किया।

महानुभाव ! सत्यता तो यह है, मैं कई बार कहता हूँ यदि तुम्हारे भाग्य का है तो वह तुम्हारे पास दौड़ करके आयेगा, तीन लोक में चाहे कहीं भी हो। जिस दाने पर तुम्हारा नाम लिखा है तीन लोक का कोई भी व्यक्ति उसे तुमसे छीन नहीं सकता और जो तुम्हारे भाग्य का नहीं है उसे तुम सैकड़ों-हजारों तालों में भी बंद करके रख लेना उस

चीज को तुम भोग न पाओगे। हाथ में रखा हुआ चला जाता है, मुँह में गया ग्रास भी बाहर निकालना पड़ता है यदि हमारे भाग्य का नहीं है तो। आचार्यों ने कहा भी है-

दूरादभीष्टमभिगच्छति पुण्ययोगात्,
पुण्याद्विना करतलस्थमपि प्रयाति।
अन्यत्परं प्रभवतीह निमित्तमात्रं,
पात्रं बुधाः भवत निर्मलपुण्यराशेः॥

पुण्य के योग से अभीष्ट वस्तु दूरस्थान से भी आ जाती है और पुण्य के बिना हस्ततल पर स्थित भी चली जाती है। अन्य सब तो निमित्त मात्र हैं। इसलिए निर्मल पुण्यराशि के पात्र होओ।

महानुभाव ! व्यक्ति का अधिकार है अपने धन का सदुपयोग करना, किन्तु वह धन न्यायोपार्जित ही होना चाहिए। यदि किसी स्त्री ने अपने शरीर को बेचकर के धन प्राप्त किया है तो वह धन प्रशंसनीय नहीं होता वह धन निन्दनीय होता है। जैसे कोई स्त्री जार पुरुष से गर्भ धारण करे तो वह गर्भवती होते हुए भी प्रशंसनीय नहीं होती निन्दनीय होती है, ऐसे ही यदि कोई व्यक्ति चोरी करके, छल कपट से या अन्य प्रकार के गलत व्यापार से धन इकट्ठा कर रहा है तो उसका वह धन प्रशंसनीय नहीं होता।

जैन दर्शन में लाभ को शुभ नहीं कहा, शुभ को लाभ कहा है। यदि आपने कोई शुभ कार्य किया है तो वही आपका लाभ है, पुण्य ही लाभ है, शुभ ही लाभ है किंतु आपने धन का लाभ प्राप्त किया तो गारण्टी नहीं कि वह शुभ ही हो। अशुभ धन अशुभ का कारण होता है और शुभ भले ही वह धन रूप नहीं भी हो वह लाभ ही होता है।

बालक जब छोटा होता है तो ज्यादा से ज्यादा अपने माँ-बाप के सामने ही हाथ फैला सकता है कुछ माँगने के लिये कि मुझे अमुक वस्तु चाहिये, अन्यथा पुण्यात्मा व्यक्ति तो वह होता है जो कभी किसी के सामने हाथ फैलाता ही नहीं। फिर भी चलो कोई बात नहीं कि बच्चों ने अपने जनक और जननी से माँग लिया, कोई बुराई नहीं, किंतु मुझे आश्चर्य होता है उस युवा पर जो किसी की लड़की को स्वीकार करने जा रहा है, उसे क्या अधिकार है उससे धन माँगने का और उस युवा के पिता को भी क्या अधिकार है? क्या लडकी से धन प्राप्त कर वे धन्ना सेठ बन जायेंगे। मैं समझता हूँ जो व्यक्ति अपने मुँह से माँगते हैं कि लड़के की शादी में इतना धन चाहिये तो वह तो अपने बेटे को बेच रहा है, और जो अपने बेटे को बेच सकता है, बेटे की बोली लगा दे उससे क्या अपेक्षा की जा सकती है। पहले जमाना था जब बाजारों में लड़कियाँ बेची जाती थीं, पशु बेचे जाते थे, दास प्रथा थी किंतु उसका बदला हुआ रूप कहीं ऐसा तो नहीं है कि अब लड़के बेचे जाते हों बाजार में। बाप कहे मैंने अपने बेटे को पढ़ा-लिखा कर योग्य बना दिया है मुझे 20-30 लाख चाहिये। ये कहीं अपने बेटे का व्यापार तो नहीं।

विवाह कहीं ऐसा तो नहीं है जहाँ पर लड़कों को बेचा जा रहा हो, और मैं समझता हूँ लड़के को बेचना चमड़े के व्यापार से ज्यादा खतरनाक है। आप अण्डा, माँस, चमड़े के व्यापार को त्याज्य मानते हैं। मैं समझता हूँ उससे ज्यादा निन्दनीय, घिनोना व्यापार है अपने बेटे की शादी के समय हाथ फैलाकर भीख माँगना और भीख ही नहीं माँगना अपने बेटे को बेचना, यह कहकर के कि मेरा बेटा योग्य है। बेटी देने वाला अपनी बेटी को जो देना है वो दे देगा तुम्हें कहने का अधिकार नहीं है और जो दूसरों की बेटी को स्वीकार कर रहा है, वह

अपने भाग्य पर भरोसा रखे, यदि इतनी सामर्थ्य नहीं है तो किसी की बेटी का हाथ न पकड़े। वह सोचे यदि मुझमें सामर्थ्य है अपना और अपनी पत्नी का पेट भरने की तब तो किसी की कन्या को स्वीकार करे अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि विवाह कर उसे परेशान करे कि जा मायके से लेकर आ। मैं समझता हूँ इससे घिनोना काम कोई हो नहीं सकता किन्तु हर कुनीति, हर बुरी रीति और रिवाज अंत को प्राप्त होते हैं, उसका परिणाम ये हुआ कि आज समाज में लड़कियों की संख्या बहुत कम हो गयी, अनुपात बहुत कम होता चला गया और कुछ ऐसा भी हुआ इस दहेज जैसी दुष्प्रथा का परिणाम जैन समाज की सैकड़ों बेटियाँ जैनेतर समाज में पहुँच गयीं।

महानुभाव ! हमें सोचना चाहिए, अपने धर्म व संस्कृति की रक्षा करने के लिए कुछ विचारना चाहिए। क्या हम स्वयं अपने ही आप अपनी संस्कृति का स्खलन नहीं कर रहे हैं ? यदि कोई पिता अपने बेटे की शादी से पहले अरमान सजाता है कि इतना मिलेगा इतना मिलेगा तो मैं समझता हूँ वह भिखारी से भी गया बीता भिखारी है। क्यों आशा लगाता है? क्यों अपने भाग्य को नहीं संभालता? जब तुम्हारे भाग्य का होगा तो अवश्य आयेगा। खून-पसीने की मिलेगी तो खायेंगे। खून की अर्थात् जिससे खून का रिश्ता है, पिता की सम्पत्ति या दादा की सम्पत्ति उस पर तुम्हारा अधिकार है या स्वयं पसीना बहाकर जो तुमने कमाई है उसको भोगने का तुम्हारा अधिकार है, जिससे तुम्हारा खून का रिश्ता नहीं उसके सामने तुम हाथ फैलाकर पहुँच गये बहुत बड़े आश्चर्य की बात है।

लाखों घर बर्बाद हो गये इस दहेज की होली में,
अर्थी चढ़ी हजारों कन्या, बैठ न पायीं डोली में।

कितनों ने अपनी कन्या के पीले हाथ कराने में,
कहाँ-कहाँ तक मस्तक टेके, आती शर्म बताने में।
जिन पर बीती वही जानता, शब्द नहीं ये कहने के,
कितनों ने बेचे मकान है, अब तक अपने रहने के।
कितनी कन्या राख हो गयीं, इस दहेज की होली में,
अर्थी चढी हजारों कन्या, बैठ न पायीं डोली में॥

यह कुप्रथा समाज से अवश्य ही दूर होना चाहिए और यदि आपको भगवान् की वाणी पर विश्वास है, कर्म सिद्धान्त पर विश्वास है, भाग्य पर विश्वास है, पुरुषार्थ पर विश्वास है तो किसी के सामने हाथ नहीं फैलाना। तुम्हारा है तो अवश्य आयेगा कहते हैं-

बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख।

तुम्हारा नहीं है तो माँगने पर भी नहीं मिलेगा। तुम्हारे भाग्य का है तो तुम जिस सम्पत्ति को ठुकराओगे तो भी वह लक्ष्मी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगी।

इसलिए यदि हो सके तो जो लड़के वाला तुमसे तुम्हारी बेटी की शादी में धन माँगता है उसके साथ शादी नहीं करना, अपने बराबर वाले के साथ शादी करना, अपने से छोटे के साथ शादी कर देना और जो नहीं माँगे उसे ज्यादा देना है और जो माँगे उससे हाथ जोड़ लेना है कि भईया! हम भिखारियों को अपनी कन्या नहीं दे सकते तुम अभी पहले से ही भीख माँगने लगे, हम तो कन्या उनको देंगे जिनके पास कम से कम हमारी कन्या को खाने खिलाने के लिए तो कुछ हो।

आज का विषय था 'अब तो छोड़ो चमड़े का व्यापार' वेश्या अपने शरीर को बेचकर धन कमाती है, यदि किसी पिता ने अपने बेटे

को बेचकर धन प्राप्त किया तो मैं समझता हूँ वह चमड़े के व्यापार से भी बद्तर है। इसलिए यह कार्य नहीं करना है।

दूसरी बात एक और कहना चाहता हूँ-यदि बेटे को पिता की सम्पत्ति जीते जी मिल जाती है तो बेटे को वह सम्पत्ति प्राप्त कर लेना चाहिए, यदि पिता की मृत्यु के उपरांत बेटा सम्पत्ति प्राप्त करता है, पिता देकर नहीं गये तो मरण के उपरांत जो सम्पत्ति होती है उस पर चाण्डाल का अधिकार हो जाता है। या तो जीते जी धर्म को दे जाये या बेटे को दे जाये या अन्य कहीं लगा जाये। जहाँ मृत्यु होती है वहाँ के पलंग-बिस्तर आदि किसे दे दिये जाते हैं ? चाण्डाल को, उन्हें प्रयोग तो नहीं करते, कई जगह ये प्रथा आज भी है तो जीते जी अपनी सम्पत्ति का त्याग कर जाओगे तो नियम से सुगति में जाओगे, चाहे मृत्यु के एक मिनट पहले भी अपने परिग्रह का त्याग किया है तो दावे के साथ कह सकते हैं कि वह व्यक्ति जिसने समस्त परिग्रह का त्याग करके प्राण छोड़े हैं तो नियम से देवगति में ही जायेगा।

यदि बिना त्याग किये जाओगे तो समझो वह सम्पत्ति तुम्हारी नहीं है। तुम्हारे पिता ने नहीं दी तो तुम्हारी नहीं है, भले ही आज कोर्ट ने तुम्हें उस सम्पत्ति का मालिक बना दिया किंतु वास्तव में तुम मालिक नहीं। पहले राजव्यवस्था ऐसी होती थी कि जो पिता अपनी सम्पत्ति को अपने परिवार को, समाज को नहीं देकर जा रहा है, यकायक मृत्यु को प्राप्त हो गया तो उसकी सम्पत्ति सरकार में राजा के खजाने में जमा हो जाती थी। फिर उस परिवार का पालन पोषण राजा की ओर से होता था किंतु पिता अपनी सम्पत्ति छोड़कर नहीं जाता था तो बेटे को लेने का अधिकार नहीं होता था। इसलिये अपने जीवन के अंत में चाहे भले ही वसीयत में लिख देना कि मेरी मृत्यु के उपरांत इन सबका अधिकार है। यदि अचानक आँख बंद हो गयी,

परिग्रह में लीनता के साथ यदि प्राण चले गये तो सुगति नहीं मिलेगी दुर्गति की प्राप्ति होगी।

आप भी अपने जीवन में यह संकल्प लेकर भावना भायें कि हम जीते जी अपने परिग्रह का त्याग कर देंगे, जब शरीर तक को छोड़ कर जाना है, शरीर से भी निःस्पृह होना है, देह से भी ममत्व का त्याग करना है, तो हे भगवन् ! पंचपरमेष्ठी की शरण में इस शरीर का त्याग हो, समस्त परिग्रह का, समस्त पापों का समस्त बाह्य परिचय का त्याग करके आत्मा से अपना परिचय करते हुये मैं अपने पार्थिक शरीर का परित्याग करूँ। आज बस इतना ही...

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

प्रवचन २

बचपन की संजीवनी

बच्चों पर निवेश करने की, सबसे
अच्छी चीज़ है, अपना समय,
और अच्छे संस्कार।

बचपन की संजीवनी

आज हम और आप उपस्थित हुए हैं उस संजीवनी के बारे में जानने के लिए, समझने के लिए, प्राप्त करने के लिए, जिसकी घुटी पीने से जीवन महान बनता है, पवित्र बनता है, शांतिप्रद व सुखद बनता है। बचपन में पहले संजीवनी बूटी पिलायी जाती थी, शरीर को हृष्ट-पुष्ट निरोगी बनाये रखने के लिये, किंतु धर्म के क्षेत्र में देखने से ज्ञात होता है कि बचपन में कोई और भी संजीवनी बूटी हो सकती है, जिसका पान करने से आत्मा हृष्ट-पुष्ट-बलिष्ट, सुखद व शांतिप्रद बन सकती है।

वह बचपन की संजीवनी है 'संस्कार'। संस्कार यदि अच्छे हैं तो संजीवनी बूटी की तरह से हैं, संस्कार यदि गलत हो गये तो समझो संजीवनी बूटी मिली ही नहीं। वह कुसंस्कार हो गया। प्रश्न होता है कि आपने 'बचपन' शब्द ही क्यों कहा? जवानी की संजीवनी आपने क्यों नहीं कही या बुढ़ापे की संजीवनी क्यों नहीं कही? बचपन क्या है?-बाल्यावस्था का नाम है बचपन। बाल सुलभ चेष्टा जहाँ तक रहती है वहाँ तक बचपन ही रहता है। बचपन के संस्कार पचपन तक ही नहीं एक सौ पचपन, हजारों पचपन तक भी रह सकते हैं। बचपन स्वयं में बहुत निराला व गूढ रहस्य वाला होता है बचपन में इतनी शक्ति रहती है कि एक बार जो आँखों से या कानों से ग्रहण कर लिया या मन के द्वारा ग्रहण कर लिया उसका संस्कार यावज्जीवन रहता है। आज भी कई लोग कहते हैं-हमने जो बचपन में पाठशाला में छहढाला या भक्तामर याद कर लिया सो तो याद है, अब तो कुछ पक्का याद होता ही नहीं है।

बचपन में ग्रहण किये गए संस्कार सहज छूटते नहीं हैं। बचपन शब्द का अर्थ इस प्रकार समझ सकते हैं कि बचपन शब्द में चार अक्षर हैं।

'ब'-बकार कहता है बचपन में बल अधिक होता है। बालकों का बल बड़ों से ज्यादा होता है, क्यों? इसलिए यदि बड़े बालक रोते हैं तो उनकी इच्छा पूरी नहीं की जाती किंतु छोटे बच्चों की भावनाओं को कभी कुचला नहीं जाता। माता-पिता स्वयं कष्ट सहन कर लेंगे पर बालकों की जिद को पूर्ण करते हैं। बालकों का हठ, उनका आग्रह व उनकी जिद पूरी होती है अतः बालक बलवान् होते हैं। किशोर, युवा या प्रौढ़ वृद्ध तो झुक भी जायेगा बात भी मान जायेगा किंतु बाल हठ तो बाल हठ ही है। उसे चन्द्रमा चाहिये तो चाहिये, कैसे भी लाया जाये भले ही थाली में रखकर ही दिखाया जाये। बालकों में बंधुत्व की भावना भी होती है, बालकों में बचपना होता है, बालकों में ये विशेषतायें पायी जाती हैं।

'च'-चकार कहता है-बालकों में चतुराई भी होती है चपलता व चंचलता भी होती है और जो इनसे सहित नहीं है तो वह बालक कैसे होगा? बालक में चरित्रता होती है, उनमें गंदे संस्कार सहज नहीं आते सहजता में वे बालक कोरे कागज की तरह से होते हैं।

'प'-पकार कहता है-बालकों में बचपन में पवित्रता होती है। बालक पवित्र हृदय वाले होते हैं इसीलिये कहते हैं कि बालक में ईश्वर का वास होता है। बालक में भगवान् बसते हैं। बालक में सरलता, सहजता व भोलापन, निःसंगपना, निःराग, निःद्वेष, निर्मोहपना है इसीलिये तो उसे भगवान् का रूप कहा जाता है। वह बालक परमात्मा का बीज है। बचपन ऐसा बीज है जिस बीज को परमात्मा भी बनाया जा सकता है और उस बीज को पशु भी बनाया जा सकता है।

'न'-नकार शब्द कहता है-जो नकलची हो अथवा नटखट हो वह बचपन होता है। अथवा बालक कैसे होते हैं? नखरेबाज जिन्हें नजर ज्यादा लगती है या बचपन वह है जिसमें सहज नग्नपना हो। बाहर से भले ही कपड़े पहन लिये किंतु अंतरंग में नग्न रहता है उसके मन में कहीं कोई कषाय भाव, विषयवासना रूप परिणाम, पाप का परिणाम नहीं पाया जाता है।

सच मानें तो बचपन क्या है? वह नग की तरह से है, रत्न की तरह से है नग कहिये तो पापों से रहित। बालक में जो नव्यता व नवीनता पायी जाती है, नूतनपना पाया जाता है उसके नये-नये करतब व विचार, सूझबूझ अलग ही होती है। वह बाल्यावस्था इसीलिए नग कही जाती है।

बालक में जो वास्तविक में बाल्यपना है वह नद की तरह से भी होता है। नद अर्थात् 'लहरों से युक्त नदी की तरह'। मन कहाँ-कहाँ की सैर करता है, बचपन में जितने विचार आते हैं उतना वृद्ध नहीं सोचता, वृद्ध यदि सोचता है तो अतीत को लेकर सोचता है वह तो अतीत बीत गया उसकी तो लिमिट है उतना ही सोचेगा किन्तु जो भविष्य अभी आया नहीं है उसकी कोई लिमिट नहीं है। वह बालक बचपन में सोचता है मैं ऐसा बनूँगा, ऐसा करूँगा एक-एक मिनट में कितने विचार बना लेता है इतनी लहरें उठती हैं मन में, यदि कोई उन विचारों की पूर्ति करने लग जाये तो कई भवों में भी विचारों की पूर्ति न हो पायेगी। उन्हें चिंता नहीं है यह बात निश्चित है किंतु विचार/मनोरथ बहुत हैं। उनकी भावनायें बहुत बनती व उठती हैं, तो बालक 'नद' की तरह से होते हैं।

'न' शब्द कह रहा है नव अंक 'नवांक' की तरह से अखण्डता का प्रतीक। चाहे व्यक्ति वृद्ध भी हो जाये किन्तु बचपन की चेष्टाओं

की स्मृति करता है तो पुनः उसे हँसी आती है। बालक वृद्ध भी हो जाये तब भी थोड़ा-बहुत तो बचपना रहता है। नौ का अंक कभी खण्डित नहीं होता ज्यों की त्यों रहता है इसीलिए व्यक्ति को बचपन की स्मृतियाँ ज्यों की ज्यों याद रहती हैं। अथवा बालकों का मन 'नवनीत' की तरह से होता है। इतना मुलायम होता है यदि कोई बच्चे से प्यार करे चाहे वह मित्र हो या शत्रु वह बालक उसके प्रति समर्पित हो जाता है। यदि माँ कहे पड़ौसी की माँ के यहाँ नहीं जाना है किंतु पड़ौसी की माँ यदि वात्सल्य भाव से बुलाती है तो वह वहाँ चला जाता है। उसका हृदय ऐसा नवनीत की तरह होता है।

महानुभाव ! ऐसे बचपन में यदि संजीवनी का काम करने वाली हैं तो चार चीज हैं। सं जी व नी।

सं-अर्थात् सम्यक्त्व, संयम, सम्यग्ज्ञान, संतोष, संवेगभावना ये 'सं' अक्षर इन सबका प्रतीक है। बचपन में जिसके जीवन में सम्यक्त्व के, सम्यग्ज्ञान के, संयम के, संतोष के, संवेगी परिणाम के संस्कार आ गये तो उन संस्कारों को नष्ट नहीं किया जा सकता। जिसने संजीवनी का पहला घूँट ले लिया तो बस उसका जीवन वास्तव में जीवंत हो गया।

'जी'-अर्थात् जीवंतता। जी कहिये तो-जीना, यदि वास्तव में सम्यक्त्व आदि आ गया तो उसका जीवन जीना बन गया, जीना वह कहलाता है जो ऊपर चढ़ने के काम आता है और यदि कुसंस्कार की छाया पड़ जाये तो वह जीना उतरने के काम भी आता है। वह पतन का भी कारण होता है। तो महानुभाव ! यदि बचपन में 'जी' के संस्कार पड़ जायें। जी.के. का आशय आप कहेंगे जनरल नॉलिज। पर जी के का आशय यदि बचपन में ही किसी के नाम के साथ जी लगाने के संस्कार पड़ जायें तो फिर वह आगे भी सबसे जी लगाकर

ही बोलता है। 'जी' से कहें तो 'जीनियस'-बचपन से ही जो बालक कुशाग्र बुद्धि होते हैं नि:संदेह वे संस्कारवान् बालक दूसरों के लिये व स्वयं के लिये सुखप्रद होते हैं।

'व'-कहिये तो 'वत्सलभाव'। बचपन में जितना नि:स्वार्थ प्रेम और वात्सल्य उमड़ता है, उतना बड़ेपन में नहीं, व्यक्ति ज्यों-ज्यों बड़ा होता चला जाता है, समझ बढ़ती चली जाती है तो पुन: वह वात्सल्य अंदर से नहीं आता है। बचपन में जो आत्मा के गुणों की वर्धमान अवस्था होती है वह पुन: पूरे जीवन में नहीं होती है। बचपन तो वरदान की तरह से है, वह वरदान रूप अवस्था बचपन के अतिरिक्त दूसरी नहीं हो सकती। बचपन तो वसुगुणी बनाने वाला होता है।

'वसु' माने आठ 'गुणी' माने गुणी बनाने वाला। आठ मूलगुणों को बचपन से ही संकल्पपूर्वक ले लिया तो जीवन में ये नियम टूटेगा नहीं और बचपन में वे संस्कार नहीं लिये तो यौवन में लेना कठिन होता है। बचपन से जो वसुगुणी आठगुणों का पालन करने वाला हो वह नि:संदेह वंशवर्धक होता है अपने वंश का नाम समुज्ज्वल करने वाला होता है।

'नी'-नी अर्थात् नीति। जो बचपन से ही नीति व रीतियों को पालन करने वाला होता है। बचपन से नि:रागी, निर्लज्ज, निर्दोष, निर्मोह, निष्कलंक अवस्था यदि लेकर के चल रहा है तो कई बार व्यक्ति कहते हैं महाराज जी अच्छा हुआ जो बचपन से हमें ऐसे संस्कार मिले तब से लेकर आज तक कोई गलत काम नहीं किया। बचपन में एक बार झूठ बोला और तुरंत तमाचा पड़ा था तब से आज तक झूठ नहीं बोला। बचपन की पिटाई जिन गलत कार्यों पर हुयी वह दिन आज भी याद आ रहा है, कि तब से हमने वह गलत कार्य कभी

नहीं किया। महानुभाव ! जो नीति, रीति या संस्कार एक बार आ गये तो यही कहलाती है 'संजीवनी'।

ये संस्कार ही सबसे बड़ी संजीवनी हैं और यदि अच्छे संस्कार बचपन में आते हैं तो व्यक्ति का पचपन तक सुधरा रहता है। वह 9 साल से लेकर 90 साल तक के जीवन को सुखपूर्वक, आदर सम्मानपूर्वक व्यतीत करता है। यदि बचपन में गलत संस्कार पड़ गये तो-

एक कदम उठाया था राहे शौक में,
ता उम्र मंजिल मुझे खोजती रही।।

शौक-शौक में गलत कदम एक बार उठा लिया, बस शौक-शौक में एक बार बीड़ी-सिगरेट हाथ में ली और पीना सीख गये, या शराब, अंडा, माँस आदि का सेवन करना सीख गये, शौक-शौक में मित्र ने खिला-पिला दिया वह गंदा संस्कार आ गया, जीवन में पुनः कई बार संकल्प लिया कि छोड़ दूँगा, छोड़ भी देते हैं किंतु बार-बार नियम टूट जाता है। ऐसे कई व्यक्ति मिले जो कहते हैं हमने कई बार यह आदत छोड़ी पर क्या करें छूटती नहीं।

कुसंस्कार पहली बार जब आता है तब देर लगती है, दूसरी बार इतनी देर नहीं लगती, कोई भी बुरा काम जिसे आपने कभी किया नहीं है पहली बार करने में आपकी आत्मा काँपेगी, डरेगी किन्तु पहली बार कर लिया तो दूसरी बार डर नहीं लगेगा, तीसरी बार से तो संस्कार ऐसे पड़ जाते हैं कि वह कार्य करते चले जाते हैं। अतः पहली बार उस पाप को प्रारंभ ही न करो वह पाप तुम्हें जीवन में छू भी न पायेगा। पहली बार करके आप सोचो कि छोड़ दें कठिन है, फिर भी छूट सकता है, दूसरी बार करके सोचो कि छोड़ दें तो और ज्यादा कठिन है, तीसरी बार में और ज्यादा कठिन है। किंतु ये बात

भी है संकल्प में वो शक्ति है कि संकल्प का धनी व्यक्ति अपने जीवन में कैसे भी बुरे संस्कार या आदत हो, उसे छोड़ देता है। वह अंजनचोर सप्तव्यसनी था किंतु संकल्प लिया तो उन संस्कारों को तोड़ दिया, जब कुसंगति में फंसा था तब बुरे संस्कार आ गये थे।

महानुभाव ! यह बाल्य अवस्था वास्तव में जल की तरह से निर्मल है, गीली मिट्टी की तरह से है, अनगढ़ पत्थर के समान है जैसा गढना चाहो गढ़ सकते हो, यह कोरे कागज की तरह से है जो लिखना चाहो सो लिखा जा सकता है, सीडी या कैसिट की तरह से है जो एक बार रिकोंड कर दिया दुबारा खाली करके भरोगे तो फिर वह साफ नहीं रहेगी। सिलेट या बोर्ड जब वह नया है तो अक्षर सुन्दर स्पष्ट आयेंगे बार-बार मिटाकर लिखा तो चौक का अंश रहेगा उतने साफ अक्षर नहीं आयेंगे।

उस निर्मल स्वच्छ बाल्य अवस्था में ही संस्कारों का बीजारोपण किया जा सकता है। जो खेत किसान केवल जोतता ही जोतता रहा उसमें पुनः कोई भी बीज बोओ तो अच्छी फसल आयेगी और जिस खेत में पहले फसल बो दी फिर उसे उखाड़कर पुनः बोयी, पुनः उजाड़ कर बोयी तो इससे उस खेत की शक्ति नष्ट हो जायेगी उतनी अच्छी फसल फिर न आ पायेगी। चित्त की भूमि पर एक बार यदि कुसंस्कारों की फसल आरोपित हो जाती है तो पुनः उसे काट करके दूसरी फसल बोना कठिन होता है। इसीलिये अपने चित्त की भूमि पर कुसंस्कारों को मत बोओ। यदि सुसंस्कार के बीज नहीं हैं तो चित्त की भूमि को खाली रहने दो, जब बोयेंगे तब अच्छा ही बोयेंगे बुरे बीज नहीं बोयेंगे जिन्हें बोकर बार-बार काटना पड़े।

महानुभाव ! कुसंस्कारी था वह कंस जिसने अपने ही माता-पिता को जेल में डाल दिया, वह ललितांग कुमार जो कुसंगति में पड़कर

अंजन चोर बन गया, कितने ही उदाहरण कुसंस्कारों के हैं चाहे वह राजा बक का हो, चाहे सुभौम चक्रवर्ती का हो, चाहे और भी किसी कुसंस्कारी का हो। भगवान् आदिनाथ का पोता मारीची जिसने अच्छे कुल में जन्म लिया किंतु कुसंस्कारों के कारण ऐसा भटका कि पूरे चौथे काल तक भटकता ही रहा अन्त में मोक्ष हुआ, अन्यथा भगवान् आदिनाथ के परिवार में आदिनाथ व उनके 100 के 100 पुत्र मोक्ष गये। उनके भी अनेक पुत्र मोक्ष गये, उनके साथ दीक्षा लेने वाले कई राजा-महाराजा 4000 में से एक को छोड़कर के 3999 राजाओं ने दीक्षा ली और अपना कल्याण किया।

कहने का आशय यह है कि कुसंस्कार उस बेशर्म के पेड़ की तरह से हैं कि एक बार लगा दो फिर उसकी लकडी कहीं भी डाल दो तो जम जायेगी उसे काटते रहो-काटते रहो वह नष्ट नहीं होगी। उसकी जड़ बहुत गहरी जम जाती है। बाँस के पेड़ को काट दो तो पुनः बढ़ जाता है, कितनी भी बार काटते रहो बढ़ता रहता है, ईख तो ज्यादा से ज्यादा दो या तीन बार बोयी ही जमीन पर फल देती है काटने पर, किंतु बुराई के पेड़ एक बार जम जायें उसके झाड झंकड़ बबूल के कांटे की तरह दीर्घकाल तक जमे रहते हैं अच्छाई के पेड़ बार-बार संस्कार डालने पर तब जम पाते हैं। अंगूर की बेल लगाई सूख गयी, दुबारा लगायी फिर सूख गयी, या आम के 100 पेड़ लगाये तो पहली बार में 20-30 में फल लगे बाकी सूख गये पुनः दुबारा, तिबारा लगाये। बुराई तो सहजता में आ जाती है उसे प्राप्त करने के लिये कहीं जाना नहीं पड़ता क्योंकि अनादिकाल से ही बुराई के संस्कार पड़े हुये हैं कोई भी ऐसा स्कूल नहीं है जहाँ पर सिखाया जाता हो कि गाली देना यहाँ पर सीखिये।

कुसंस्कारी व्यक्ति की संगति में जाने से स्वतः ही कुसंस्कार आ जाते हैं। स्कूल-पाठशालायें व शिविरों के आयोजन तो अच्छे संस्कारों

को देने के लिये किये जाते हैं। कुसंस्कार अग्रहीत मिथ्यात्व के संस्कार, पापों के संस्कार अनादि काल से पड़े हैं जो स्वत: ही जाग्रत हो जाते हैं। बुराईयों के बारे में जहाँ तक देखोगे वहाँ तक भरी ही पड़ी हैं ऐसे अनेक प्राणी मिलेंगे जिनमें बहुत कुसंस्कार हैं। अच्छाई के संस्कार तो अच्छे व्यक्तियों से ही मिलेंगे। अच्छे व्यक्तियों ने सुसंस्कारों से अपना जीवन भी परम पवित्र बनाया व दूसरों के लिये भी अच्छे निमित्त बने।

एक चित्रकार था, उसने बाल्यावस्था के किसी बालक का एक चित्र बनाया। वह चित्र बहुत सुंदर, भोला-भाला सा था। कुछ समय पश्चात् वह चित्रकार वृद्ध हो गया, वह सोचता है मैंने जीवन में बहुत चित्र बनाये सबसे पहले मैंने जो चित्र बनाया वह इतना सरल भोला-भोला था जिस चेहरे में मैं भगवान् के दर्शन करता हूँ आज मेरे मन में आया है कि किसी क्रूर परिणामी का चित्र बनाऊँ। इसके लिए वह एक जेल में पहुँचा। एक व्यक्ति जिसके बड़े-बड़े बाल, आँखें लाल, बड़ा सा चेहरा, जेलर ने उसे बताया कि इस कैदी ने बहुत सारी हत्यायें की हैं, लूटपाट की है, इस जेल का सबसे बड़ा अपराधी ये ही है इसलिये इसके बंधनों को कभी खोला नहीं जाता बेड़ी हथकड़ी सदा इसके हाथ में पड़ी रहती है।

वह चित्रकार भी उसका खूंखार चेहरा देखकर डर गया, वह कहता है हे भगवान् ! मुझे क्षमा कर इस क्रूर प्राणी का मैं चित्र बनाने जा रहा हूँ, भगवान् को प्रणाम करने के लिये उसने अपनी पहली वाली तस्वीर निकाली, वह जिस चेहरे को देखकर भगवान् को याद करता था कि इससे ज्यादा भोलापन भगवान् में कहाँ होगा, ज्यों ही तस्वीर निकालकर प्रणाम करने को हुआ तो उस कैदी की दृष्टि उस तस्वीर पर पड़ी जैसे ही उसने वह तस्वीर देखी चित्रकार से पूछा आप पहले यह बताईये आपने यह चित्र किस बालक का बनाया है वह

किस गाँव का रहने वाला था? तो चित्रकार ने बताया-इस चित्र के लिये मैं उस स्कूल में गया था वहाँ मैंने इस भोले बालक को बैठे देखा और यह चित्र बनाया।

यह सुन वह कैदी फूट-फूट कर रोने लगा और बोला वह बालक और कोई नहीं मैं ही था, स्कूल के बाद से ही मैं कुसंगति में पड़ता चला गया। सब मुझे बहुत प्यार करते थे, मेरी गलतियों को कोई बताता नहीं था और लाड़-प्यार में सब मेरी गलतियाँ नजर अंदाज कर देते थे जिसके कारण मैं बिगड़ता चला गया और ऐसा बिगड़ा कि सिंह से भी ज्यादा क्रूर आज मैं हो गया। वह चित्रकार कहता है अब चित्र बनाने से क्या फायदा यह भी इसी का चित्र है और जिसे बनाऊँगा वह भी इसी का चित्र होगा। किंतु फिर भी उसने चित्र बनाया और एक साथ रखा उस पर लिखा-कि इंसान में जब कुसंस्कार आते हैं तब वह ऐसे से ऐसा भी हो सकता है।

और एक चित्र ऐसा बनाया जिसमें एक बालक जो बचपन में ही अनाथ हो गया था, सेठ के यहाँ गाय चराता, और सद्संगति करता। एक दिन जब सेठ ने उसे खाने को राबड़ी नहीं दी भगा दिया तो वह साधु संगति में चला जाता है सेवा करता है, परिश्रम करता है वह भी साधुता में रम गया। जब उसका मन साधु हो गया तो तन से भी वह साधु बन गया, ऐसा वह चित्र जिसमें एक चित्र में ग्वाला व दूसरे में साधु का रूप था। वह साधु बहुत प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ, एक दिन उसी नगर में उसी सेठ के यहाँ उसका आहार हुआ सभी आश्चर्य करते हैं कि यह तो वही है। वह साधु अपना परिचय देता है कि-आँगन भी वही है, सेठ-सेठानी भी वही हैं, मैं भी वही हूँ सिर्फ समय बदल गया। जहाँ पर-

माँगे मिले न राबड़ी कहो कहाँ लो वर्ण।
मोहन भोग गले में अटका आ संतों की शरण।।

जिस आँगन में मांगने से मुझे राबड़ी नहीं मिली, धक्का देकर निकाल दिया था जबकि मैं सबकी सेवा करता, उनकी गायें चराता था। किंतु आज मात्र सुसंस्कारों के कारण उसी आँगन में मेरा सम्मान हो रहा है।

महानुभाव ! संस्कारों के कारण एक सामान्य पुरुष भी राजा बन सकता है। चन्द्रगुप्त का बचपन सामान्य था किंतु महापुरुष बना। चाहे शिवाजी सामान्य व्यक्तित्व का धनी सामंतपुत्र था किन्तु जीजाबाई ने जब संस्कार दिये तो उस समय पूरे विश्व में वह प्रसिद्ध हुआ। महाराणा प्रताप की परम्परा में और भी राणा हुये चाहे राणा सांगा, राणाकुंभा, राणा उदयसिंह कितने ही राणा हुये किंतु रानी जयवंता ने जो संस्कार प्रताप को दिये उन संस्कारों के कारण वह राणा प्रताप नहीं महाराणा प्रताप के नाम से प्रसिद्ध हो गया न केवल राजस्थान की धरती अपितु पूरे भारत वर्ष की धरती एक श्रेष्ठ देश भक्त के रूप में उसे स्वीकार करती है।

धन्य है वह माँ सुमित्रा जिसने लक्ष्मण जैसे पुत्र को जन्म दिया जो सदैव अपने भाई के चरणों में समर्पित रहा। धन्य है वह माँ कौशल्या जिसने राम जैसे पुत्र को जन्म दिया जिसने अपने पिता की आज्ञा पालन करने के लिए वनवास स्वीकार किया। धन्य हैं वह मिथिला नरेश जनक और वैदेही जिन्होंने सीता को जन्म दिया और ऐसे संस्कार दिये कि कितनी ही प्रतिकूलताऐं आयीं किंतु वह अपने धर्म से च्युत नहीं हुयी।

धन्य है वह मैना सुंदरी पिता ने यदि विवाह कुष्ट रोगी से भी कर दिया तब भी कोई गिला और शिकवा नहीं। संस्कारों के कारण

ही उसने समता भाव धारण किया। सीता ने संस्कारों के कारण ही यह नहीं कहा कि उन्होंने मुझे घर से निकाला तो दोष उनका है, दोष किंचित भी उनका नहीं है मेरे ही कर्मों का उदय है। राजुल ने नेमि को दोषी सिद्ध नहीं किया, अंजना ने पवनंजय को दोषी सिद्ध नहीं किया। संस्कारवान् व्यक्ति वही कहलाता है जो दूसरों को दोषी सिद्ध नहीं करता स्वयं अपने ऊपर दोष ले लेता है।

तो महानुभाव ! संस्कारों का यह प्रभाव रहा कि संस्कारों के कारण ही वह व्यक्तित्व महान् बन गया। जीवन तो जल की तरह से है जल में अगर मिट्टी घोल दो तो वह कीचड़ बन जायेगा, केशर मिला दो तो केशरिया हो जायेगा, पानी वही है जैसी संगति करेगा वैसा ही रंग हो जायेगा।

पानी तेरा कैसा रंग, जैसे रंग का करता संग।

महानुभाव ! जल वही है-जिसे नीतिकारों ने लिखा-

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति बूंद गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये वैसा ही फल दीन॥

वह संस्कारों का ही प्रभाव है वही बूँद केले के पत्ते पर गिरती है तो कपूर बनती है, सांप के मुख में गिरती है तो विष बन जाती है, सीप में गिरती है तो मोती बन जाती है। सामान्य जल की बूँदें भी लवण समुद्र में खारी हो जाती हैं, क्षीर समुद्र में क्षीर बन जाती हैं, घृतवर में घृत बन जाती हैं जैसा समुद्र है वह वैसी हो जाती हैं।

ऐसे ही हमारा जीवन नाना प्रकार की संभावनाओं से युक्त है। बहुत संभावनायें छिपी हैं, उनमें से किसी भी एक संभावना को हम चाहें तो प्राप्त कर सकते हैं, उस लक्ष्य को पा सकते हैं। बचपन अनेकों पगडंडियों का जंक्शन है जहाँ से अनेक पगडंडियाँ निकलती

हैं, हम जिस पगडंडी को चाहें स्वीकार कर सकते हैं। बचपन वह किरणों का समूह है जिससे हम मूलतत्त्व तक पहुँच सकते हैं। संस्कारों को प्राप्त करने की यदि कोई अवस्था है तो वह बाल्यावस्था है। महात्मा गाँधी जी ने बचपन से ही संस्कार प्राप्त किये, एक बार उनके जीवन में एक कुसंस्कार आया उन्होंने एक बार माँस खाया उसके बाद रात भर ऐसा लगता रहा कि बकरा मेरे पेट में बोल रहा है तब से उन्होंने माँस का त्याग कर दिया। विदेश जाने लगे तो माँ ने नियम दिला दिया सोचा कहीं बाहर जाकर भ्रष्ट न हो जाये, नियम का पालन किया और उनका जीवन महान् बन गया। वे करमचन्द्र गांधी बाद में बापू कहलाने लगे, पिता तुल्य स्थान उन्होंने पाया। उन्हें जब राष्ट्रपति मुख्यमंत्री आदि का पद दिया जाने लगा तो उन्होंने सबके हाथ जोड़े न प्रधानमंत्री बनना स्वीकार किया न कोई पद स्वीकार किया, देश ने मेरी सेवा का मूल्य पहचाना, मुझे सही जाना ये ही मेरे लिए पर्याप्त है, देश के सभी लोग अहिंसा में विश्वास रखें। तब उस समय के नागरिकों ने राष्ट्रपिता का पद देकर उन्हें सम्मानित किया।

महानुभाव ! ये सब संस्कारों की बात है। संस्कारों के माध्यम से कुछ भी असंभव नहीं है। मन्दालसा ने-

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि संसार माया परिवर्जितोऽसि।

आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी जी की माँ पालने में झुलाती हुयी गा रही हैं-तुम शुद्ध हो, सुबुद्ध हो, तुम कर्म कालिमा से रहित हो, तुम निर्विकारी हो, तू तो सिद्ध है, अरिहंत है, केवलज्ञान का धनी है तुझे वीतरागी बनना चाहिये, संसार की मोह माया में फंसना तेरा स्वभाव नहीं है, अपने स्वभाव को पहचान। कहते हैं उन्होंने अपने सात पुत्रों को मुनि बना दिया। आठवाँ पुत्र गर्भ में आया, तो दादी माँ

कहने लगी-बहूरानी ! क्या सबको ही मुनि बना देगी किसी पुत्र को राज्य का भार सौंपने के लिये छोड़ेगी या न छोड़ेगी मन्दालसा ने कहा-ठीक है जैसी आपकी इच्छा।

वह गर्भस्थ अवस्था में राजनीति का अध्ययन करती रही, पराक्रम शौर्य का अध्ययन करती रही। जब बालक का जन्म हुआ तो उसने कहा-सासू माँ-मेरा यह बेटा राज्य को संभालने में सक्षम होगा। सास को विश्वास नहीं था उसे डर था कि कहीं बहूरानी ने इसे भी मुनित्व के संस्कार दे दिये और इसे भी शुद्धोऽसि-बुद्धोऽसि कहकर घुटी पिला दी तो यह भी साधु बन जायेगा इसलिये इसका पालन पोषण तू नहीं मैं करूँगी, वह बेटा अपनी दादी के पास 16 वर्ष रहा, संयोग की बात एक दिन युद्ध का समाचार आया। उसके पिता भी युद्ध के लिये जा रहे थे, वह पिता के पास गया बोला पिताश्री आपका बालक अब युद्ध के लिये समर्थ हो गया है इसीलिए युद्ध के लिए आप नहीं मैं जाऊँगा, वह दादी माँ के चरण छूता है उन्हें ही अपनी माँ समझता था, उसे उस समय बताया गया कि तुझे जन्म देने वाली सगी व सही माँ तो मन्दालसा है।

वह उससे मिलने गया, माँ ने कहा-बेटा मैं तुझसे एकान्त में कुछ बात कहना चाहती हूँ। किन्तु समय इतना नहीं था कि वह एकान्त में माँ की बात सुन सके, उसने माँ से कहा-माँ आप मुझे क्षमा करो मुझे अभी शीघ्र निकलना है, माँ ने कहा-बेटा कोई बात नहीं, मैं तुझे यह अँगूठी पहनाती हूँ यदि तेरे जीवन में कोई कष्ट आये तो अँगूठी को उतारकर व खोलकर के देख लेना। वह अँगूठी लेकर चला जाता है और बड़े पराक्रम व शौर्य के साथ जीवन का पहला युद्ध लड़ता है। शत्रु पक्ष की सेना बहुत बड़ी व कुशल थी पहले से अनुभवी थी और वह युद्ध क्षेत्र में नया था, उसका सेनापति भी नया था, उसे अंत में

लगा कि मैं युद्ध में पराजय के सम्मुख पहुँच रहा हूँ अब क्या करूँ ? वह तुरंत ही अपनी अँगुली से अँगूठी उतारता है और देखता है उसमें एक कागज रखा था, उसे खोलकर देखता है उसमें लिखा था।

बेटा ये तेरे शत्रु नहीं हैं, तेरे शत्रु तो अंदर में बैठे हैं, वह मिथ्यात्व, पाप, कषाय भाव हैं उन शत्रुओं को जीत लेगा तो तू तीन लोक का नाथ बन जायेगा तीन लोक का राजा बन जायेगा। बाहर के शत्रुओं को मारकर रक्तनदी को बहाकर तू आत्मशांति नहीं प्राप्त कर सकता। जब वह पढ़ता है तो वास्तव में वैराग्य होता है, बोध आता है कि मैं कहाँ अटका हूँ, ''यह सदा नहीं रहेगा'', वह सोचता है मैं जीत जाऊँगा तब भी यह सब नष्ट होना है, हार जाऊँगा तब भी यह सब नष्ट होना है, कोई भी राजा-महाराजा हारे या जीते सब पृथ्वी से चले गये, बस जिसने अपना कल्याण किया वही बुद्धिमान् है। अभी मेरे पास समय है, शत्रु मेरी गर्दन पर अपनी तलवार का वार करे इससे पहले ही मुझे अपनी आत्मा का कल्याण कर लेना चाहिये। मुझे इस मनुष्य भव को व्यर्थ नहीं गँवाना है और उसने अपना मुकुट उतार दिया, अस्त्र-शस्त्र सब नीचे पटक दिये और आभूषण उतार कर यथाजात दिगम्बर हुआ पंचमुष्ठी केशलोंच किया। उसे देख दोनों पक्षों के लोग नतमस्तक हो गये। धन्य हैं आप धन्य हैं।

जब यह समाचार दादी के पास पहुँचा कि विपक्ष राजा ने संधि कर ली है तो बोली मेरा पुत्र कहाँ है मैं उसका विजय महोत्सव मनाऊँगी। किन्तु विजय महोत्सव अब यहाँ बनाने की आवश्यकता नहीं उसका विजय महोत्सव तो वन में स्वर्ग के देवता मना रहे हैं, उसने अपने बहिरंग नहीं अंतरंग के शत्रुओं को जीत लिया। बहिरंग के शत्रु तो सब नम्रीभूत हो ही गये किंतु उसने तो अंतरंग के शत्रु भी नम्रीभूत कर लिये।

संस्कार कैसा होता है?-एक राजकुमार जो क्षत्राणी से उत्पन्न हुआ था किंतु धाय माँ ने उसका पालन पोषण किया था। वह युद्ध में गया, युद्ध में सेना को देखकर ही लौट आया। उसकी माँ ने कहा-ये मेरा पुत्र है, एक क्षत्राणी का पुत्र होकर उसमें ऐसी कायरता आयी कहाँ से। धाय माँ को बुलाया-पूछा-सही-सही बता तूने इसको अपना दूध तो नहीं पिलाया। वह घबड़ा गयी काँप गयी कहने लगी रानी माँ क्षमा करना-एक दिन आप व्यस्त थीं, बालक बहुत रो रहा था उस समय राजकुमार को मैंने अपना दूध पिला दिया था। रानी ने कहा-बस उसी का यह परिणाम है।

एक दिन रानी कहती है मेरा बेटा युद्ध से आया है उसका स्वागत करो, सम्मान करो। बेटा समझ नहीं पाया माँ क्या कह रही है, उसके लिये व्यंजन बनने लगे। माँ ने उसकी रानी से (पुत्रवधु) कह दिया-कि तुम अपने हाथों से इसके लिये भोजन बनाओगी। बेटा फिर भी नहीं समझ पाया कि माँ ऐसा क्यों कर रही है। पुत्रवधु जब हलवा बना रही थी तब कढ़ाई में कलछी चलने की आवाज आयी तो सासू माँ उसे डाँटती हुई बोली क्या तुझे हलवा बनाने की अक्ल नहीं है अरे लोहे से लोहा बजते देखकर तो मेरा बेटा छिपकर यहाँ आ गया है और यहाँ भी तू लोहे से लोहा बजायेगी तो यहाँ से छिपकर कहाँ भाग कर जायेगा।

वह बेटा अब समझ गया कि मेरी माँ मुझसे क्या कहना चाहती है। वह माँ के चरण छूता है कहता है माँ मुझे क्षमा करो, मुझसे भूल हुयी आपका संस्कार ऐसा नहीं हो सकता कि एक क्षत्राणी का पुत्र युद्ध से लौटकर आ जाये, अब या तो मैं वीरगति को प्राप्त करके आऊँगा या विजय श्री को साथ में लेकर आऊँगा, वह पुनः जाता है। हलवा किसको खाना था, वह तो सिर्फ माँ द्वारा अपने पुत्र को

समझाना था। राजकुमार गया। युद्ध में धावा बोल देता है पूरी सेना को रणखेत कर दिया। शत्रु राजा को बंदी बना लिया और विजय प्राप्त कर अपने महल लौटा।

महानुभाव ! संस्कार ये कहलाते हैं। बचपन के संस्कार ऐसे जाते नहीं हैं। जैसे कहते हैं-कुत्ते की पूँछ बारह साल तक भी गाढ कर रखो जब तक पड़ी है तब तक ठीक, निकालोगे तो टेढी की टेढी ही निकलेगी सीधी नहीं। ऐसे ही अच्छा व्यक्ति कितना भी बिगड़ जाये अच्छे संस्कार नीचे दबे रहते हैं वे संस्कार कभी न कभी तो काम करेंगे। बुरा व्यक्ति कितना भी सुधर जाये किंतु बुरे संस्कार जायेंगे नहीं। कहावत है-चोर चोरी से जाये, हेराफेरी से न जाए।

ऐसे बहुत सारे दृष्टांत हैं कि संस्कारों की वजह से ही साधारण पुरुष भी महापुरुष बन गए। संस्कारों पर ही आधारित आचार्य श्री शांतिसागर जी के परिवार की वह सत्य घटना-

पूज्य आ. चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के संघ में सुमेर चन्द्र जी दिवाकर थे वे पूर्ण रूप से समर्पित रहे। उन्होंने आचार्य श्री से निवेदन किया हम आपकी जीवनी लिखना चाहते हैं उससे लोगों को प्रेरणा मिलेगी। आचार्य श्री ने कहा हमारी जीवनी नहीं लिखना, लिखना है तो तीर्थंकरों की लिखो, अन्य महापुरुषों की लिखो, हमारे जीवन में ऐसा कुछ नहीं है। वे बोले महाराज मैं तो लिखूँगा। वे नहीं माने और उन्होंने लिखना शुरू किया, उनके जीवन से संबंधित कुछ पूछा तो महाराज ने तो बताया नहीं फिर उनके बड़े भाई वर्धमान सागरजी से सारी जानकारी ली, और उनके जन्मस्थान पर पहुँचे। वहाँ जिस समय वे घर पहुँचे उस समय उनके सबसे छोटे भाई के पोते और पोती भोजन कर रहे थे, अष्टमी का दिन था और रविवार था।

वह बालक 6 वर्ष का व बेटी 8 वर्ष की थी। वह बालक कहता है-कन्नड़ भाषा में-कि आज भोजन में सब्जी तो है ही नहीं, उसकी बड़ी बहिन जो 2 साल उससे बड़ी थी वह कहती है तुम्हें मालूम नहीं आज अष्टमी है, सब्जी कैसे मिलेगी आज? दूसरी बार वह बोला-दीदी-इसमें नमक तो है ही नहीं, बिटिया कहती है-जब तुम स्वामी बनोगे तब भी नमक माँगोगे, चुपचाप खा नहीं सकते हो। ये बातें सुमेरचन्द्र जी दिवाकर व साथ में गये अन्य लोगों ने सुनी और कहा वास्तव में यह परिवार आचार्य शांतिसागर जी महाराज का ही परिवार हो सकता है। जहाँ ऐसे संस्कार हैं वहाँ का ही व्यक्ति इतनी उच्च कोटि का साधक व तपस्वी हो सकता है।

महानुभाव ! सब संस्कारों की बात है। आज भी कई परिवार ऐसे हैं जहाँ कई पीढ़ियों से रात्रि भोजन नहीं होता, कई परिवार ऐसे हैं जहाँ आज भी सूर्यास्त के बाद रसोई नहीं बनती, बिना मंदिर जाये भोजन नहीं मिलता। कई परिवार ऐसे हैं जहाँ का प्रत्येक सदस्य प्रतिदिन पूजन करता है, आज भी ऐसे संस्कारवान् परिवार हैं। यह असंभव नहीं है। एक संस्कारवान् कन्या यदि किसी परिवार में बहू बनकर पहुँच जाती है तो वह पूरे परिवार को सम्भाल लेती है, सुधार देती है। वह घर को घर नहीं मंदिर मानकर सेवा सुश्रुषा करके पूरे घर का माहौल ही बदल देती है।

आपको वह रूपक याद होगा-एक बाल ब्रह्मचारी मुनिराज जिनकी उम्र छोटी थी आहारचर्या के लिये गये। सभी ने बहुत अहोभाव व गद्गद मन से उनका आहार कराया, मुनिराज जब जाने लगे तब घर की जो सबसे बड़ी बहू थी जिसने बहुत भक्ति से आहार कराया था, उसने मुनिराज से हाथ जोड़कर पूछा-महाराज जी इतने सवेरे-सवेरे आप कैसे आ गये? मुनिराज जी ने कहा-समय का कोई भरोसा नहीं है। मुनिराज ने प्रति प्रश्न पूछ लिया, बेटी तुम्हारी उम्र

कितनी है-वह बोली मेरी उम्र लगभग 12 वर्ष है। बेटी तुम्हारे पति की उम्र कितनी है? उनकी उम्र तो अभी चार साल है। सास की उम्र कितनी है? वे तो अभी एक साल की हैं और ससुर की उम्र कितनी है? महाराज श्री उनका तो अभी जन्म ही नहीं हुआ।

चलते-चलते मुनिराज ने पूछा बेटी आप बासी भोजन करती हो या ताजा। तो उसने कहा-कभी-कभी ताजा भोजन बनाती हूँ, वैसे तो सब बासा ही खाते हैं। मुनिराज तो प्रश्न पूछकर वन की ओर चले गये, अब तो घर में कलह मच गयी। ससुर कहता है-यह कैसी बहू आयी है मेरे घर में जिसने मेरी नाक कटवा दी। इतनी बुद्धिमान् है कि उन्हीं से जबाव-सवाल कर रही थी। सवेरे-सवेरे क्यों आ गये। इसे इतना नहीं मालूम वे 11 बजे आये, क्या 11 बजे सवेरा होता है। फिर जब उन्होंने पूछा तो उनको झूठे उत्तर दिये स्वयं 20-22 साल की हो गयी फिर भी अपनी उम्र 12 वर्ष की बता रही थी, इसका पति मेरा बेटा पूरा 24 वर्ष का हो गया फिर भी 4 साल का बता रही थी और बुद्धिमानी तो देखो अपनी सास को एक साल का कह रही है और मुझको कहती है कि मेरा जन्म ही नहीं हुआ और जहाँ रोज ताजा खाना बनता है, बासा तो मैं बाहर गाय को डलवा देता हूँ, फिर भी कहती है कि पूरा परिवार बासी भोजन करता है।

वह बहू कहती है पिताजी क्षमा करें यदि मैंने कुछ अन्यथा कहा हो तो। मैंने कुछ गलत नहीं किया व कहा-यदि आपको मुझ पर शंका हो रही हो तो आप मेरे साथ महाराज श्री के पास चलें। सभी चल दिये-और वहाँ जाकर कहा-महाराज जी क्षमा करें, मेरी बहूरानी नासमझ है उसने आपसे उल्टे-सीधे प्रश्न उत्तर किये। वे बोले-तुम्हारी बहू तो बहुत बुद्धिमान् व कुशल है। उसने जो उत्तर दिये वे बिल्कुल सही थे और प्रश्न भी बहुत अच्छा किया। वे बोले-महाराज जी उन उत्तरों का अर्थ आप हमें भी समझा दीजिये-

तुम्हारी बहू ने पूछा इतने सवेरे-सवेरे ही क्यों आ गये इसका आशय यह था-कि महाराज जी अभी तो आपकी दाढ़ी-मूँछ भी नहीं बाल्य अवस्था में ही आपने मुनिदीक्षा क्यों ले ली। मैंने कहा-समय का कोई भरोसा नहीं काल कब आकर पकड़ ले? मृत्यु कभी भी हो सकती है। अच्छा तो फिर इसने जो आपके प्रश्नों के उत्तर दिये उनका क्या अर्थ था? हमारा पहला प्रश्न था बहू की उम्र-अर्थात् शरीर की उम्र से व्यक्ति की उम्र नहीं मापी जाती व्यक्ति के जीवन में जब धर्म का प्रादुर्भाव हो जाता है तब से उसका जीवन प्रारंभ होता है। यह कन्या भले ही 20 वर्ष की हो या 22 वर्ष की इससे कोई फर्क नहीं पड़ता किंतु इसका कहना है कि 12 वर्ष हो गये जब से इसके चित्त में धर्म के प्रति श्रद्धा जागी। यह 10 वर्ष की रही होगी तब से ही धर्म का पालन कर रही होगी, धर्म के साथ जीना ही जीना होता है, यह 22 वर्ष की है किन्तु धर्म की अपेक्षा 12 वर्ष इसकी उम्र हुयी।

पति ने 4 साल से ही धर्म को स्वीकार किया है इसलिये उनकी उम्र चार साल बतायी। सासू माँ ने अभी 1 साल से ही मंदिर जाना शुरू किया है, व्रत उपवास करना शुरू किया है इसलिये उनकी उम्र एक साल कही और आपका जन्म नहीं हुआ संभव है आप धर्म के प्रति श्रद्धा नहीं रखते इसलिये आपको अजन्मा कहा। और बात रही बासी व ताजे भोजन की उसका आशय यह था कि आपके परिवार में कोई पुण्य कार्य विधान आदि होते हैं, प्रतिदिन पुण्य कृत करके भोजन करते हैं या पूर्वकृत पुण्य को खा रहे हैं। उसने कहा कभी-कभी ताजा भोजन अर्थात् आपके परिवार में कभी-कभी पूजा पाठ आदि कार्य हो जाते हैं। अन्य दिनों में कोई भी विशेष पुण्य क्रिया नहीं होती इसलिये उसने कहा कि कभी-कभी ताजा खाते हैं वैसे बासा ही भोजन करते हैं। वह सेठ कहता है-महाराज ! आज मेरी बहू की वजह से मेरे नेत्र खुल गये मैं नियम लेता हूँ प्रतिदिन मंदिर भी जाऊँगा और

पूजापाठ भी करूँगा। महाराज ने कहा–तो आज तुम्हारा भी जन्म हो गया, जाकर अपना जन्म महोत्सव मनाओ।

महानुभाव ! तो यह बात थी संस्कारों की। बचपन के सुसंस्कार संजीवनी बूटी की तरह हमारे इस भव को ही नहीं आगे आने वाले कई भवों को संस्कारित करने वाले होते हैं। आप भी अपने बच्चों को सुसंस्कारी बनायें, आप भी सद्संगति को प्राप्त कर कुसंस्कारों को छोड़कर सुसंस्कारों का बीजारोपण अपने चित्त की भूमि पर करें जिससे वह संस्काररूपी वृक्ष हरित, पुष्पित, फलित हो तथा आपका जीवन सफल व सार्थक बने। आप कुसंस्कारों की चिलचिलाती व तपती धूप से बचकर सद्गुरुओं की, सद्संगति व सुसंस्कारों की शीतल छाया को प्राप्त कर अपनी तपित जिंदगी को सुखमय, शांतिमय बनायें। ये सुसंस्कार बढ़ते–बढ़ते संस्कार रूप से इस भव में व आने वाले भव में पंचकल्याणक रूप संस्कार की तरह आपके जीवन में घटित हों इन्हीं मंगल और शुभ भावनाओं के साथ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

भगवान् का फरमान

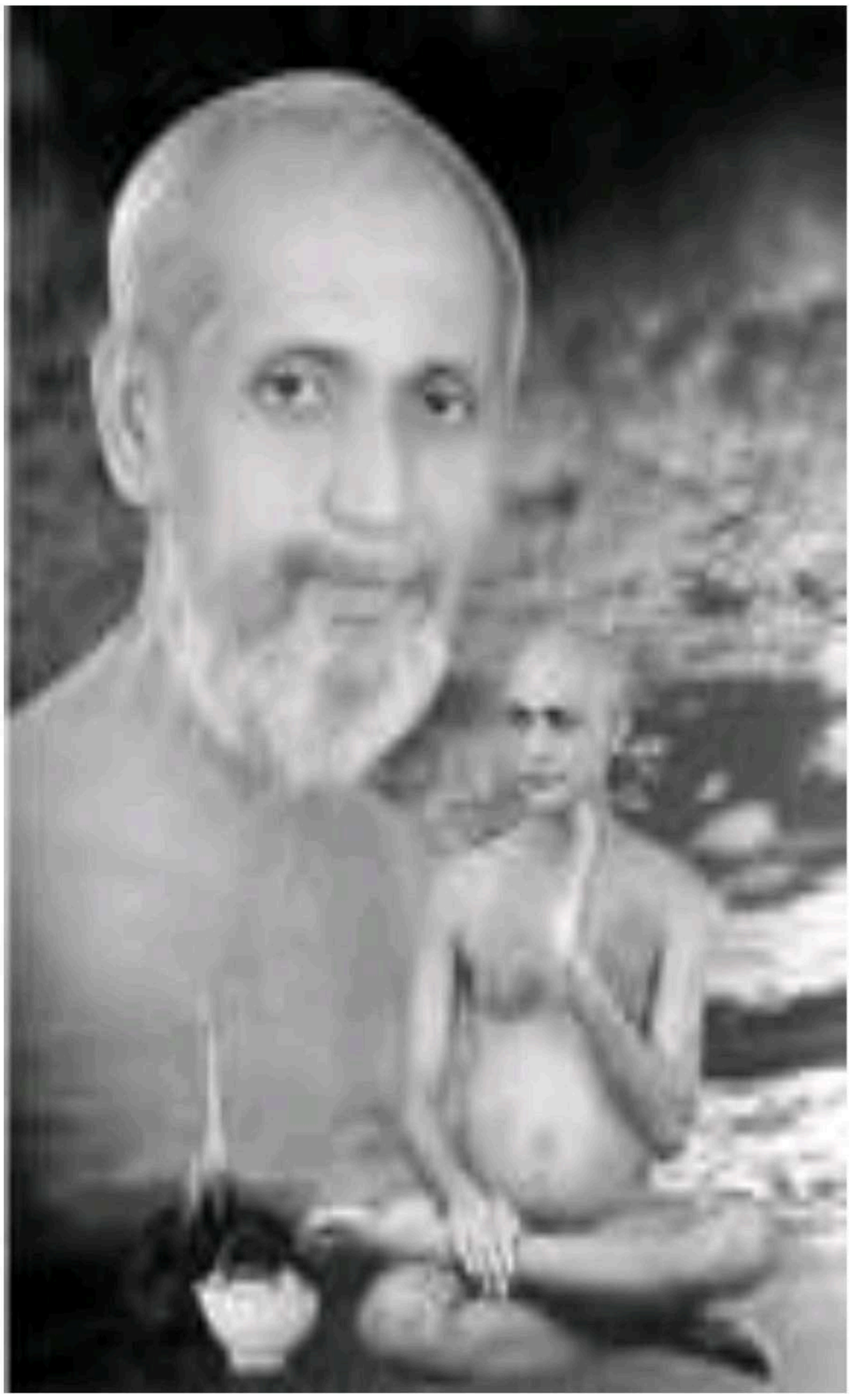

प्रवचन 3

भगवान का फरमान

अक्ष कषाय अरु पाप छोड़कर, सिद्धों का
तू कर ले ध्यान, जीओ और जीने दो सबको,
भगवान का है ये फरमान।।

आज का विषय है-'भगवान् का फरमान'। फरमान का अर्थ होता है-'आदेश'। आदेश वह कहलाता है जिसका पालन करना अनिवार्य हो। उपदेश-सुने जाते हैं व शक्ति के अनुसार पालन किये जाते हैं। किंतु आदेश शक्ति है या नहीं पालन करना अनिवार्य होता है इसलिए आदेश को आचार्य शर्ववर्म मुनिराज ने कातंत्र रूपमाला में शत्रु कह दिया। आदेश शत्रुवत् होता है और आगम वाक्य मित्रवत् होता है। आदेश विशेष परिस्थिति में दिये जाते हैं और तब दिये जाते हैं जब स्व और पर दोनों का कल्याण हो रहा हो। उपदेश को शक्त्यानुसार पालन करना होता है, कल्याण कितना हो पाये है और कितना न हो पाये यह अलग चीज है किंतु उपदेश में बहुत हित छिपा रहता है।

महानुभाव ! भगवान् का फरमान क्या है ?

अक्ष कषाय अरु पाप छोड़कर, सिद्धों का तू कर ले ध्यान।
जिओ और जीने दो सबको, भगवन् का है ये फरमान॥

किसी भी भगवान् ने, किसी भी परमात्मा ने, किसी भी संत, अरिहंत, भगवंत, ऋषि, मुनि, धर्माचार्य ने यदि कोई भी फरमान जारी किया है, चाहे उपदेश रूप में, चाहे आदेश रूप में, चाहे निर्देशन के रूप में और चाहे संकेत के रूप में, चाहे व्यक्ति विशेष को समझाने के लिए और चाहे सम्पूर्ण जनता जनार्दन को समझाने के लिए, चाहे अक्षर रूप में, चाहे अनक्षर रूप में, चाहे जिज्ञासा समाधान में पृच्छना करने पर अथवा न करने पर जो कुछ भी उपदेश हुआ उसका सार एक ही है 'जिओ और जीने दो सबको।'

शब्द भले ही अलग-अलग हो सकते हैं किंतु भाव सबका एक

ही निकल कर आता है। संसार का प्रत्येक प्राणी सुख व शांति चाहता है। सृष्टि को कुछ लोग मानते हैं कि यह ब्रह्मा के द्वारा रचित है, किंतु यह विषय आज तक शंका से युक्त है क्योंकि लोग कभी भी इस पर एकमत नहीं हो सकते। लोगों को शंका होती है कि भगवान् ने पृथ्वी की रचना कैसे की होगी, कहाँ बैठकर की होगी, जो जीव नहीं था उसे कैसे बनाया, अजीव कैसे बनाया?

इसलिए सृष्टि की रचना परमात्मा ने की यह बात तो शंका का विषय है। आज से नहीं अनादि से शंका का विषय है। किंतु इस बात में किसी को शंका नहीं है कि 'परमात्मा को मनुष्य ने बनाया है।' जो कोई भी परमात्मा बना है, मनुष्य के द्वारा बना है। चाहे मनुष्य ने अपनी आत्मा को परमात्मा बनाया हो, या किसी मनुष्य ने पाषाण को परमात्मा बनाकर पूजा हो, किंतु परमात्मा बनाया मनुष्य ने ही है। जब समाज के प्रतिष्ठित महानुभाव अनुष्ठान करते हैं तो वे प्रतिष्ठित महानुभाव इन्द्रादि की भी प्रतिष्ठा करते हैं प्रतिष्ठाचार्य के द्वारा, फिर प्रतिष्ठित सूरि आचार्य के द्वारा इन जिनबिम्बों में सूरिमंत्र दिया जाता है तब वे भगवान् प्रतिष्ठित हो जाते हैं और भगवान् बन जाते हैं। इंसान ने भगवान् को बनाया है इस बात में किसी को शंका नहीं।

महानुभाव ! सभी जीव सुख-शांति चाहते हैं आप पढ़ते भी हैं-

जे त्रिभुवन में जीव अनंत, सुख चाहें दुःख ते भयवंत।
तातैं दुःखहारी सुखकार कहें सीख गुरु करुणा धार॥

संसार के सभी अनंतानंत जीव सुख चाहते हैं। सुख का एक ही रास्ता था, एक ही रास्ता है और एक ही रास्ता रहेगा दूसरा कोई है ही नहीं वह सुख मिलता है चित्त की पवित्रता से। जब मन निर्मल होता है, कषायें मंद हो जाती हैं, विषय वासना से जब व्यक्ति ऊपर उठ जाता है, जब पापों की कीचड़ आत्मा को संलिप्त नहीं कर पाती है,

उस समय चित्त निर्मल होता है और ''जब अपना मन पवित्र होता है तब हर एक चेहरे पर अपना चित्र होता है। फिर संसार में तुम कहीं भी जाकर के देखना जो कोई भी मिलता है वह अपना मित्र होता है।''

शत्रु बाहर से पैदा नहीं होते, शत्रु पैदा होते हैं अपनी आत्मा से। जब तुम्हारी आत्मा में क्रोध आदि की गाँठ बंध जाती है तब सामने वाला व्यक्ति तुम्हें शत्रु दिखाई देता है, जब तुम्हारे चित्त में कोई बैर की गाँठ नहीं है तब संसार में कोई भी तुम्हारा शत्रु नहीं हो सकता।

महानुभाव ! पवित्रता के बिना किसी का कल्याण नहीं हो सकता। विश्व के सभी मत व उनके मतानुयायी वे सभी इस बात को मानते हैं कि चित्त की पवित्रता के बिना किसी का कल्याण नहीं होता और चित्त की पवित्रता आती है सदाचार से।

'आचारो पढमो धम्मो' आचरण सबसे पहला धर्म है। सदाचार जीवन में नहीं है तो जीवन पवित्र नहीं हो सकता है। जब जीवन में समीचीन सद् आचरण आता है तो चित्त पवित्र होने लगता है और आचरण का प्राण है आहार शुद्धि। बिना आहार शुद्धि के आचरण कभी पवित्र नहीं हो सकता। माँसाहारी व्यक्ति कभी शुद्ध आचरण नहीं कर सकता, जो व्यक्ति अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करता है वह परमात्मा के पास आने में डरता है। जिसने कोई बहुत बड़ा पाप किया है ऐसा व्यक्ति धर्मात्माओं के बीच बैठेगा नहीं। तो आहार की शुद्धि आचरण की शुद्धि का मुख्य हेतु है व सदाचार चित्त की पवित्रता का मुख्य हेतु है।

तो महानुभाव ! जीवन में सबसे पहले अहिंसा का पालन करना है और वह अहिंसा सबसे पहले आहार में लाना है। आहार में अहिंसा आये, व्यवहार में अहिंसा आये, आचार में अहिंसा आये जीवन के

प्रत्येक कार्य में अहिंसा आये। अहिंसा का पालन न केवल शरीर से वचन से, व मन से भी करना है।

जैन दर्शन अहिंसा की जितनी सूक्ष्म व्याख्या करता है, विश्व का और कोई दर्शन अहिंसा की इतनी सूक्ष्म व्याख्या नहीं कर सकता। कोई भी आचार्य हों, जैनाचार्यों ने जब अपनी कलम उठायी है और धर्म का कहीं भी स्वरूप बताया है तो सबसे पहले 'अहिंसा' शब्द ही निःसृत होकर आया है।

अहिंसा के बिना धर्म वैसे ही नहीं रहता जैसे-दूध के बिना घी नहीं मिलता, पुष्प के बिना गंध नहीं मिलती, नेत्र के बिना दृष्टि नहीं होती, आत्मा के बिना चेतना नहीं मिलती और जैसे पुद्गल के बिना स्पर्श रस गंध आदि नहीं मिलता। ये सब नियामक हैं इनमें कहीं भी किंचित् भी शंका नहीं है उसी प्रकार अहिंसा के बिना भी कोई धर्म नहीं हो सकता।

धर्म अहिंसा पर आधारित है, धर्म का मूल ही अहिंसा है। इसीलिये केवल जैनाचार्यों ने ही अहिंसा को लिखा हो ऐसा नहीं है बौद्ध, चार्वाक मतों में भी अहिंसा को धर्म कहा। हिन्दू धर्म में चाहे रामायण हो, चाहे श्रीमद्भागवत् गीता या अन्य कोई शास्त्र हो, स्मृति चाहे पुराण, चाहे वेद हों सभी अहिंसा का गुणगान करते-करते थकते नहीं। सिक्ख धर्म को मानने वाले रहे हों या यहूदि धर्म को मानने वाले हों, ईसाई धर्म को मानने वाले हों या अन्य किसी भी धर्म को मानने वाले हों सभी धर्मों का मूल अहिंसा ही है।

जिस प्रकार गर्भजप्राणी के जन्म का मूल आधार माँ होती है बिना माँ के गर्भज जीव का जन्म नहीं होता ऐसे ही बिना अहिंसा के कोई भी धर्म उत्पन्न नहीं होता, इसीलिए अहिंसा सब धर्मों की माँ है, अहिंसा विश्व की जननी है, अहिंसा विश्व की संरक्षिका है।

अहिंसा से ही हमारे व सामने वाले के प्राणों की सुरक्षा है। हिंसा न तो हमारी रक्षा करती है और न सामने वालों की रक्षा करती है। हिंसा के मायने तो मृत्यु है, कष्ट है, दु:ख है। इसीलिये पाप को कह दिया 'दु:खमेव वा'। किंतु अहिंसा के मायने सुख है, शांति है, अमन चैन है। व्यास जी ने महाभारत में लिखा है-

प्राणिना-मवधस्तात !, सर्वज्यायान् मतोमम।
अनृतां वा वदेद् वाचं न तु हिंस्यात् कथंचन॥

हे तात् ! हिंसा मत करो। क्योंकि संसार के सभी जीव जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता। मारना पाप है अभिशाप है, अपराध है। मारना मानव का पतन है, अधोगति का साधन है। किंतु उसे बचाना संसार सागर से उसे पार लगाना व स्वयं को भी पार लगाना है। यदि कदाचित् आवश्यकता पड़ जाये, तो झूठ बोल देना, यदि झूठ बोलकर प्राण बचते हैं तो प्राण बचाना, सत्य नहीं बोलना। सत्य छोटा है अहिंसा बड़ा है। अहिंसा का विशाल व विराट उदर है जिसमें सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह चारों उसके साथ ही समा जाते हैं। अहिंसा तो अखण्ड पुरुष है सत्य, अचौर्य और ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह उसके दो हाथ व दो पैर हैं। उस अहिंसा में ही वैराग्य, तप, सुख, भक्ति पूजार्चना समाहित हैं। यदि अहिंसा नहीं तो कुछ भी नहीं। इसीलिये व्यास जी ने आगे लिखा-

अहिंसा परमोधर्मस्तथाहिंसा परं तप:।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्म: प्रवर्तते॥

(अनुशासन पर्व-115/23)

अहिंसा ही परम धर्म है। जैनाचार्यों ने तो लिखा ही अहिंसा परम धर्म है, किंन्तु व्यास जी ने एक जगह नहीं कई जगह लिखा और कहा अहिंसा ही परम तप है-यदि कोई कितना ही बड़ा तप क्यों न कर

रहा हो किंतु अहिंसा की रक्षा नहीं कर रहा है तो उसका तप कुतप की श्रेणी में आ जाता है, इसीलिये अहिंसा परम तप है। मनसा, वाचा कर्मणा अहिंसा का पालन करने वाला साधक भी तपस्वी है। यदि हिंसा कर तपस्या कर रहा है तो कुतपस्वी है। यदि अग्नि आदि जलाकर या बड़ी-बड़ी जटाओं को धारण कर जिसमें अत्यंत जीव उत्पन्न हो गये हैं, अथवा नदी, कूप, सरोवर में डुबकी लगाकर, अनछने जल द्वारा जिनमें छोटे-छोटे जीव मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं अथवा वह बलि दे रहा है, सता रहा है और तपस्या भी कर रहा है तो ये कोई तप नहीं होता ये सब कुतप होता है, दुर्गति का कारण होता है।

तामसिक वृत्ति भी तप को नष्ट करती है, राजसिक वृत्ति में तप का प्रादुर्भाव नहीं होता, तप सिर्फ और सिर्फ सात्विक वृत्ति के साथ ही ठहर सकता है। तभी जीवन में अहिंसा का प्रादुर्भाव होता है। तामसिक वृत्ति में तो हिंसा चरम सीमा पर होती है इसीलिये कहा अहिंसा ही परम तप है। आगे कहा-अहिंसा परमं सत्यं-यदि जीवन में अहिंसा है तो तुम्हारे पास परम सत्य है, अन्यथा नहीं। जहाँ अहिंसा है वहीं क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि धर्म ठहर सकते हैं। वहीं अनित्यादि बारह भावनायें हैं और जहाँ अहिंसा है वहीं बाईस प्रकार के परीषह आदि सहन किये जाते हैं। जहाँ अहिंसा नहीं है वहाँ धर्म का एक भी लक्षण नहीं है।

आचार्य गुणभद्र स्वामी जी ने आत्मानुशासन ग्रंथ में लिखा है-

''जब तक चित्त में अहिंसा का वास रहता है तब तक वह मुनि, साधक, योगी अपने ऊपर उपसर्ग करने वाले की भी रक्षा करता है।''

ईसा को जब सूली पर चढ़ाया गया तो उसने कहा-हे परमात्मा इन्हें क्षमा करना ये नहीं जानते, ये अज्ञानी जीव हैं कि ये क्या कर रहे हैं। जब तक अहिंसा का भाव है तब तक वह अपने मारने वाले

की भी रक्षा करना चाहता है और जब आत्मा में से अहिंसा निकल जाती है तब व्यक्ति अपनी रक्षा करने वाले को भी मार देता है। पिता-पुत्र की, पुत्र पिता की, भाई-भाई की हत्या कर देता है। सत्ता, पद, प्रतिष्ठा, धन के लिये ही इतने प्रकार के पाप किये जाते हैं किन्तु जब तक अहिंसा धर्म आत्मा में रहता है तब तक पाप समीप में आ भी नहीं सकता, जैसे सूर्य का उदय हो रहा हो तो अंधकार समीप में आ नहीं सकता, सूर्य अस्त हो जाये तो पुनः अंधकार आता चला जाता है। अहिंसा के अस्त होते ही सभी पाप एक साथ आ जाते हैं पापों की काली निशा आ जाती है और अहिंसा का उदय होते ही सारे पाप भाग जाते हैं।

महानुभाव ! आगे वेदव्यास जी ने लिखा-

अहिंसा परमोधर्मःअहिंसा परमो दमः।
अहिंसा परमं दानं-अहिंसा परमो तपः॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परं फलं।
अहिंसा परमं मित्रं-अहिंसा परमं सुखं॥

दमन का आशय होता है-इन्द्रिय दमन, पंचेन्द्रिय निरोध, जो मुनिमहाराज पालते हैं, वह अहिंसा ही परम दान है और परम धाम है। अहिंसा ही परम यज्ञ है, अहिंसा ही परम उत्कृष्ट फल है जीवन का यदि कोई सार है, तीन लोक का कोई सार है तो लोग कहते हैं वीतराग विज्ञानता है, किन्तु इस वीतराग विज्ञानता का भी यदि कोई आधार है तो वह अहिंसा है। बिना अहिंसा के कोई भी विरागी, वीतरागी या केवलज्ञानी नहीं बनता। बिना अहिंसा के तो कोई सच्चा श्रावक भी नहीं बन सकता कोई सच्चा मानव भी नहीं बनता, इसीलिये भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी दिव्य ध्वनि में अहिंसा को ही परम धर्म कहा। इंद्रभूति गौतम गणधर ने वीर भक्ति करते हुये कहा-

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तं णमंसंति जस्स धम्मे सया मणो॥

अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा के उपरांत ही संयम और तप आते हैं, वही लोक में मंगल है, अहिंसा के समान लोक में उत्तम कुछ भी नहीं है और अहिंसा के समान शरणभूत पदार्थ संसार में कुछ भी नहीं है इसलिये उस अहिंसा को, संयम को, तप को स्वर्ग के देवता इन्द्र-अहमिन्द्र आदि भी नमन करते हैं, वंदना करते हैं, स्तुति करते हैं। अहिंसा बहुत बड़ा धर्म है।

ऋग्वेद में कहा है-

"हे देव ! मुझे अहिंसक मित्र की संगति देना।"

बस मेरी यही मनोकामना है। यदि मैं अहिंसक मित्र की संगति में रहूँगा तो पाप मेरी आत्मा को छू न सकेगा, वह अहिंसक संगति मुझे भी अहिंसक बना देगी। क्योंकि जैसी संगति होती है व्यक्ति के परिणाम वैसे ही होने लगते हैं। इसीलिये रामायण में लिखा-

दुष्ट संग नहिं देय विधाता,
यासे भलो नरक का वासा।

दुष्ट की संगति में रहने से तो नरक में रहना अच्छा है क्योंकि दुष्ट की संगति न जाने कितने पाप कर्मों का बंध करा सकती है। अत: अहिंसक की संगति करो।

यजुर्वेद में भी लिखा है- **मा हिंसा पुरुषं जगत्**

इस संसार में किसी को भी हिंसा नहीं करनी चाहिये, 'तुम किसी की हिंसा मत करो' ये आदेश वाक्य है। यह वाक्य हिन्दू धर्म में जो वेदवाक्य है जो साक्षात् देववाणी मानी जाती है, उसमें यह फरमान, आदेश है-इस जगत् में किसी भी पुरुष को हिंसा नहीं करनी

चाहिये न किसी तिर्यंच की और न किसी मनुष्य की। यदि कोई स्वयं को शुद्ध हिन्दू ब्राह्मण मानता है तो उससे कहो कि हिन्दू सम्प्रदाय में यह आदेश दिया गया है कि 'मा हिंसा पुरुषं जगत्'। 'मत करो' यह आदेश दिया है 'चाहिये' शब्द नहीं कहा। आदेश को पालन करना चाहिये क्योंकि आदेश का पालन किये बिना संसार का कोई भी जीव सुखी नहीं हो सकता।

महानुभाव ! नीतिकार कहते हैं-

कर भला होगा भला, नेकी का बदला नेक है।
छोड़ दे हिंसा हृदय से, जीव सबका एक है॥

सभी की आत्मा एक जैसी है, तुम्हें यदि कष्ट होता है, तो दूसरे की आत्मा को भी कष्ट होता है।

आत्मानि प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

अपनी आत्मा के प्रति जितनी भी प्रतिकूलतायें हैं जो मुझे अच्छी नहीं लगती, तो ऐसा व्यवहार पर के प्रति भी नहीं करना चाहिये। यह धर्मात्मा का लक्षण है। धर्मात्मा व्यक्ति प्रभु परमात्मा से यही कहता है जो मैं अपने लिये चाहता हूँ वही संसार के प्रत्येक व्यक्ति के लिये चाहता हूँ। ''सर्वेषां शांति र्भवतु'' सभी ओर शांति हो। आप प्रतिदिन पढ़ते भी हैं पूजन में-

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्य तपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः॥

जिनेन्द्र प्रभु से कभी ये नहीं कहते कि केवल मेरी आत्मा को शांति मिले, बस यही कहते हैं कि विश्व में चहुँ ओर शांति फैले, चाहे वे आपकी पूजन कर रहे हों या नहीं। शासक, सम्राट, राजा, मुखिया हैं उन्हें भी हे भगवान् ! शांति देना क्योंकि संसार में मुखिया

से ज्यादा दु:खिया कोई नहीं है। वह हेड होता है। क्योंकि भले ही किसी के दो हाथ, दो पाँव हों किन्तु हेड तो एक ही होता है। इसीलिये उसे Headache होता है। मुखिया दु:खिया क्यों हो जाता है क्योंकि वह अपना ख्याल सबसे बाद में रखता है। दूसरों का ध्यान या अपने आश्रित रहने वालों का ध्यान सबसे पहले रखता है। और भी भावना भाते हैं जो यति हैं, इन्द्र हैं अथवा सामान्य साधु हों या तपस्वी हों सभी सुखी रहें, देश भी सुखी रहे, राष्ट्र भी सुखी रहे, रहने वाली प्रजा भी सुखी रहे ऐसी मंगल भावना वह धर्मात्मा व्यक्ति प्रतिदिन करता है।

महानुभाव ! कर भला तो हो भला-नेकी के बदले नेकी मिलती है, वदी के बदले वदी मिलती है। सुई चुभाकर के तुम्हें कोई रत्नों का हार नहीं पहनायेगा। इसीलिये कहा-

जो तोकू काँटा बोये, वाए बोये तू फूल।
तोय फूल के फूल हैं, बांकों हैं त्रिशूल॥

यदि तुमने फूल बोये हैं तो तुम्हें फूल ही मिलेंगे, काँटे बोये हैं तो काँटे। यह तो प्रतिध्वनि है, कुँए की आवाज जैसे बोलोगे पलट कर वैसी ही आवाज आती है। यदि हम प्रेमयुक्त व्यवहार रखते हैं तो उसका हमारे प्रति व्यवहार भी प्रेमयुक्त ही मिलता है।

कहीं ऐसा न हो-

जो तोकू काँटा बोये, वाए बोये तू भाला।
वो भी बंदा याद करेगा, पड़ा किसी से पाला॥

यदि आप किसी के साथ दुर्व्यवहार करते हैं तो आपको भी प्रति उत्तर में उससे ज्यादा बुरा दुर्व्यवहार मिलता है। यह बिल्कुल शाश्वत सिद्ध शुद्ध सिद्धान्त है कि यदि तुमने किसी के साथ बुरा नहीं किया

तो तीनों लोक मिलकर भी तुम्हारा बुरा नहीं कर सकते। यदि भला नहीं किया तो तीनों लोक मिलकर भी तुम्हारा भला नहीं कर सकते, क्योंकि सभी जीव अपने कर्म का फल प्राप्त करते हैं। आप पढ़ते भी हैं-

कर्म प्रधान विश्व फल राखा,
जो जस करई सो तस फल चाखा।

संसार में कर्म की प्रधानता है जैसा कर्म करेगा वैसा फल देगा भगवान, ये है गीता का ज्ञान। भगवान् अर्थात् हमारी ही आत्मा भग माने-ज्ञान, वान माने-वान 'ज्ञानवान्'। बाहर का भगवान् नहीं हमारी ही भगवान् आत्मा जो शक्ति रूपेण परमात्मा है जैसा कर्म हमारी आत्मा कर रही है हमारी आत्मा, हमारा भगवान् वैसा ही फल देगा। इसे अन्यथा करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

'छोड़ दे हिंसा हृदय से'-न केवल हिंसा शरीर से, वचन से अपितु हृदय से, मन से भी हिंसा का त्याग कर दे। मन में भी हिंसा का भाव न आये, वचन से भी कोई कटु शब्द नहीं निकले जिससे किसी का हृदय दु:खता हो और शरीर से भी ऐसी कोई प्रवृत्ति न करो जिससे किसी को कष्ट होता है। 'जीव सबका एक है'-हमारा और तुम्हारा सबका जीव एक जैसा है चाहे वह जमीन पर चलने वाली चींटी हो, विशालकाय हाथी हो, देव हो या मनुष्य सबकी आत्मा एक बराबर है। किसी की भी आत्मा में एक प्रदेश कम या ज्यादा नहीं। हर भव्य आत्मा परमात्मा बनने की अधिकारिणी है। शक्ति रूप वह परमात्मा दूसरे शक्ति रूप परमात्मा का घात कैसे कर सकता है, नहीं कर सकता है।

महानुभाव ! अहिंसा ही परम धर्म है। एक छोटी सी बात-अभय कुमार के जीवन चरित्र के बारे में पढ़ने में आयी, एक दयामित्र सेठ

था जिसने पूर्वभव में वसुमित्र ब्राह्मण को धर्म का उपदेश दिया, उससे पहले वह हाथी की पर्याय में था, जंगल में आग लगी हुयी थी, सभी जानवर अपने प्राण बचाने के लिये एक झील या तालाब के समीप में पहुँच गये, जगह बहुत छोटी थी, वहाँ पर अग्नि नहीं आ सकती थी पूरा जंगल धूँ धूँ कर जल रहा था, उसकी लपट और तपन दूर-दूर तक आ रही थी, इसलिये सभी जानवर झील व तालाब के सामने आकर खड़े हो गये। हाथी, शेर, भालू, गिलहरी, चूहा छोटे-बड़े सभी जानवर वहाँ थे, तभी हाथी के पैर में खुजली हुयी, उसने अपना पैर उठाया ज्यों ही पैर उठाया तब तक एक खरगोश उस स्थान पर आकर बैठ गया।

हाथी ने देखा कि खरगोश वहाँ बैठ गया है, यदि मैं वहाँ पैर रखता हूँ तो खरगोश मर जायेगा इसीलिये उस हाथी ने अपने पैर को ऊपर उठाये रखा। जब जंगल की अग्नि शांत हो गयी, तब सब जानवर जिसे जहाँ स्थान मिला वहाँ चले गये किन्तु हाथी का पैर अकड़ गया, वह नीचे पैर रखने को हुआ पर रख न सका और धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा और मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस अहिंसा का पालन करने से, खरगोश पर दया दिखाने से वह हाथी आगे अभयकुमार नाम का श्रेणिक पुत्र हुआ। जिसने तपस्या करके सर्वार्थसिद्धि अवस्था को प्राप्त किया। महानुभाव ! यह था अहिंसा का परिणाम।

महाराज मेघरथ जिसकी परीक्षा लेने के लिये दो देव आये, बाज और कबूतर का रूप बनाकर के। कबूतर शरण में आया, जिसे बाज पक्षी मारना चाहता था। महाराज ने उस शरणागत कबूतर को बाज पक्षी को नहीं दिया और कहा-मैं तुझे भोजन दे सकता हूँ किन्तु अपने शरणार्थी को नहीं दे सकता। बाज ने कहा-किंतु मुझे तो अपना शिकार चाहिये। नहीं तो मैं अपने प्राण देता हूँ, चाहे तो इसके प्राण बचाओ या मेरे। राजा ने कहा-जब तेरी ऐसी ही जिद है कि तू माँस

ही खाना चाहता है तो मैं तुझे इसका माँस नहीं दे सकता और स्वयं अपनी जंघा काटकर उसको माँस देने को उद्यत हुये।

एक तराजू के पलड़े पर कबूतर को रखा जितना उसका वजन होगा मैं तुझे उतना माँस अपना ही दूँगा, इसका नहीं, किंतु वह कबूतर तो देवमाया थी और देवमाया से वह अपना वजन बढ़ाता चला गया जैसे-जैसे वह वजन बढ़ाता रहा, राजा भी अपना माँस काट-काट कर दूसरे पलड़े पर रखता गया। यह देख कबूतर और बाज अपने असली रूप में प्रकट हो जाते हैं और प्रणाम करते हैं महाराज ! आपके बारे में जो सुना था, सौधर्मइन्द्र की सभा में कि इस समय आपके समान अहिंसा का उत्कृष्ट पालन करने वाला गृहस्थ श्रावक हमें और कोई दिखाई नहीं दिया। धन्य हैं महाराज आप, धन्य हैं। हम तो आपकी परीक्षा लेने आये थे। आप इस समय पृथ्वी पर उत्कृष्ट श्रावक हैं।

वही अहिंसक राजा मेघरथ आगे चलकर 16वें तीर्थंकर भगवान् शांतिनाथ स्वामी बनते हैं।

अहिंसा का परिणाम-राजकुमार सिद्धार्थ के चचेरे भाई ने एक हंस का तीर से शिकार किया, उसी हंस का तीर निकालकर उसका उपचार कर राजकुमार सिद्धार्थ जब उस हंस को दरबार में महाराज शुद्धोधन के पास लेकर आया तो महाराज ने उससे पूछा यह कहाँ से लाये तभी उसका चचेरा भाई आया वह बोला यह शिकार मेरा है, सिद्धार्थ ने कहा यह मेरा है। महाराज शुद्धोधन न्याय करते हैं वे पूछते हैं इसे तीर किसने मारा, तो चचेरे भाई ने कहा मैंने मारा। शुद्धोधन ने कहा-सिद्धार्थ जब तीर इसने मारा तो फिर तुम इस हंस को अपना क्यों कहते हो ? सिद्धार्थ ने कहा-ठीक कहा आपने, तीर इसने ही मारा था किन्तु मैंने तीर निकालकर के इसका घाव ठीक किया है इसलिये यह मेरा है। महाराज ने कहा-नि:संदेह इस पर अधिकार सिद्धार्थ का है क्योंकि मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है।

महानुभाव ! सत्य बात भी यही है कि मारने वाले से बचाने वाला बहुत बड़ा है। आपने एक कहानी सुनी होगी मृगसेन धीवर की।

अवन्तिपुर देश में श्रेष्ठपुर नाम के नगर में शिप्रा नदी के किनारे एक भीलों की बस्ती थी, जहाँ एक धीवर रहता था, जिसका नाम था मृगसेन। वह प्रतिदिन मछली पकड़ता था, भोजन में स्वयं खाता व अपनी पत्नी जयघंटा को खिलाता था यही उसका दिन-प्रतिदिन का कार्य था। एक दिन उस शिप्रा नदी के किनारे पर 'यशोधन' नाम के मुनिमहाराज पहुँचे। जंगल में मुनिराज के प्रताप से शांति छा गयी, सभी राजागण, श्रोतागण उनके दर्शनार्थ पहुँचे। महाराज ने उन सभी को अहिंसा का उपदेश दिया, सभी ने उपदेश के उपरांत नियम ग्रहण किये। जब सब चले गये, पीछे से वह मृगसेन धीवर भी पहुँचा बोला-महाराज मेरा भी कल्याण कर दो। वे बोले-भद्र ! तू भी जीवहिंसा का त्याग कर दे।

वह कहने लगा-महाराज ! मेरा काम कैसे चलेगा, मेरा व्यापार मछली पकड़ना बेचना व उसे खाना है। मैं तो मर जाऊँगा। महाराज ने अवधिज्ञान से जाना कि यह निकट भविष्य में मोक्ष जाने वाला है, कल्याण का अधिकारी है, उससे कहा तू एक काम कर, यह बता कि एक दिन में तू कितनी मछली पकड़ता है? वह बोला-जितनी पकड़ में आ जायें। यदि तू एक मछली पर दया कर दे तो क्या तेरा कुछ बिगड़ेगा? वह बोला कुछ नहीं बिगड़ता मैं एक मछली को प्राण दान दूँगा, एक की रक्षा तो मैं कर सकता हूँ। महाराज ने कहा ठीक है-तुम यही नियम लो कि जो मछली तुम्हारे जाल में पहली बार फँसेगी तुम उस मछली को नहीं मारोगे उस पर दया करुणा कर प्राणों की रक्षा करोगे। उसने कहा महाराज-ठीक है भले ही मेरे प्राण चले जायें पर नियम को कभी नहीं तोड़ूँगा।

वह वहाँ से मछली पकड़ने चला गया। पहली बार जैसे ही जाल डाला, तो इतनी बड़ी मछली फँसी शायद ही पहले कभी कदाचित् इतनी बड़ी मछली आयी हो। किन्तु उसे याद आया कि मैंने आज ही मुनिराज से नियम लिया है कि पहली मछली जो जाल में आये उस पर दया करुणा करना है। उसने उसे छोड़ना चाहा, तो सोचा कि यदि दुबारा यही मछली फँस गयी तो मैं कैसे पहचानूँगा तो उसने अपनी पगड़ी से थोड़ा सा कपड़ा निकाला और मछली के बांध दिया और फिर उसे पानी में छोड़ दिया और 1 मील दूर जाकर पुनः जाल डालता है। संयोग की बात वही मछली पुनः आ गयी उसने पुनः उसे छोड़ दिया, तीसरी बार वह और आगे चला गया, जाल डाला पुनः वही मछली आ गयी। उस मछली को तो वह जीवन दान दे चुका था, उसे मार नहीं सकता और आगे बढ़ा। चौथी बार भी संयोग की बात वही मछली जाल में आयी।

इस प्रकार सूर्यास्त हो गया, वह खाली जाल कंधे पर रखकर घर की ओर जाने लगा। पत्नी ने दूर से देखा आज तो मेरा पति निकम्मा निखट्टू कुछ करके ही नहीं लाया, खाली हाथ चला आ रहा है अब हम क्या खायें और दूर से ही दरवाजा बंद कर दिया। सर्दी का समय था, वह बेचारा बाहर पड़ा रहा, उसने दरवाजा बहुत खटखटाया किंतु जयघंटा तो जयघंटा थी बहुत क्रूर स्वभाव की थी उसने दरवाजा नहीं खोला। वह सामने बरगद के पेड़ के नीचे गया, कुछ लकड़ी रखी थी उनसे लिपट कर सोने लगा, संयोग की बात वहाँ से एक सर्प निकल कर आया और उसे डस लिया, मृगसेन मृत्यु को प्राप्त हो गया। इधर जब जयघंटा ने प्रातः काल दरवाजा खोला तो देखा, मृगसेन तो मर चुका है, यह देख बहुत विलाप करने लगी। गाँव के लोग वहाँ एकत्र हुये उन्होंने जयघंटा को बताया कि कल ही इसने मुनिराज से पहली मछली पर जीव दया पालन करने का नियम लिया था, और तूने क्रोध

में इसे घर में ही नहीं घुसने दिया। जयघंटा को जब यह सब पता चला तो उसने कहा-मैं भी अपने पति के इस नियम का पालन करूँगी। कालान्तर में वह भी दिवंगत हुयी।

वहीं अवन्तिदेश की विशाला नाम की नगरी में विश्वप्रभ नाम का राजा राज्य करता था, उसकी रानी का नाम विश्वगुणा था। वहीं एक गुणपाल नाम का सेठ भी रहता था उसकी पत्नी धनश्री थी उनकी एक सुबंधु नाम की पुत्री थी। दरअसल में राजा विश्वप्रभ का मंत्री नरधर्म था, वह मिथ्यादृष्टि था, किन्तु वह गुणपाल सेठ की पुत्री सुबंधु को चाहता था। उसने गुणपाल से कहा-तू अपनी पुत्री की शादी मेरे साथ कर दे नहीं तो मैं तुझे मार दूँगा। सेठ ने राजा से कहा-तुम्हारा मंत्री बहुत दुष्ट है, किन्तु राजा ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। गुणपाल समझ गया कि राजा मेरी बात नहीं सुनेगा, वह कहने लगा चाहे कुछ हो जाये मैं अपनी कन्या को इस मिथ्यादृष्टि के लिये नहीं दूँगा, इसलिये वह अपनी कन्या को लेकर कौशाम्बी चला गया और अपनी पत्नी धनश्री को अपने मित्र श्रीदत्त के यहाँ छोड़कर चला गया यह कहकर कि भाई मैं विदेश जा रहा हूँ अपनी कन्या की शादी करके पुनः यही लौटूँगा। श्रीदत्त ने उसे विश्वास दिया कि तुम निश्चिंत रहो।

गुणपाल की पत्नी धनश्री उस समय गर्भवती थी। एक दिन शिवगुप्त नाम के मुनिराज आहार करने हेतु श्रीदत्त के यहाँ आये। गर्भवती धनश्री उस समय गर्भ के भार से पीड़ित हो रही थी, वहाँ उस समय जो महिलायें आहार की अनुमोदना करने आयी थीं उन्होंने कहा-महाराजश्री इस महिला के गर्भ में कौन सा पापी जीव आया है जो अपनी माँ को कष्ट दे रहा है। इस जीव के आते ही इसका पिता भी देश छोड़ विदेश चला गया। शिवगुप्त मुनिमहाराज ने कहा-ऐसा मत कहो। इसके गर्भ में जो जीव आया है वह भविष्य में इस नगर का सेठ होगा। मुनिराज की बात श्रीदत्त सेठ ने भी सुनी, वह भी नगर सेठ

था। उसने सोचा जब गुणपाल का बेटा बड़ा होकर नगर सेठ बन जायेगा तो क्या मेरा बेटा उसकी नौकरी करेगा? उसके मन में पाप आ गया, और सोचा 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी'।

अब क्या करे, उसकी स्त्री को तो मार नहीं सकता, लौटकर गुणपाल पूछेगा तो मैं क्या कहूँगा, मैं इसके पुत्र को जन्म लेते ही मरवा दूँगा और जब धनश्री ने पुत्र को जन्म दिया तो उसने मृत पुत्र तो उसके पास रख दिया और चाण्डालों को वह जीवित पुत्र देकर कहा मैं तुम्हें बहुत धन दूँगा तुम लोग इसे जंगल में ले जाकर मार दो। चाण्डाल उसे ले गये उन्होंने सोचा धन तो हमें मिल ही गया, अब इसे मारकर क्या होगा, ये यहाँ अपने पुण्य पाप से जिये या मरे हमें क्या? उस बालक को वहीं छोड़ आये और आकर श्रीदत्त से कह दिया हमने उस बालक को मार दिया। वह बालक वहीं चट्टान की शिला पर रखा था संयोगवशात् वहाँ जंगल से उसी समय श्रीदत्त का बहनोई इंद्रदत्त गुजरा। उसने वह बालक अपनी पत्नी राधा को सौंप दिया। वे बहुत प्रसन्न हुये। श्रीदत्त को जब यह समाचार मिला तो वह अपनी बहन से मिलने पहुँचा। वह पुत्र को देखकर पहचान गया और छल से अपनी बहन को अपने घर ले गया। वहाँ उसके पुत्र को पुनः मरवाने किसी चांडाल को दिया। वह चांडाल भी, उसे जंगल में झाड़ियों के बीच रख आया। संयोग की बात वहाँ गायें आ गयीं और उसे घेर कर खड़ी हो गयीं।

वहाँ गोविन्द नाम का ग्वाला आया, उसने देखा मेरी गायें वहाँ झाड़ी में खड़ी हो गयी। वहाँ जाकर देखा तो एक गाय के स्तन से दूध उतर रहा है वह दूध बालक के मुख पर गिर रहा था। वह आश्चर्य चकित हो गया कि यह क्या हो रहा है, वह उसे देख खुश होता हुआ कहता है मेरे कोई पुत्र नहीं था मेरी पत्नी सुनंदा हमेशा कहती थी कि भगवान् से पुत्र माँग लो भगवान् ने आज मुझे पुत्र दे दिया और घर ले जाकर उसका पालन-पोषण करने लगे।

उन्होंने उस बालक का नाम रखा धनकीर्ति। इधर श्रीदत्त सेठ की एक पुत्री थी जिसका नाम था विषा। कहीं-कहीं श्रीमती नाम भी आता है। श्रीदत्त पुत्री के विवाह के लिये वर की तलाश में, नगर में घूमने लगा, बहुत ढूंढा कभी अच्छा वर मिले तो घर नहीं मिले, अच्छा घर मिले तो श्रेष्ठ वर नहीं मिले। वह अपनी पत्नी से कहकर आया था कि तभी लौटकर घर आऊँगा जब कोई अच्छा वर मिल जायेगा और घर में विवाह की सब सामग्री तैयार कर रखी थी। जब वह गोविंद के यहाँ पहुँचा और उस सुन्दर से बालक को देखा तो दंग रह गया, किंतु उसे पहचानते देर न लगी।

ये तो वही बालक है जिसको मरवाने के लिये मैंने चाण्डालों को दिया था, उसका भी ऐसा ही चेहरा था, अब क्या करूँ इसको मरवाना तो है ही। उसने गोविंद से कहा-मुझे घी की आवश्यकता है। गाड़ी में घी रखवादो तुम्हारा बेटा घर तक पहुँचा आयेगा, पत्र मैं लिख देता हूँ। गाड़ी घी से भरवा दी गई और धनकीर्ति उस पत्र को गले में बांधकर चला गया।

वह पहुँच ही रहा था अवन्तिनगर विशाला नगरी की ओर। तभी वहीं निकट के उद्यान में विश्राम करने के लिए रुका, थके होने के कारण उसे नींद आ गई। संयोग की बात वहाँ अनंगसरा नाम की वेश्या आयी उसने देखा इतना सुंदर युवा बालक यहाँ सो रहा है। उसे देख मन में पाप का भाव हुआ, उसने देखा कि उसके गले में कुछ बंधा है धीमे से वह पत्र खोला कि इसमें क्या लिखा है ? उसमें लिखा था ''प्रिय आज्ञाकारी पुत्र महाबल, मेरा इंतजार नहीं करना, इसे विष दे देना आपका पिता श्रीदत्त''। वेश्या ने जब देखा तो उसने एक लकड़ी लेकर अपनी आँख से काजल निकालकर विष के स्थान पर एक डंडा और लगा दिया 'विषा' कर दिया। ''मेरा इंतजार नहीं करना इसे विषा दे देना'' पत्र ज्यों की त्यों उसके गले में बांध दिया।

धनकीर्ति घी की गाड़ी लेकर हवेली पर पहुँचा और महाबल को वह पत्र दिया कहा इसे लीजिये। महाबल ने पत्र देखा और माँ से कहा-माँ पिताजी ने यह पत्र भिजवाया है और कहा है मेरा इंतजार नहीं करना, इसे विषा दे देना। 'विषा' उसकी बहिन का नाम था। ज्योतिषी को बुलाया, पंडित जी ने भी उसी दिन के शुभ योग में विवाह का मुहूर्त निकाला क्योंकि वह योग बहुत शुभ था इसीलिये विवाह उसी दिन का तय कर दिया। माँ व पुत्र ने सोचा पिता को आने में शायद देरी लगेगी इसलिये उन्होंने पत्र में भी लिख दिया है कि मेरी इंतजारी मत करना। माँ बेटे ने मिलकर विषा की शादी धनकीर्ति से कर दी, दहेज में सामने वाली हवेली व खूब सारा धनादि भी दे दिया।

दो-चार दिन बाद श्रीदत्त सेठ लौटकर आया, संध्याकाल के समय आया था सो बिना किसी से मिले आकर सो गया। प्रात:काल उठा और छत पर गया। उसने वहाँ देखा कि सामने वाली हवेली में तो वही लड़का घूम रहा है। मैंने तो पत्र लिखकर दिया था कि इसे विष दे देना मेरे पुत्र महाबल ने मेरे आदेश का पालन नहीं किया। उसे बुलाया-और पूछा तुमने मेरे आदेश का पालन क्यों नहीं किया? वे बोले पिता जी आपकी आज्ञा सर माथे आपने कितना सुंदर व योग्य मुहूर्त भेजा व सुयोग्य वर भेजा मैंने तुरंत ही माँ से पूछकर विषा का विवाह उससे कर दिया और सामने वाली कोठी दहेज में दे दी।

श्रीदत्त यह सुनकर भौंचक्का रह गया फिर कुछ संभलकर पुत्र से सारी वार्ता जानी और सोचा इसे मारना तो है। मैं इसे नगर सेठ नहीं बनने दूँगा वो तो मेरा ही बेटा बनेगा। संध्याकाल में उसे बुलाया-दामाद बनने के बाद भी श्रीदत्त के मन में अभी भी पाप है। धनकीर्ति से कहा-हमारे यहाँ की रीति है, तुम्हारी शादी अभी पक्की नहीं मानी जायेगी, तुम्हें संध्याकाल में जंगल में जाकर देवी को फल भेंट करके आना है। उनसे आशीर्वाद लेकर आओगे तभी पूर्ण रूप से शादी

सम्पन्न मानी जायेगी अन्यथा नहीं। वह संध्याकाल में फल लेकर जाने लगा, इधर सेठ ने पहले से चाण्डाल नियुक्त कर दिये थे कि जो कोई भी देवी के यहाँ फल अर्पित करने आये तो न आव देखना न ताव उसे वहीं समाप्त कर देना है।

संयोग की बात जंगल में जाते समय सामने से उसका साला महाबल आता हुआ दिखाई दिया। वह कहता है जीजाजी आप इस समय कहाँ जा रहे हैं। वह बोला ससुर जी ने यह फल देवी के मंदिर में अर्पित करने के लिये कहा है मैं वहीं जा रहा हूँ। महाबल ने कहा-क्या आपने वह मंदिर कभी देखा है। क्या आप वहाँ कभी गये हैं और कहने के साथ हाथ से फल छीना और कहा आप घर जाइये मैं अभी फल चढ़ा कर आता हूँ। और महाबल दौड़ता हुआ चला गया, मंदिर में प्रवेश करके फल चढ़ाया ही था कि चार तलवारें एक साथ मिलीं और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये।

श्रीदत्त घर पर निश्चिंत होकर सो गया सोच रहा था आज धनकीर्ति नहीं बचेगा। किंतु उसके आश्चर्य का ठिकाना तब नहीं रहा जब प्रातःकाल उसने सामने वाली हवेली पर पुनः उसे टहलते हुये देखा। उसने उसे बुलाया और पूछा-तुमने कल मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया तुम देवी के मंदिर नहीं गये। वह बोला पिताजी पालन तो किया था, किंतु मार्ग में महाबल मिला वह मेरे हाथ से फल छीनकर स्वयं ही चढ़ाने को ले गया। यह सुनकर श्रीदत्त मूर्च्छित हो गया पुनः होश में आकर पुत्र का शोक मनाया। कुछ दिन बाद उसे परेशान देख उसकी पत्नी ने पूछा आखिर बात क्या है। तुम्हारे मन में क्या चल रहा है?

उसने कहा-मैं अंदर ही अंदर घुला जा रहा हूँ, बात यह है मैं इस धनकीर्ति को नगर सेठ नहीं बनने दूँगा, ये वही बालक है जिसे मैंने

जन्म के बाद मरवाने को भेजा था, तब नहीं मर पाया, अभी भी पत्र लेकर विष देकर मारने की योजना से भेजा फिर भी नहीं मर पाया, फल चढ़ाने के बहाने से चाण्डालों को नियुक्त किया तब भी बच गया, किंतु मैं इसे मारकर ही रहूँगा चाहे भले ही मेरा बेटा मर गया हो, मर जाने दो, पर मैं इसे नगर सेठ नहीं बनने दूँगा। सेठानी ने कहा-इतनी छोटी सी बात मुझे ही बता देते ये काम तो मैं कब का कर देती, तुमने सब कुछ बर्बाद भी कर दिया और कुछ कर भी न पाये। आप अब चिंता न करो निश्चिंत रहो।

महीना भर बीत गया, उसने कहा-दामाद जी हमारे यहाँ रीति है कि एक माह बाद दामाद का निमंत्रण किया जाता है इसलिये आप दोनों को घर पर आना है। उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। माँ ने बेटी को बुलाकर कहा देख बेटी ये भोजन सामग्री रखी है मैं थोड़ी देर से आती हूँ मुझे नदी किनारे कुछ काम है ऐसा बहाना करके चली गयी। चलते वक्त कह गयी कि-पुत्री जब तेरे पिताजी आयें तो उनको ये गुड़ के लड्डू दे देना और जब दामाद जी आयें तब उन्हें ये धवल शक्कर के लड्डू व नाना प्रकार के ये सभी व्यंजन खिला देना। बेटी ने सोचा यदि पिताजी आगे पीछे आये तब तो मैं माँ की आज्ञा का पालन कर लूँगी, किंतु हुआ ये कि पिताजी व उसका पति दोनों एक ही समय भोजन करने बैठे।

जब भोजन परोसा तो एक में गुड़ के लड्डू और एक शक्कर के लड्डू बाकी आहार तो समान था, यह देख बेटी के मन में भाव आया पिताजी क्या सोचेंगे कि शादी हुये अभी चार दिन नहीं हुये और इतना भेदभाव अपने पति के लिये शक्कर के लड्डू और पिता के लिये गुड़ के लड्डू। कहीं पिताजी के मन में यह भेदभाव की भावना घर न कर जाये, मैं अपने पति को तो जिंदगी भर कुछ भी खिला दूँगी, आज अपने ही घर में अपने ही हाथ से अपने पति के लिये

विशेष वस्तु परोसूँगी, पिता को सामान्य वस्तु परोसूँ तो यह मुझे शोभा नहीं देगा इसीलिये उसने क्या किया कि थाली ही बदल दी, पति वाली थाली पिता के सामने रख दी, पिता वाली थाली पति के सामने रख दी। दोनों ने भोजन प्रारंभ किया, पिता ने ज्यों ही शक्कर का लड्डू खाया वहीं गिर गये।

बेटी व दामाद दोनों घबरा गये, वैद्य को बुलाया, रोना-धोना प्रारंभ हो गया। यह खबर नदी किनारे सेठानी तक भी पहुँची कि लगता है तुम्हारे यहाँ कोई मृत्यु को प्राप्त हो गया है। वह मुस्कुराती हुयी आ रही थी, सोच रही थी सेठ जी जिस काम को नहीं कर पाये उसे मैंने चुटकियों में कर दिया। जैसे ही घर में प्रवेश किया तो देखती है उसका पति चारों खाने चित मृतक अवस्था में पड़ा है। मुँह से जहर निकल रहा है, दंग रह गयी। पति के अग्नि संस्कार के बाद उसने अपनी बेटी से पूछा-बेटी तुमने जैसा मैंने कहा वैसा नहीं किया। वह बोली माँ मुझे नहीं पता क्या हुआ मैंने तो बस थाली बदल दी थी। पूछा बेटी क्या शक्कर वाले लड्डू और बचे हैं बोली हाँ माँ रखे हैं दो और बचे हैं पिताजी तो वह भी पूरा नहीं खा पाये थे बीच में ही गिर पड़े। उसकी माँ ने वे लड्डू खा लिये और वह भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी।

दोनों हवेली का मालिक वह धनकीर्ति बन गया। इसके साथ-साथ वहाँ का राजा विश्वप्रभ व रानी विश्वगुणा की पुत्री गुणवती के साथ उसका विवाह भी हुआ वह राज दामाद भी बना और नगर सेठ भी बना।

एक दिन यशोधन नाम के मुनिराज उस नगर में आये, राजा आदि सभी उनके दर्शन करने व उपदेश सुनने गये। तब धनकीर्ति ने हाथ जोड़कर पूछा-महाराज ! मैंने पूर्व में ऐसा कौन सा पुण्य किया

जिसके कारण मैं सामान्य सा अनाथ बालक होकर भी इस अवस्था को प्राप्त हुआ हूँ। मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान से जानकर कहा-

इसी अवन्ति देश की विशालानगरी के समीप शिप्रा नदी के किनारे मल्लाहों की बस्ती है। वहाँ पर तू मृगसेन नाम का धीवर था, तूने अहिंसा व्रत को लेकर (कि जो मछली मेरे जाल में सबसे पहले फँसेगी उसे मैं दया करुणा पूर्वक अभयदान दूँगा) एक मछली के प्राणों की पाँच बार रक्षा की इसीलिये यहाँ तेरी भी पाँच बार प्राणों की रक्षा हुयी। तेरी जो पत्नी है विषा (कहीं कहीं श्रीमती नाम भी आता है) वह तेरी पूर्व भव की पत्नी है जयघंटा, जिसने तेरे मरने के उपरांत अहिंसा व्रत का नियम ले लिया था इसीलिये यहाँ भी तेरी पत्नी बनी है। पहले चांडालों ने तुझे वन में छोड़ दिया तेरे प्राणों की रक्षा हुई। और वह मछली जिसके प्राणों की तूने रक्षा की थी वह पहले मृत्यु को प्राप्त कर गाय बनी जिसने तेरी रक्षा की थी, जिसके खड़े होने पर उसके स्तन से तेरे मुख में दूध झरा था, बाद में वह गाय मृत्यु को प्राप्त कर अनंगसरा नाम की वेश्या बनी, जिस वेश्या ने अपनी आँख का काजल निकाल करके विष का विषा कर दिया था, तब तेरे प्राणों की रक्षा हुयी। चौथी बार महाबल का न जाने तेरे प्रति क्या विशेष स्नेह उमड़ा जो तेरे हाथ से फल को छीन कर ले गया। और पाँचवी बार तेरी पत्नी पूर्व में जो जयघंटा थी उसकी बुद्धि ऐसी हो गयी कि थाली ही बदल गयी। तेरे पुण्य के उदय से उसका ऐसा भाव आ गया। क्योंकि पूर्व में तूने पाँच बार उस मछली के प्राण बचाये तो यहाँ भी तेरे पाँच बार प्राण बचे। अहिंसा के माध्यम से तू यहाँ का नगर सेठ बन गया, राज जमाई भी बन गया।

इस कथानक को सुनकर व प्रत्यक्ष में देखकर के राजा को जातिस्मरण हो गया और उन्हीं यशोधन मुनिराज के समीप में राजा विश्वप्रभ दीक्षा ले लेते हैं। रानी विश्वगुणा भी आर्यिका दीक्षा ग्रहण

कर लेती है। वह गुणपाल जो इस धनकीर्ति का सही पिता था, जो विदेश चला गया था वह भी वहाँ आ जाता है और दीक्षा ले लेता है, उसकी पत्नी धनश्री भी दीक्षा ले लेती है और धनकीर्ति वहाँ का राजा बन जाता है।

महानुभाव ! अहिंसा का परिणाम ये होता है कि एक धीवर भी राजा बन सकता है और आगे चलकर क्रमशः कुछ ही भवों में मोक्ष को प्राप्त करेगा। उसने प्राणों की रक्षा की तो उसकी भी रक्षा हुयी।

हम यहाँ सुन रहे हैं 'भगवान् का फरमान्' भगवान् का सबसे बड़ा फरमान यही है आप भी कहते हैं-भगवान् महावीर स्वामी का क्या संदेश ''जिओ और जीने दो'' तुम भी चैन से जिओ और संसार के प्रत्येक प्राणी को जीने दो यही भगवान् का फरमान है। अहिंसा धर्म ही सर्वोत्कृष्ट है उस अहिंसा का प्रादुर्भाव आप सभी के जीवन में भी हो, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।''

प्रवचन 4

जीवन दर्शन की अनाधीनता

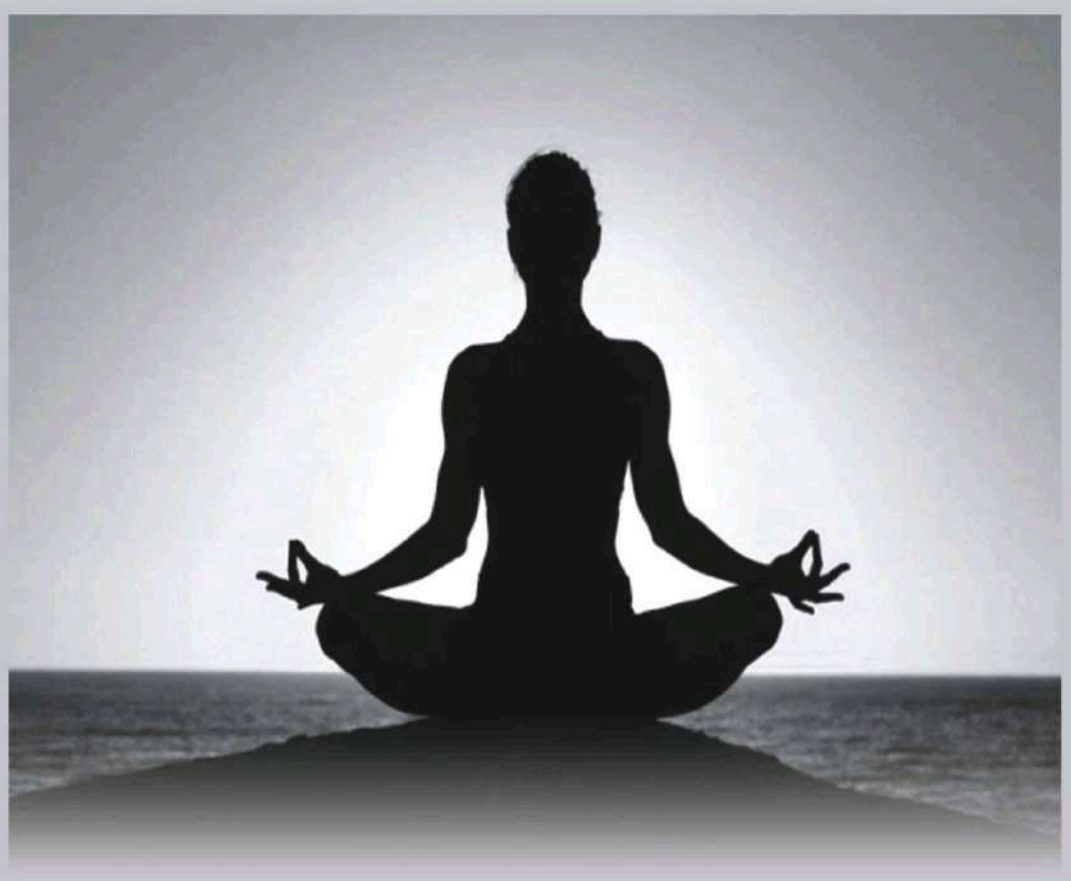

अन्तर्निरीक्षण द्वारा निजपरीक्षण
करने पर ही दोषों से
मुक्ति संभव है।

जीवन दर्शन की अन्तर्धारा

आज थोड़ी सी चर्चा करते हैं अपने ही जीवन के संबंध में। हमने आज तक अपने जीवन को कैसे देखा है, किस रूप में जाना है। जीवन आखिर में है क्या? संसार में विद्यमान प्रत्येक वस्तु उभय रूप से युक्त होती है, प्रत्येक वस्तु का एक अन्तरंग का रूप होता है एक बहिरंग का रूप होता है। वस्तु का बहिरंग रूप वे देखने में समर्थ होते हैं जिनके पास चक्षु इन्द्रिय होती है कि वस्तु काली-पीली-नीली कैसी है। जो नेत्र विहीन हैं वे उसके बाह्य रूप को देखने में समर्थ नहीं होते। जिनके पास नेत्र तो हैं किन्तु नेत्रों में ज्योति नहीं है वे भी वस्तु के बाह्य रूप को देखने में समर्थ नहीं होते। आवश्यक है वस्तु के बाह्य रूप को देखने के लिये नेत्र, नेत्रों में ज्योति व उसके साथ-साथ प्रकाश। यदि वस्तु अमूर्त रूप है तो नेत्र, ज्योति और प्रकाश भी वस्तु को दिखाने में असमर्थ होता है।

महानुभाव ! जीवन भी एक ऐसा ही द्रव्य है। द्रव्य आत्मा है, जीवन उसकी दशा है, परिणति है, अवस्था है। जैसे आपके जीवन में कई अवस्था आती हैं-गर्भावस्था, शैशवावस्था बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढावस्था, वृद्धावस्था। कई अवस्थायें आप अपने शरीर के बारे में देखते हैं किन्तु शरीर जीवन नहीं है, शरीर तो माटी की परिणति है। जिन पौद्गलिक वर्गणाओं के माध्यम से शरीर बना है वे पौद्गलिक वर्गणायें निरन्तर इस शरीर में आ रही हैं और खिरती चली जा रही हैं। जिस वर्गणा का काल पूरा होता है वह खिर जाती है, और जो वर्गणा समय पाकर के उदय में आती है वह अपना फल देने लग जाती है। जैसे-किसी वृक्ष पर लगे हुये पत्ते कुछ जो पीले पड़ गये उनका गिरना शुरू हो जाता है नयी-नयी कोंपलों का आना शुरू हो जाता है, ऐसे ही शरीर है, जरजर होता रहता है। जिन

परमाणुओं को हमने गर्भ के समय ग्रहण किया था वे वर्गणायें खिरती भी चली जा रही हैं और नूतन वर्गणाओं को हम प्रति समय ग्रहण भी कर रहे हैं।

ये ग्रहण करना और विसर्जन करना चल रहा है। जब कर्म निषेक उदय में आते हैं तो अपना फल देकर के झर जाते हैं और आगे के लिये बंध प्रारंभ हो जाता है। वैज्ञानिक लोग कहते हैं, हमारे शरीर में जितने भी परमाणु हैं, वर्गणायें हैं सात वर्ष में पूरा शरीर चेंज किया जा सकता है, सब परमाणु बदल सकते हैं। वैज्ञानिक मानते हैं कोई तीव्र पापी व्यक्ति जिसका श्याम वर्ण भी हो, जो कुरूप हो, दुर्भग नाम कर्म का उदय हो, दुस्वर नाम कर्म का उदय हो तो भी यदि वह चाहे तो सात वर्ष में समग्र परमाणुओं को बदल सकता है।

आपने भी अपने जीवन में देखा होगा जो बालक बचपन में बड़े सुंदर से दिखाई देते थे यदि 20-30 साल बाद देखें तो पहचान में नहीं आते कि ये वही बालक हैं या ऐसे बालक जो बचपन में घृणित दिखायी देते थे किंतु यौवन अवस्था में पहुँचते-पहुँचते बहुत सुन्दर व मनोज्ञ दिखने लगते हैं। यह तो शरीर की दशा है।

जीवन आपकी भाषा में जन्म और मृत्यु के बीच का पड़ाव है। व्यवहार की भाषा में आप ऐसा ही कहते हैं और यह कहना पूर्णतः असत्य भी नहीं है। क्योंकि व्यवहार में जीवन इसे ही माना जाता है। इसके आगे-पीछे जो जीवन माना जाता है वह निश्चय जीवन है, व्यवहार की आँखों से, व्यवहार की दृष्टि से देखने में नहीं आता।

आज हम चर्चा कर रहे हैं जीवन दर्शन की अन्तर्धारा। जीवन को देखने से पहले जानें कि जीवन है क्या? अभी तो हमने व्यवहार में जीवन देखा कि जीवन जन्म से प्रारंभ होकर मृत्यु पर अंत हो जाता है। कहते हैं अरे ! जब तक जीना है तब तक शांति से जियो इसका आशय क्या है ? क्या मृत्यु के बाद जीवन नहीं है? जीवन है, उसे

बिरला ही जान पाता है। मृत्यु के बाद दूसरा शरीर मिलता है उसे तुम जीवन कहने लग जाओगे किंतु वह भी जीवन की बाह्य दशा है। बाह्य दशा को पकड़ लेने से वस्तु का अन्तरंग पकड़ में नहीं आता। कई बार ऐसा होता है चावल का छिलका पकड़ में आता है अंदर चावल होता ही नहीं। महानुभाव ! कहीं ऐसा हमारे और आपके साथ तो नहीं हो रहा, कि जीवन के खोल को पकड़ करके हम बैठे हों और अंदर में कुछ हो ही नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं सिर्फ ढाँचा पकड़ कर बैठे हो अंदर में कुछ हो ही नहीं। जीवन को क्या वास्तव में हमने करीब से देखा है ? क्या कभी जीवन को जीवन में डूबकर के देखा है ? क्या हमने जीवन को सही रूप से जानने मानने व पहचानने का प्रयास किया है ? कहीं ऐसा तो नहीं जीवन का छायाचित्र देखने से हमको भ्रम हो गया हो कि हमने जीवन को जान लिया।

महानुभाव ! जीवन को अभी हमने बहुत दूर से देखा है क्योंकि हम जीवन के समीप जैसे ही जाते हैं तो ऐसा लगता है कि जीवन एक चिंगारी की तरह से है वह जलाता है। जीवन तो जलायेगा ही, उसके सामने कालिमा टिकेगी नहीं। जीवन एक ध्रुव सत्य है, उस सत्य को हम स्वीकार नहीं करना चाहते। हम पर्याय को पकड़ करके रह जाते हैं। जीवन को समस्या मानकर के उलझ जाते हैं। जीवन कोई पहेली नहीं जिसे सुलझाने के लिये पूरी जिंदगी दाव पर लगा दें। जीवन तो एक सहेली है जिसके साथ-साथ हमें चलना होता है। जैसे परछाई हमारे साथ-साथ चलती है, जीवन भी हमारे साथ-साथ चलता है।

जीवन शाश्वत सत्य है। लोग कहते हैं मृत्यु शाश्वत सत्य है जिसका जन्म हुआ उसकी मृत्यु नियम से होगी, किंतु हम कहते हैं जीवन शाश्वत सत्य है जब जीवन ही नहीं है तो न कभी जन्म है न मृत्यु। जीवन है तो जन्म और मृत्यु है। यदि कोई वस्तु है तो उसका

ओर-छोर है, कोई वस्तु है तो अनादि और अनंत है किंतु जब वस्तु ही नहीं तो आगे के गुणधर्म असंभव हैं, जब संसार में किसी वस्तु का अस्तित्व है सद्रूप अवस्था है तो उसमें वस्तुत्वगुण भी पाया जायेगा, अगुरुलघुत्व गुण भी होगा, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व आदि सभी गुण भी पाये जायेंगे किन्तु जिसका अस्तित्व ही नहीं है तो अन्य गुण होना असंभव है।

हमने जीवन को आजतक समस्या समझ लिया है। जीवन समस्या नहीं समाधान है। हम जीवन को पहेली समझकर सुलझाने का प्रयास कर रहे हैं, जितनी सुलझाते हैं उतनी ही उलझती जाती है। दरअसल में हमने जहाँ से सुलझाना प्रारंभ किया है वहाँ से नहीं सुलझाना है, कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं जिनके हल उल्टे निकाले जाते हैं, कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं जो सीधी तरह से हल किये जाते हैं। लगता है जीवन भी ऐसी पहेली है जिसका हल हमें पीछे से निकालना है आगे से नहीं। यदि ऐसा हम निकालने में समर्थ हो गये तब नि:संदेह जीवन के रहस्य को प्राप्त करने में समर्थ हो जायेंगे।

जीवन समस्या नहीं रहस्य है। समस्या और रहस्य में थोड़ा सा अन्तर है, समस्या का समाधान होता है, समस्या का अंत भी होता है समस्या नयी-नयी पैदा होती हैं, समस्यायें बेचैनी, उलझन व पीड़ा को देने वाली होती हैं। समस्यायें समस्यायें हैं कई बार समाधान मिलने पर भी ज्यों की त्यों खड़ी रह जाती हैं। किंतु रहस्य एक अलग चीज है। समस्या वेदना, बेचैनी है, पीड़ा है, किंतु रहस्य एक नयी जिज्ञासा है। हमारा जीवन रहस्य है समस्या नहीं। समस्या बोझ होती है और रहस्य एक नये बोध को देकर जाता है।

तो जीवन रहस्य है, बोध है, भार नहीं सार है, मेरा व दूसरों का आधार है। मेरा जीवन मेरे अन्तरंग का आकार है किंतु हमने जीवन को भार मान लिया है। जो जीवन को भार मान लेते हैं वे जीवन के

प्रति कभी आभार व्यक्त नहीं कर पाते। जिसने अपने जीवन को सार मान लिया है वही जीवन के प्रति अपना आभार व्यक्त करने में समर्थ होते हैं। हमने जीवन को ऐसे देखा है जैसे किसी व्यक्ति ने दूर से समुद्र को देख लिया हो, आप समुद्र के किनारे-किनारे घूमकर आये और कहने लगे मैं समुद्र को देखकर आ गया। ऐसे क्या समुद्र देखा जाता है क्या देखने मात्र से अनुभव प्राप्त होता है? समुद्र में डुबकी लगाओ, तैरो, कभी उल्टे-कभी सीधे फिर समुद्र का जो अनुभव प्राप्त होता है वह अनुभव पुस्तकों में प्राप्त नहीं होता। जो स्वयं से अनुभव मिलता है वह अनुभव दूसरों की कहानी सुनने से नहीं मिलता। अनुभव स्वयं का ही होता है वही जीवंत, सत्य व शाश्वत होता है।

महानुभाव ! मात्र समुद्र की लहरों को देख लेना ही समुद्र नहीं लहरें तो समस्यायें हैं, लगता है कई बार आप भी अपने जीवन रूपी समुद्र की लहरों को देखकर लौटकर वापस आ जाते हो और फिर समस्याओं में उलझ जाते हो इसीलिये कई बार आपको अपना जीवन भारभूत दिखायी देता है किन्तु जो जीवन की गहराई में जाकर डूब गये, पहुँच गये समुद्र के तल तक, वह बतायेंगे कि वास्तव में जीवन क्या है, समुद्र क्या है।

अभी तो आपने समुद्र के पानी को छूआ तक नहीं कि वह ठंडा है या गर्म, चखा भी नहीं खारा है या मीठा, यह लवण समुद्र है या घृतवर है या क्षीर समुद्र है या कालोदधि का पानी है। अभी जब कुछ देखा ही नहीं तो क्या अनुभव होगा। किनारे पर खड़े होकर क्या गहराई जान सकोगे जब तक कि गहरे में न उतरो। और उतरता वही है जिसके पास साहस होता है, साहस ही नहीं अदम्य साहस व दृढ़ निष्ठा होती है, आत्मा के समुद्र की गहराई तक वही पहुँचता है अन्यथा लहरों को देखकर किसी कमजोर व्यक्ति को तो हार्ट अटेक ही हो जाये। किन्तु जो अदम्य साहसी है वही समुद्र में जो रत्न हैं,

उनको मुट्ठी से लाने की चेष्टा कर सकता है, किंतु उस समुद्र में उसे खुली आँखों से उतरना पड़ेगा बंद आँखें करके जाओगे तो कहीं के कहीं पहुँच जाओगे।

जीवन भी एक ऐसा समुद्र है जो बहुत गहरा है। जो योगी जीवन की गहराई में एक बार डूब जाता है वह बाहर आने का नाम नहीं लेता। वह कहता है लौटकर आने के लिये मैंने यह जीवन प्राप्त नहीं किया मैंने तो ये जीवन, जीवन रूपी समुद्र की गहराई को नापने के लिये प्राप्त किया है। जीवन को समझने के लिए अदम्य साहस व उत्कृष्ट निष्ठा की आवश्यकता है। जीवन के रहस्यों को खोलने के लिए अंतरंग के नेत्रों को खोलने की व अनुभव रूपी अनुपम ज्ञान की आवश्यकता है। तुम्हें पुस्तकों में मिठाई का नाम तो पढ़ने में आ जायेगा किन्तु मिठाई का स्वाद नहीं आयेगा। तुम्हें पुस्तकों में प्रेम की कहानियाँ सुनने-पढ़ने में आयेगीं किन्तु अनुभव नहीं होगा, पुस्तकें तुम्हें पीड़ा, वेदना, संघर्ष, का अनुभव नहीं दे सकती। इनफॉरमेशन एक अलग चीज है। नॉलिज एक अलग चीज है और एक्सपीरियंस उससे भी अलग चीज है।

इनफॉरमेशन कभी नॉलिज नहीं होती, नॉलिज सदैव स्वतः ही होती है। विचार एक दूसरे से लिये दिये जा सकते हैं किंतु अनुभव न लिया जा सकता है न दिया जा सकता है। अनुभव तो स्वयं में किया जा सकता है। अनुभव का जहर हो या अमृत स्वयं ही पिया जाता है स्वयं में ही जिया जाता है।

महानुभाव ! वही अनुभव करना है, वही तो जीवन की अन्तर्धारा है, वहाँ तक जाना है। जो समुद्र की गहराई में नहीं जाता वही कहता है कि समुद्र में रत्न नहीं है। जिस भी महापुरुष ने अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य को प्राप्त किया है वह अपनी आत्मा

की गहराई में प्राप्त किया है। ये अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य कोई भी केवली या तीर्थंकर किसी वृक्ष से तोड़कर नहीं लाये, न किसी भूमि को खोदकर लाये, जो आत्मा के गुण हैं वे रत्न किसी बाह्य समुद्र, पृथ्वी, वृक्ष पहाड़ आदि में न मिलेंगे ये हमें आत्मा में मिलेंगे। जल की शीतलता जल में मिलेगी अग्नि की उष्णता अग्नि में मिलेगी किंतु हम अनादि काल से अपनी आत्मा को ढकते चले आ रहे हैं।

दरअसल में बात ये है कि हमने कभी अपने जीवन की यात्रा प्रारंभ करने की सोची भी है तो एक कदम बढ़ाते ही हमारी आत्मा काँप जाती है क्योंकि हमारा जीवन अंधकारमय है, अनादिकाल से हमने जीवन में कोई दीपक तो जलाया ही नहीं, हम चले ही कहाँ हैं। चलता है व्यक्ति प्रकाश लेकर और अंधकार में तो केवल भटकना होता है, चलने वाला व्यक्ति पहुँचता है किंतु भटकने वाला व्यक्ति कहीं पहुँचता नहीं है।

अंधकार व्यर्थ की भटकन व भ्रमण है किंतु प्रकाश की यात्रा करने वाला मंजिल को प्राप्त करने के लिये गन्तव्य पर चलकर निश्चित रूप से लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। हम तो डरते ही रहे कि हमारे पास ज्ञान ही नहीं है, प्रकाश ही नहीं है, हम पूरे संसार को कैसे जानें कैसे क्या करें? जब केवलज्ञान का सूर्य हमें प्राप्त हो जायेगा तभी हम यात्रा करेंगे किंतु केवलज्ञान का सूर्य ऐसे प्राप्त नहीं होता। यह शर्त है कि अमावस्या की रात्रि में केवलज्ञान का सूर्य उदय नहीं होगा अर्थात् मिथ्यादृष्टि की चेतना में जब तक मिथ्यात्व की अमावस्या है तब तक केवलज्ञान का सूर्य नहीं उगेगा। पहले तो अमावस्या की रात्रि को छाँटना आवश्यक है। अभी पूर्णिमा का चाँद भी नहीं आयेगा उसके लिये भी चौदह सीढ़ियाँ चढ़कर जाना पड़ेगा। एकम् से चौदस तक, तब पूर्णमासी आयेगी तभी पूर्णचन्द्र प्राप्त होगा, अन्यथा नहीं। सूर्य को प्राप्त करने के लिये इंतजारी करनी पड़ेगी।

महानुभाव ! वह प्रकाश ऐसे नहीं मिलेगा, मिथ्यादृष्टि के जीवन में न तो केवलज्ञान का सूर्य आयेगा न मन:पर्यय ज्ञान का चन्द्रमा, न कोई परमावधि, देशावधि व सर्वावधि ज्ञान के किसी नक्षत्र का प्रकाश होगा। कुछ नहीं है अभी तो अंधकार ही अंधकार है। पहले मिथ्यात्व को छोड़ना ही पड़ेगा तभी प्रकाश प्राप्त होगा।

अभी तो तुम्हारे पास सच्चे देव-शास्त्र-गुरु रूपी टॉर्च है। जिस टॉर्च का प्रकाश तीन कदम से ज्यादा नहीं। बेचारा व्यक्ति उदास खड़ा है, उसके जीवन में कब से जिज्ञासा थी कि मैं भी इस नगर के बाहर बने विशाल जिनालय में विराजमान ऊँचे तोरण द्वारों से सहित सुन्दर कलश व शिखरों से युक्त अर्हद्घंटनाद की ध्वनि से युक्त उन वीतरागी अरिहंत भगवान् के दर्शन करूँ। किन्तु मैं वहाँ तक कैसे जाऊँ मेरे पास तो मात्र तीन कदम का प्रकाश है और यहाँ से दूरी है बारह मील कैसे जा पाऊँगा मैं उस मंदिर तक।

बेचारा उदास खड़ा है, कभी सामने से देखता है तो अंधकार, पीछे से देखता है तो छोटा सा प्रकाश। तभी लगा कोई वृद्ध पुरुष है जिसकी दाढ़ी में एक भी काला बाल नहीं है। सफेद बालों वाला वह वृद्ध पुरुष लाठी टिकाता हुआ चला आ रहा है। उस युवक ने पूछा-आप कहाँ जा रहे हो? वृद्ध ने कहा-बेटा मैं उस मंदिर के दर्शन करने जा रहा हूँ। युवक ने कहा-बाबा आप इस अंधेरे में दर्शन करने कैसे जाओगे? वे बोले-मेरे पास प्रकाश है। युवक पुन: बोला-आप इतने छोटे से तीन कदम के प्रकाश से 12 मील की यात्रा कैसे करोगे? बाबा जी समझ गये, इस युवक की यही समस्या है इसीलिये आगे नहीं बढ़ा।

वे कहने लगे बेटा-तुम ठीक कहते हो ये तीन कदम का प्रकाश 12 मील की यात्रा कैसे करायेगा? किंतु चिन्ता न कर एक कदम का

प्रकाश भी पर्याप्त है चाहे यात्रा हजार मील की क्यों न हो। यात्रा प्रारंभ होती है पहले कदम से और तुम्हारे पास तो प्रकाश भी है, बुद्धिमान व्यक्ति वे कहलाते हैं जो सहजोपलब्ध सामग्री का सदुपयोग कर लेते हैं। बेटा तेरे पास तीन कदम का प्रकाश है, तीन कदम आगे चलो फिर अंधकार आ जाये तो ठहर जाना, ठीक है, वह तीन कदम आगे बढ़ा तो प्रकाश भी तीन कदम आगे और बढ़ गया, बाबा ने पूछा अंधकार आ गया क्या? बोला नहीं थोड़ा प्रकाश और है कितना है? लगभग 2-3 कदम। ठीक है बेटा थोड़ा और बढ़ो, बाबा भी उसके साथ चलते जा रहे हैं वह भी चलता जा रहा है। तीन-तीन कदम चलते-चलते मंदिर तक पहुँच जाता है और भगवान् के दर्शन कर लेता है।

महानुभाव ! जहाँ से पुनः लौटकर आना नहीं होता, वह मंदिर का देवता मानो मेरी आत्मा ही है, उस मंदिर में मुझे पहुँचना है। मेरे पास भी तीन कदमों का प्रकाश है सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र का। तुम्हारे पास भी तीन कदमों का प्रकाश है सच्चे देव, सच्चे शास्त्र व सच्चे गुरु का। जिसके पास ये तीन-तीन कदम का प्रकाश है उसे तीनों लोकों में कहीं अंधेरा नहीं मिलेगा। ये तीन कदम ही अंतरंग में प्रकाश देने वाले हैं। इन तीन रत्नों के दिव्य प्रकाश में हम अपनी यात्रा करना प्रारंभ करें, और देखें अपने जीवन को कि आखिर में हमारा जीवन है क्या?

जिससे हम आज तक डरते रहे, घबराते रहे, जिसके अंदर में जाने से जी चुराते रहे उस अपनी आत्मा को छोड़कर हमने सब कुछ जान लिया। समाचार पत्रों से, न्यूज से हमें दुनिया भर की जानकारी है। संसार के एक-एक द्रव्य के भाव जानते हैं किन्तु अपनी आत्मा को छोड़ देते हैं। सामने वाला व्यक्ति क्रोध करता है तो तुम कह देते हो इससे क्या कहना इसका तो स्वभाव है क्रोध करना, अरे भाई !

तुम्हें सामने वाले के स्वभाव की तो जानकारी है किंतु अपने स्वभाव की जानकारी नहीं है। और तो और बाजार में किस वस्तु के भाव गिर रहे हैं, किसके भाव उठ रहे हैं इन सबकी लगभग पूर्ण जानकारी है किंतु अपनी चेतना के भावों की जानकारी नहीं है कि मेरी चेतना में कब कौन से परिणाम आ रहे हैं। हम अपने जीवन के अंतरंग को देखें तो सही, हमारा जीवन बाहर से देखने में समझ नहीं आयेगा। बाहर से हमारा आपका सभी का जीवन समस्याओं से उलझा हुआ है। मात्र बाहर से जीवन देखने से जीवन दर्शन नहीं होता।

महानुभाव ! डरो मत, आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने अपने अंतिम उद्‌बोधन में कहा-''बाबा नो भ्युनका संयम धारण करा संयम धारण करे बिना मुक्ति नाहिं।'' हे संसार के भव्य प्राणियों डरो मत संयम को स्वीकार करो इसको प्राप्त किये बिना किसी की मुक्ति नहीं होती। आप लोग भी डरो मत संयम का प्रकाश सर्वोत्कृष्ट प्रकाश है। ज्ञान का प्रकाश मध्यम प्रकाश है और दर्शन का प्रकाश जघन्य प्रकाश है किंतु दर्शन और ज्ञान दोनों का प्रकाश संयुक्त होता है। जिसके पास ये सम्यक् ज्ञान दर्शन का प्रकाश है वह भी डरे नहीं अपने दोनों कदमों को बढ़ाये। संयम का प्रकाश मतलब अस्त्र शस्त्र उसके पास आ गया और जिसके पास ये प्रकाश है उसी के पास अदम्य साहस है, आत्मा-अनात्मा का भेद विज्ञान है। हम जीवन के अन्तरंग को देखें केवल जीवन की बाहरी सतह पर ना घूमें।

एक गुड से भरा मटका जिसका मुँह बंद है लेकिन उसकी गंध बाहर तक आ रही है, कोई चींटी मिठास पाने के लिए उस मटके के ऊपर ही ऊपर घूमती रहे ऐसा करते-करते वह कितने भी जन्म निकाल दे लेकिन मिठास को प्राप्त नहीं कर सकती, ऐसे ही हम भी जीवन की बाहरी सतह पर चक्कर लगाते रहते हैं। गंध तो आती रहती है, इसी जीवन में से हमारे तीर्थंकरों ने केवलियों ने अनंत दर्शन, ज्ञान,

सुख, वीर्य रूपी मिठास को प्राप्त कर लिया, वही वृक्ष है जीवन का किंतु मेरे वृक्ष पर वैसे फल क्यों नहीं आते, क्या बात है? क्या मेरा वृक्ष वृक्ष नहीं मात्र वृक्ष का चित्र है? 'नहीं', घबराओ मत इसी जीवन के वृक्ष पर अनंत सुख, दर्शन, ज्ञान, वीर्य के फल लगेंगे, इसी पर क्षायिक गुण, पारिणामिक गुण आत्मा के और भी गुण प्राप्त होंगे।

वृक्ष वही है किंतु जो फल वृक्ष की चोटी पर लगता है उस फल को तुम जड़ों में खोजने का प्रयास कर रहे हो और जो फल वृक्ष की जड़ में लगता है उसको वृक्ष की चोटी पर देखने का प्रयास कर रहे हो। कुछ फल ऐसे होते हैं जो जड़ों में लगते हैं, कुछ फल ऐसे होते हैं जो चोटी पर लगते हैं, कुछ फल ऐसे होते हैं जो मध्य तना को फोड़कर निकलते हैं, कुछ फल ऐसे होते हैं जो पुष्पों के साथ लगते हैं, कुछ फल ऐसे होते हैं जो पत्तों के बीच में छिपे होते हैं। तो वृक्ष में फल कहाँ लगते हैं यह जानकारी तो हो, यह जानकारी तब मिलेगी जब आपको पूरे वृक्ष का सम्यक् अध्ययन हो जाये। वृक्ष के मूल भी जानना है, वृक्ष के शूल भी जानना है, वृक्ष के उसूल भी जानना है, वृक्ष के फूल भी जानना है तब तो ठीक है। ऐसे ही जीवन में जानना है कि जीवन का कूल क्या है, जीवन का मूल क्या है, जीवन की भूल क्या है, जीवन का तूल क्या है और जीवन का चूल क्या है यह सब जानना और देखना है।

मात्र जीवन के एक अंश को पकड़ लेने से पूरा जीवन समझ में नहीं आता। उन जन्मांध राजकुमारों की तरह जिनमें से एक ने हाथी की सूँड पकड़ी तो कहा हाथी केले के स्तंभ के जैसा है, एक ने पैर पकड़ा तो कहा-खम्भे जैसा है, एक ने पूँछ पकड़ी तो कहा-रस्सी जैसा है, एक ने कान पकड़े तो कहा-सूपा जैसा है, किसी ने दाँत पकड़े तो कहा-हाथी मजबूत लकड़ी जैसा है, जिसने पीठ पकड़ी उसने कहा चबूतरे जैसा है। वे सभी एक-एक अंग को पकड़ कर

हाथी को अलग-अलग प्रकार से कहने लगे आपस में लड़ने झगड़ने लगे तब उनके सेवक ने बताया तुमने हाथी को जाना तो सही किंतु एक-एक अंश को जाना, एक अंश को जानकर समग्रता का ज्ञान नहीं होता।

हम भी जीवन के एक अंश को जानते हैं। यदि हमने मान लिया है कि जीवन अनित्य है तो केवल एक अंश को जानकर रह गये पर जीवन नित्य भी है। जीवन एक है तो अनेक भी है, भेद है तो अभेद भी है, अवक्तव्य है तो वक्तव्य भी है, जीवन अखण्ड है तो खण्ड-खण्ड भी है। जीवन द्रव्य है तो पर्याय भी है। जीवन में सब कुछ है समग्रता को जानने के लिए थोड़ा धैर्य का परिचय देना पड़ता है। साहस व धैर्य के साथ आगे बढ़ना पड़ता है।

महानुभाव ! जीवन विशाल व विराट है। अब देखना है 'जीवन दर्शन की अन्तर्धारा' क्योंकि बिना बहिरंग रूप जाने अंतरंग रूप नहीं देखा जा सकता। जैसे किसी भी फली में दाना अंदर रहता है बाहर दिखायी नहीं देता ऐसे ही जीवन दर्शन बाहर से कुछ और दिखायी देता है, अंदर कुछ और दिखायी देता है। बाहर के खोल को तोड़कर जब अंदर जायेंगे तब अंदर में पहुँच पायेंगे। बाहर खोल की सुरक्षा करने वाला व्यक्ति अंतरंग को प्राप्त नहीं कर सकता। हमने तो अपने जीवन की बाह्य समस्याओं को अपना कवच बना लिया है उन कवचों को तोड़ना ही नहीं चाहते।

जो व्यक्ति मूंगफली के छिलके से ही राग करके बैठ जाये, छिलका टूटे नहीं दाना प्राप्त हो जाये असंभव है ऐसे ही जीवन की बाहर की खोल जब तक नहीं तोड़ेंगे, जब तक मिथ्यात्व मोह का पर्दा नहीं हटायेंगे तब तक जीवन का अंतरंग तुम्हें दृष्टिगोचर न हो सकेगा। तुम्हारा तुमसे साक्षात्कार न हो सकेगा। इसीलिये साहस करके हिम्मत

के साथ बाहर के खोल को तोड़ने का प्रयास करो। मोह की नींद को तोड़ने का प्रयास करो, मोह की मोटी चट्टान को तोड़ने का प्रयास करो वह तुम्हें ही तोड़ना है जैसे ही वह मोटी चट्टान टूटेगी तुम्हारी चेतना के पर्वत में से अंतरंग की धारा फूट पड़ेगी। आनंद की धारा, सुख की धारा, शांति की धारा फूट पड़ेगी।

वह पानी जो पहाड़ के ऊपर से आ रहा है वह तो गंदा पानी है उसमें तो मिट्टी बहकर आ रही है, वह विषाक्त पानी है, किंतु जो जल पहाड़ तोड़कर के निकलता है, पत्थर फोड़ के निकलता है वह निर्मल व स्वच्छ होता है, औषधि रूप होता है, शीतल होता है। जल की शीतलता बाहर देखने में नहीं मिलती है जल की शीतलता तो उसका स्वाद लेने से मिलती है। ऐसे ही हमारी आत्मा की दशा है जब हमारी चेतना से मिथ्यात्व, मोह, राग का पहाड़ टूटेगा तब उसमें से निर्मल स्वच्छ, मिष्ट जल रूपी अनंत सुख की प्राप्ति होगी।

महानुभाव ! जीवन दर्शन के लिए विश्लेषण करना पड़ेगा। जो चाहे वह पर्याय प्राप्त हो सकती है, चाहे साधु की हो या श्रावक की, पापात्मा की हो या धर्मात्मा की जिसकी चाहो उसकी पर्याय मिल सकती है। हम कौन सी पर्याय चाहते हैं ? सूर्य छिपा हुआ है बादलों के बीच में, रत्न बंधा रखा है मेरी अंटी में, शेर पड़ा हुआ है पिंजरे में बंद, पक्षी के पंख बांध दिये गये हैं। कैसे शोभा को प्राप्त हों ? पक्षी के पंख खुले तो वह आकाश में उड़े, शेर का पिंजरा टूटे तो वह दहाड़ करके पूरे जंगल को गुंजायमान कर दे और यदि बादल हटें थोड़ी हवा चले तो सूर्य का प्रकाश प्रताप आ जाये, ऐसे ही गाँठ में रखा रत्न खोलकर देख लिया जाये तो जो दर-दर की ठोकर खाते फिर रहे हैं वे स्वयं ही राजा बन जाये।

सबके पल्ले लाल, लाल बिना कोई नहीं,
जासे भयो कंगाल, गाँठ खोल देखी नहीं॥

खोल कर तो स्वयं को ही देखना पड़ेगा, गुरु महाराज आपको बता सकते हैं कि तुम्हारी गाँठ में रत्न है।

जीवन दर्शन की अन्तर्धारा बहिरंग धारा नहीं है, वह बहिरंग धारा तो हेय है। अंतरंग की धारा ही उपादेय है और वही स्वच्छ व निर्मल है। उसमें जब अवगाहन करोगे तब बहुत आनंद आयेगा।

हम चाहते हैं आप अपने चेतना के महासागर में अवगाहन करें, उसमें विद्यमान रत्नों को प्राप्त करें, और आप स्वयं रत्नाकर हैं, चैतन्य गुणों की खान हैं। यदि एक गुण भी प्राप्त कर लिया तो स्वर्ग के देवता आपके चरणों की धूलि को सिर पर लगाने के लिये तरस जायेंगे।

आप अपने जीवन की अंतरर्धारा को देखने के लिये प्रयासरत् हों। केवल जन्म-मृत्यु के पड़ाव को जीवन न मानें, जीवन उससे पहले था, बाद भी रहेगा, जीवन तो वह दिव्य अवस्था है जो न तो कभी नष्ट होती है और न कभी उत्पन्न होती है। वह जीवन शब्दों से परे है, अनुभवगम्य है। दो मिनट का नियम ले लो कि हम आँख बंद करके अपने जीवन की धारा को देखेंगे, अपने रत्नों का दर्शन करेंगे। यदि आपने ऐसा पुरुषार्थ कर लिया तो आपने जीवन में सबसे बड़ा पुरुषार्थ कर लिया और यदि आपने अपने जीवन को नहीं जान पाया तो जैसे आये थे हाट में वैसे ही चले गये। इस बाट से आये थे उस बाट से चले गये। जा रहे थे घाट पर किंतु घाट नहीं मिला टाट में ही उलझ कर रह गये।

महानुभाव ! अपने जीवन को घाट बनाना है, तीर्थ बनाना है। तुम्हारी आत्मा स्वयं तीर्थ है, तुम्हारी आत्मा का सहारा लेकर के संख्यात आत्मायें मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं। किंतु आज तो तुम ही स्वयं मिथ्यात्व में पड़े हो। तुम्हारे सम्यक्त्व के, ज्ञान के, चारित्र के

रत्न को देखकर के हजारों आत्मायें अपने रत्नों को प्राप्त कर सकती हैं। तुम क्यों पड़े हो मिथ्यात्व के कूप में, मोह की कीचड़ में, बाहर निकलकर आओ और अपनी शक्ति पहचानो, जानो। एक क्षण के लिए आँख बंद कर स्वयं को देखो, मृत्यु के पार भी अपने को देखो, जन्म के पूर्व भी अपने को देखो, जन्म के बाद भी अपने आपको देखो। अपनी आत्मा को इस शरीर से अलग देखो, दोनों एक नहीं हैं। अनुभव करो ज्ञाता दृष्टा बनकर। अपनी मन, वचन, काय की प्रवृत्ति देखो।

यदि इस प्रकार देखने का प्रयास करोगे तब नि:संदेह जीवन दर्शन की अन्तर्धारा आपको प्राप्त होगी और जिसे जीवन दर्शन की अन्तर्धारा मिल जाती है उसके जीवन में फिर कोई अन्य धारा नहीं बहती। धारा राधा की तरह होती है।

महानुभाव ! आपसे बस यही कहना है आप प्रयास करें पुरुषार्थ करें असंभव कुछ भी नहीं सब कुछ संभव है। हम ये नहीं कह रहे आप आज ही महावीर बन जाओ, हम ये कह रहे हैं आप इस ही जिंदगी में शांति व सुख का अनुभव करो, अच्छे व सच्चे श्रावक या साधक बन जाओ। हम नहीं कह रहे आप आज ही भगवान् बन जाओ हम तो बस चाहते हैं एक अच्छे इंसान बन जाओ, हम नहीं कहते आप 28 मूलगुणों को धारण कर लें हम तो इतना सा कहते हैं 8 मूलगुणों को धारण कर लें, हम नहीं कहते आप पाँच प्रकार के संसार का त्याग कर दो हम तो इतना कहते हैं 7 प्रकार के व्यसनों का त्याग कर दो।

यह सब आपके द्वारा संभव है। डरो मत, आगे बढ़ो-एक-एक कदम आगे बढ़ो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ यदि आप आगे बढ़ोगे और आपने मुझसे सहायता की भावना रखी तो मैं तुम्हारी सहायता

करने के लिए हर पल तैयार हूँ। यदि श्रद्धा से पुकारोगे तो हर पल सहारा मिलेगा। हर व्यक्ति पहले अकेला ही आगे बढ़ता है, सहारा बाद में मिलता है। जो दूसरों के सहारे से बढ़ता है वह कभी जीवन में आगे बढ़ नहीं पाता। सहारा छूटते ही गिर जाता है और जो अपना पहला कदम बिना किसी सहारे से बढ़ाता है, तो रास्ते में सहारा मिल जाता है वह बहुत जल्दी अपनी यात्रा को पूर्ण कर लेता है।

महानुभाव ! 'मैं अकेला ही चलूँगा मंजिल तक' इस संकल्प के साथ चलोगे तो तुम्हारे मार्ग में बहुत सहारे मिलेंगे, इशारे भी मिलेंगे, फूल व शूल भी मिलेंगे किन्तु ये बात भी तय है कि आपको आपकी मंजिल भी मिलेगी।

मैं यही भावना भाता हूँ आपको आपकी मंजिल मिले, आप भटकें नहीं, चलना प्रारंभ करें, अंधकार को छोड़कर दिव्य प्रकाश में मंजिल का अवलोकन करें। मंजिल दूर नहीं है, दुर्लभ व दु:साध्य नहीं है, आपकी चेतना में है आँख बंद करके केवल उसे देखना है। एक बार देख लोगे फिर तुम बाहर की दौड़ को छोड़ दोगे अंतरंग की दौड़ में निमग्न हो जाओगे, अपने जीवन का एक समय भी व्यर्थ में नहीं गँवाओगे। इसी भावना के साथ-

''शांतिनाथ भगवान् की जय।''

प्रवचन
5

सिर्फ सफेद बाल और चेहरे पर झुर्रियों का होना किसी व्यक्ति का मूल्य घटाता नहीं अपितु परिपक्व ज्ञान और अनुभव के कारण मूल्य बढ़ाता है।

झुर्रियों की यथार्थता

आज देखना है कि क्या छिपा है झुर्रियों में। सूर्य छिपा है मेघों में, एक पंक्ति आती है-''मेघों में इस छिपे सूर्य को बेनकाब अब करना है।'' यदि सूर्य बेनकाब नहीं हुआ तो सूर्य का लाभ नहीं लिया जा सकता, यदि चन्द्रमा बेनकाब नहीं हुआ तो चन्द्रमा की चाँदनी का लाभ नहीं लिया जा सकता। पर्दा न हटाया जाये तो पर्दे के पीछे क्या है यह देखने में नहीं आ पायेगा। यदि आपकी आँखों की रेटिना पर पर्दा पड़ा है, पलक झपक जाये तो आपको दिखाई न पड़ेगा बाहर क्या है। पहले पर्दे को हटाना पड़ेगा। जैसे बादलों में सूर्य चन्द्र छिपे हैं, पुष्पों में गंध छिपी है, दूध में घी छिप कर बैठ गया है, चकमक पत्थर में अग्नि है और जैसे आत्मा में परमात्मा छिपा है, उसी प्रकार झुर्रियों में भी कुछ छिपा तो है। संयमी साधक आपको सामान्य मनुष्य की तरह से दिखाई देता है किंतु संयमी साधक में तीन लोक का नाथ छिपा बैठा है। अक्षरों में आपको सामान्य अक्षर दिखाई देते हैं किन्तु अक्षरों में बीजाक्षर छिपे बैठे हैं, शक्तियाँ छिपी बैठी हैं और लकड़ियाँ जो आपको सामान्य दिखाई देती हैं उन जड़ी बूटियों में परम औषधि छिपी बैठी है।

महानुभाव ! झुर्री को खोजने का प्रयास करो, मिट्टी में दबे भगवान् को खोजने के लिये आप मिट्टी को शनैः-शनैः खोदते हो, यदि पाषाण का आपको आभास हो जाता है तो पुनः गति और धीमी हो जाती है, फिर मिट्टी हाथ से निकालते हैं, फावड़ा व कुदाली नहीं चलाते, कहीं प्रतिमा खण्डित न हो जाये, ऐसे ही झुर्रियाँ जहाँ भी दिखाई देती हैं उन झुर्रियों में निहित जो रहस्य है उन रहस्यों व सूत्रों को खोजना है। जिसके हाथ में रहस्य है विश्व उसकी मुट्ठी में है।

जिसके हाथ में सूत्र है पूरा द्वादशांग उसके हाथ में है और कोई भी विद्या कला ज्ञात करने के लिये जिसके पास मूलभूत अवस्था है वह उत्तर अवस्था तुरंत प्राप्त कर लेगा। मूलग्रंथ का ज्ञान है तो टीकायें बहुत सारी लिखी जा सकती हैं। जो मूल को ही भूल गया उसको कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। बीज के बिना वृक्ष की संप्राप्ति नहीं होती। मूल के बिना वृक्ष का कोई अस्तित्व नहीं होता ऐसे ही झुर्रियों के पीछे क्या छिपा है इसे जाने बिना उन झुर्रियों का कोई महत्व नहीं है।

झुर्री अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। यदि तुम्हारी जमीन पर किसी ने कब्जा कर लिया, कागज तुम्हारे नाम से हैं, और उसने केस दायर कर दिया कि ये जगह मेरी है अब तुम्हें मजबूरन केस लड़ना पड़ेगा। तो अब तुम किसके पास जाओगे? वकील के पास। कौन से वकील के पास? जो आज ही एल.एल.बी. करके आया है उसके पास? नहीं। आप सोचोगे कि जो वृद्ध वकील है, अनुभवी वकील है जिसने हजारों केस लड़े हो आप उसके पास जाओगे। नये वकील ने पुस्तक तो पढ़ी है पर उसके पास अनुभव नहीं है। यदि आप अस्वस्थ हो जाते हो तो किसके पास जाते हो? जो आज ही एम.बी.बी.एस. करके आया या एम.डी. बनकर आया हो? नहीं आप कहोगे यह नया डॉक्टर नहीं हमें तो अनुभवी डॉक्टर चाहिये।

एक बार ऐसा ही हुआ एक सज्जन एक नये डॉक्टर के पास गये, डॉक्टर ने भी चेकअप किया और कहा-कल आपका ऑपरेशन होगा। डॉक्टर ने उस सज्जन व्यक्ति से एक फूलमाला मँगवायी। वे सज्जन जब ऑपरेशन कराने पहुँचे तो बहुत घबरा रहे थे उस पुष्पमाला को देखकर के। डॉक्टर से पूछा-क्या बात है डॉक्टर साहब, आपने यह माला क्यों मँगवायी है। डॉ. ने कहा-दरअसल में बात ये है कि मैं जीवन में पहला ऑपरेशन कर रहा हूँ यदि ऑपरेशन सफल हो गया तो ये माला मेरे गले में डाली जायेगी और सफल नहीं हुआ

तो तुम्हारी तस्वीर पर चढ़ा दी जायेगी। वो बोला-भईया ! छोड़ मुझे हो गया मेरा ऑपरेशन मैं तो ऐसे ही ठीक हूँ।

कहने का आशय है वैद्य, न्यायाधीश, राजा, मित्र, पुरोहित ये जितने पुराने होते हैं उतने ही विश्वास के योग्य हो जाते हैं क्योंकि इनके पास अनुभव होता है। जो चीज अनुभव से प्राप्त होती है वह पुस्तकों से नहीं होती, जो चीज उम्र पकने पर मिलती है वह चीज पहले नहीं मिल सकती। आम का पेड़ तो वही है किन्तु जो आम का फल वृक्ष पर पक गया, जिसने धूप को सहन किया है आँधी तूफान को सहन किया है उसका रस बहुत मीठा होगा और यदि आपने कच्चे आम को जिसमें अभी जाली भी नहीं पड़ी गुठली भी नहीं आयी अच्छी तरह से, उसको तोड़कर के जल्दी पकाने का प्रयास किया तो वह पकेगा नहीं सड़ जायेगा।

कुछ अवस्थायें ऐसी होती हैं जो उम्र के साथ ही, समय के ही साथ आती हैं जल्दबाजी करोगे तो प्राप्त नहीं होगी। बालक का जन्म होना है तो गर्भ में आने के 9 महीने बाद ही होना है जल्दबाजी करने से जल्दी प्राप्त न होगा। वृद्ध पुरुष के पास जो अनुभव होता है वह अनुभव समय से प्राप्त होता है। युवा के पास वह चीज नहीं है जो एक वृद्ध के पास होती है।

आचार्यों ने लिखा है-ज्ञान की प्राप्ति जीवन में चार प्रकार से होती है, चार पाद हैं। एक पाद की प्राप्ति होती है गुरु के माध्यम से, दूसरे पाद की प्राप्ति होती है स्वयं के क्षयोपशम के माध्यम से, तृतीय पाद की प्राप्ति होती है ज्ञानी पुरुषों की संगति करने से और चतुर्थ पाद की प्राप्ति होती है उम्र ढलने पर स्वयं के अनुभव के माध्यम से। जो ज्ञान अनुभव के माध्यम से प्राप्त होने वाला है वह पुस्तकों से नहीं मिलेगा, वह क्षयोपशम से नहीं मिलेगा, अन्य ज्ञानी पुरुषों की संगति

से नहीं मिलेगा जब तक स्वयं ठोकर खाकर नहीं गिरोगे। जब स्वयं ठोकर खाकर गिरोगे तो सावधानी स्वयं तुम्हारे जीवन में विद्यमान रहेगी। यदि स्वयं ने ठोकर नहीं खायी केवल पढ़ लिया कि ठोकर खाकर गिरने से हाथ-पाँव टूट जाते हैं तो पुनः वैसा ज्ञान व अनुभव नहीं होता।

हजारों पुस्तकों को रखने पर भी अनुभव किंचित नहीं आता है और अनुभव जो किसी एक व्यक्ति का होता है वह हजारों पुस्तकों में लिखा जा सकता है। तीर्थंकर सर्वज्ञ केवली ने जो दिव्यध्वनि में कहा-उनका स्वयं का अनुभव, संयम का अनुभव, आत्म आनंद का अनुभव वह हजारों-करोड़ों शास्त्रों में लिखा है वह मिथ्या नहीं है किन्तु अनुभव से रहित करोड़ों शास्त्रों में लिखी बातें भी मिथ्या हो सकती हैं।

महानुभाव ! वृद्ध पुरुष के पास अनुभव से समन्वित बुद्धि व प्रज्ञा होती है अन्यथा युवा व्यक्ति तो जोश में आकर होश को खो बैठता है। इसीलिये आचार्य भगवन् शुभचन्द्र स्वामी जी ने 'ज्ञानार्णव' नाम का ग्रंथ लिखा अपने भाई भर्तृहरि को संबोधन देने के लिये। उस ग्रंथ में ऐसा लगता है वास्तव में ज्ञान का सागर उढेल दिया हो। प्रारंभ से ही बारह भावना, पाँच महाव्रत, वृद्ध सेवा, शील के बारे में लिखा वैराग्य, समिति, ध्यानादि के बारे में बहुत अच्छा विवेचन किया है। उसमें वृद्ध सेवा के बारे में लिखा-

लोकद्वय विशुद्ध्यर्थं भाव शुद्ध्यर्थमंजसा।
विद्याविनय वृद्ध्यर्थं वृद्धसेवैव शस्यते॥

दोनों लोकों को शुद्ध करने के लिए, भावों को शुद्ध करने के लिये, विद्या व विनय की वृद्धि के लिए वृद्धों की सेवा करनी चाहिए।

यदि जीवन में तुम्हें विद्या चाहिए तो उसकी प्राप्ति वृद्ध की सेवा से होगी, विनय गुण की संप्राप्ति वृद्ध पुरुष की सेवा से होगी। यदि जीवन में अपने परिणामों को निर्मल व विशुद्ध करना चाहते हो तो वृद्ध पुरुष की उपासना करने से परिणामों में निर्मलता आती है। ऐसा आचार्य शुभचन्द्र स्वामी कह रहे हैं। इतना ही नहीं दोनों लोकों की वृद्धि अर्थात् वृद्धों की सेवा से इस भव में भी सुख-शांति की प्राप्ति होती है तथा पर लोक में भी नियम से सुख शांति की प्राप्ति होती है। वृद्ध की सेवा करने वाला इस लोक में भी निरोगी शरीर को प्राप्त करता है पर लोक में भी निरोगी शरीर को प्राप्त करता है। वृद्ध की सेवा करने वाला व्यक्ति अगले भव में कामदेव जैसे सुंदर शरीर को प्राप्त करता है और वज्रवृषभ नाराच संहनन को प्राप्त करता है। वृद्ध की सेवा करने वाले व्यक्ति को जीवन में औषधि सेवन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आज व्यक्ति प्राय:कर आये-दिन अस्वस्थ रहता है, कभी अटेक पड़ जाता है, किसी को पैरालाइसिस हो जाता है, किसी का लीवर फेल हो जाता है, जो व्यक्ति सेवा नहीं कर रहा है उसका शरीर कहीं न कहीं अस्वस्थ रहेगा ही क्योंकि उसके जीवन में जो कोई भी उपलब्धि होगी उस उपलब्धि के साथ उसे अहंकार आयेगा, वह उस उपलब्धि को पचा नहीं पायेगा। वृद्धों की सेवा करने से जीवन में नम्रता आती है, कृतज्ञता आती है, प्रेम वात्सल्य मैत्री की भावना प्रकट होती है वह ग्लानि को जीत लेता है। वृद्धों की सेवा करने वाला व्यक्ति उपगूहन और स्थितिकरण अंग का भी पालन करता है, वृद्धों की सेवा करने वाला व्यक्ति जिन शासन की प्रभावना करता है। वही सुख और शांति का अनुभव करता है। इसीलिये शुभचन्द्र स्वामी ने कहा-

कषाय दहनः शान्तिं, याति रागादिभिः समं।
चेतःप्रसत्ति, माधत्ते, वृद्धसेवावलम्बिनाम्॥

जो कषाय रूपी अग्नि है वह वृद्धों की सेवा करने से स्वयं शांत हो जाती है। चित्त में शांति आती है चित्त समाधान को प्राप्त होता है। वृद्धों की सेवा का आलंबन जिसने लिया है ऐसा व्यक्ति अपनी कषायों को शांत कर सकता है। वृद्ध सेवा वह शीतल जल है जिसके माध्यम से कषाय रूपी अग्नि शांत की जाती है। वृद्ध सेवा से समत्व भाव की प्राप्ति होती है। जिस समत्व के भाव से राग और द्वेष शान्त होते हैं। वृद्ध सेवा करने वाला व्यक्ति बेलगाम आकांक्षाओं पर नियंत्रण कर सकता है, अपने शीलव्रत का पालन कर सकता है, वासनाओं पर नियंत्रण कर सकता है। वह विनम्र होता है उसमें औधत्तपना व उद्दण्डता नहीं आती, वह वृद्ध सेवी व्यक्ति भद्र परिणामी होता है, कल्याण का पात्र होता है, सबको प्रिय होता है, उसका यश दशों दिशाओं में फैल जाता है।

आचार्यों ने वृद्ध भी कई प्रकार के बताये हैं-

तपः श्रुत-धृति-ध्यान-विवेक-यम-संयमैः।
ये वृद्धास्तेत्र शस्यन्ते न पुनः पलितांकुरैः॥

वही वृद्ध पुरुष प्रशंसनीय होते हैं जो तप से वृद्ध हैं, ज्ञान से वृद्ध हैं, व्रतों में वृद्ध हैं, धैर्य ध्यान में वृद्ध हैं, संयम साधना में वृद्ध हैं वास्तव में वही वृद्ध हैं। केवल सफेद बाल हो जाने को वृद्ध नहीं कहते, सफेद बाल तो कई बार छोटे बच्चे के भी होते हैं, तो वह वृद्ध हो गया क्या। कई बार ऐसा होता है हमने वृद्ध पुरुषों को भी देखा है कि 80 साल के हो गये तब भी काले बाल। और ऐसे भी व्यक्ति हैं जिनके 20-25 साल में ही बाल सफेद होने लगते हैं। इसीलिए केवल जिसके बाल सफेद हो गये वह वृद्ध नहीं है। यदि एक युवा होकर भी

ज्ञान ध्यान से वृद्ध है तो वृद्ध है और वृद्ध होकर भी जिसकी इन्द्रियाँ उत्तेजित होती हैं तो वह अभी वृद्ध नहीं है।

महानुभाव ! ऐसे वृद्धों की सेवा करने से नि:संदेह जीवन में सुख और शांति की वृद्धि होती है। श्री की वृद्धि होती है, ह्री की वृद्धि होती है, कीर्ति की वृद्धि होती है, बुद्धि की वृद्धि होती है, समाधि व सुख की वृद्धि होती है। जिसने वृद्धों की सेवा की है उसे वैद्य हकीम के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। वृद्धों की सेवा करने वाला व्यक्ति गम खाता है और हर किसी के सामने नम जाता है इसीलिये वह कभी दु:खी नहीं होता। जो वृद्ध की सेवा नहीं करता औधत्तपने से युक्त हो अकड़ कर चलता है वह ठोकर खाकर गिर जाता है, वह अपने शरीर को तोड़ लेता है। चोट गहरी लगे तो दाँत के साथ-साथ आँत भी बाहर निकल आती है। किंतु वृद्ध की सेवा करने वाले के तो जीवन में विद्यमान ढके हुये गुण निकल कर बाहर आते हैं।

वृद्ध वह है जिसकी एक-एक झुर्री में सैकड़ों-हजारों शास्त्रों का अनुभव छिपा पड़ा है। वृद्ध पुरुष के चेहरे पर पड़ी झुर्रियाँ कोई बनायी हुयी नहीं हैं, चेहरे पर कपड़े की तरह सलवटें नहीं डाली, सलवटें पड़ी हैं तो उनके अनुभव से पड़ी हैं। मुख थैली जैसा हो गया, आँखें धंस गयी चेहरे पर झुर्रियाँ आ गयीं। आज व्यक्ति अपने चेहरे की झुर्रियों को मिटाना चाहता है कि मैं वृद्ध न दिखायी दूँ किंतु वास्तव में वृद्ध पुरुष सम्मान के योग्य होता है। आचार्यों ने लिखा है-

''जिस सभा में वृद्ध पुरुष नहीं हों वह सभा आर्य पुरुषों की सभा नहीं होती।'' और जो सभा में बैठने के योग्य होता है वही सभ्य कहलाता है जो धर्मात्मा की सभा में बैठने योग्य नहीं है वह सभ्य नहीं है।

सभानां उपविशतं सा सभ्यः।

जो शिष्ट पुरुषों की सभा में बैठने के योग्य है वह सभ्य पुरुष है और जो सभ्य पुरुषों की संस्कृति है, प्रवृत्ति है वह सभ्यता कहलाती है। संस्कारवान् व्यक्तियों की कृति संस्कृति कहलाती है, और शिष्ट व सभ्य पुरुषों की कृति सभ्यता कहलाती है। वृद्ध पुरुष सभा में बैठने के योग्य होते हैं। जिन प्रवक्ताओं की सभाओं में वृद्ध पुरुष नहीं होते उस सभा में कभी-कभी मर्यादा का उल्लंघन भी हो जाता है, सभा की मर्यादा भंग हो जाती है। यदि वृद्ध पुरुष होंगे तो सभा की मर्यादा भंग न होगी।

कोई बात यदि सभा में विपरीत होती है तो वृद्ध पुरुष टोक देंगे ऐसा नहीं ऐसा होना चाहिए, यह रीति और नीति नहीं है, यह सही मार्ग नहीं है, यह हमारी सभ्यता, संस्कृति और शिष्टाचार के खिलाफ है, ऐसा नहीं होना चाहिए।

पहले राजा-महाराजाओं की सभा में वृद्ध मंत्री रखे जाते थे, सभासद वयोवृद्ध रखे जाते थे, युवा तो केवल सेनापति आदि के रूप में, सैनिक, कोतवाल आदि के रूप में ज्यादा होते थे किंतु सभा की शोभा प्रायःकर के वृद्ध पुरुषों से होती थी। वृद्धजन नगर के महाजन, श्रेष्ठीजन, वृद्ध मंत्री, वृद्ध पुरोहित, वृद्ध दण्डनायक आदि 5-7 व्यक्ति तो सभा में वृद्ध होते ही थे तब राजा अपनी बात कहता था और यदि कोई बात युवा राजा गलत कह देता था तो वृद्ध मंत्रीजन आदि कह देते थे कि राजन् यह बात उचित प्रतीत नहीं होती, यदि इस बात को दूसरी प्रकार से तय किया जाये तो कैसा रहे। वे इस प्रकार समझाते थे कि राजा का अपमान भी नहीं होता था प्रतिष्ठा मान सम्मान भी ज्यों का त्यों रहता था और वह अपनी भूल को समझ भी जाता था कि हाँ मैं वास्तव में गलत था ये सभी ठीक कहते हैं।

वृद्धों के लिये मैं कहता हूँ कि ''वृद्ध घर का देवता है।'' वृद्ध पुरुष उस वृक्ष की तरह से है जिस वृक्ष ने उत्पन्न होते हुये अंकुर के रूप में खुशहाली दी, प्रसन्नता दी, सौन्दर्य दिया, बढ़ते हुए पौधा बना तो पुष्प दिये, पत्ते दिये व कोंपल दी और वृद्धिंगत होते हुये उस वृक्ष ने फल दिये छाया दी, शीतल मंद सुगंध बयार दी। उस वृक्ष की महिमा कौन गा सकता है वृक्ष आदि फल देना बंद कर दें, तब भी चिंता करने की कोई बात नहीं है वृक्ष कितना भी बूढ़ा हो जाये, फल फूल नहीं आते तो भी उसे काटना नहीं, जहाँ वृक्ष है वहाँ जमीन ठोस है, भूकम्प नहीं आयेगा तुम जमीन में न धंसोगे। यदि वृक्ष के पत्ते पीले पड़ गये हैं तो भी चिन्ता की बात नहीं वह बूढ़ा वृक्ष भी तुम्हें प्राण वायु देता है ऑक्सीजन देता है इतनी ऑक्सीजन देता है कि यदि एक वृक्ष के नीचे 50 व्यक्ति भी बैठ जायें तो उनकी ऑक्सीजन की पूर्ति करने वाला होता है। वह द्वार पर खड़ा वृक्ष काटने के लिये नहीं है। जब वह स्वयं सूख जाये तब भी अपनी लकड़ी से महीने भर के लिये तुम्हारे लिये भोजन बनाने में समर्थ होता है। ऐसे ही वृद्ध पुरुष उस वृक्ष की तरह से देवता है, वैदिक परम्परा में इसलिये ही वृक्ष की पूजा की जाती है। नदी उपकार करती है इसलिये पूजा की जाती है।

वृक्ष कबहु नहिं फल भखें, नदी न संचे नीर।
परमारथ के कारणे साधु धरा शरीर॥

घर का वृद्ध पुरुष घर का देवता है साधु है। वह अपना जीवन अपने परिवार के लिये गँवा देता है, अपने स्वयं के लिये कुछ नहीं करता। पूरे जीवन में एक धोती का जोड़ा भी अपने लिये नहीं जोड़ा जो कुछ किया परिवार के लिये किया, स्वयं के लिये कुछ भी नहीं सोचा। वह वृद्ध घर का संरक्षक है। वही समीचीन रक्षक है एक-एक सदस्य की रक्षा करने वाला है। एक-एक व्यक्ति की भावनाओं की रक्षा करने वाला है। उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करने वाला है। जब तक

वह संरक्षक है तब तक कोई तुम्हारा बालबांका करने वाला नहीं और यदि संरक्षक चला गया, जिस तम्बू की पाल उड़ जाये तो बस कनात खड़ी रह जाती है कुछ नहीं रहता, वह वृद्ध पुरुष संरक्षक है। वह छत की तरह से है यदि छत गिर जाये तो दीवारों का कोई महत्व नहीं, यदि छत है तो वह सर्दी गर्मी बरसात से आपकी रक्षा करेगी और छत नहीं है पिलर कितने भी मजबूत हों, दीवार कितनी ही मजबूत हों उन दीवारों से कुछ भी काम होने वाला नहीं है। छत की तरह से होता है वह वृद्ध। वृद्ध को दूसरे रूप में कहें तो वह वृद्ध होता है नींव की तरह से, जिस नींव के ऊपर पिलर और दीवार खड़े किये जाते हैं।

महानुभाव ! उस घर के देवता का अनादर जीवन में कभी मत करना, जिसने घर के देवता की पूजा नहीं की मंदिर का देवता कभी उसकी मनोकामना पूरी नहीं करता है। जो घर के देवता का अभिशाप लेकर जीता है भले ही मंदिर के देवता की पूजा दिन में तीन बार भी करते रहो घर के देवता का शाप कैसे छूटेगा। घर में रहने वाले शत्रु से बचना मुश्किल है। बाहर का शत्रु आयेगा तो घर का मित्र तुम्हारी रक्षा कर लेगा इसलिये घर के व्यक्ति को कभी शत्रु मत बनाओ मित्र बनाकर रखो। यदि बाहर का देवता रूठ भी जाये तो चिंता मत करना घर का देवता तुम्हारे ऊपर प्राणपन से समर्पित रहे तो तुम्हारा बालबांका नहीं होने देगा।

यहाँ तक कि केवल माता-पिता ही नहीं, घर के द्वार पर बंधा वह बैल, भैंस, गाय कोई भी जानवर जो तुम्हारे यहाँ बचपन से पाला गया हो, वृद्ध हो गया हो उसकी भावनायें इतनी तीव्र हो जाती हैं कि उसकी भावना के माध्यम से भी तुम्हारे अनिष्ट टल जायेंगे। जिसने वृद्ध पुरुष की आत्मा को दु:खाया है, ऐसे वृद्ध पुरुष की जिसने तुम्हारे लिये अपना जीवन गँवाया है यदि उस वृद्ध पुरुष की आत्मा दु:खी हो गयी तो उस पाप को कहाँ धोने जाओगे। कहाँ से लाओगे

पानी? क्योंकि आचार्यों ने, नीतिकारों ने लिखा है कि उपकार करने वाले का उपकार करो, कृतज्ञता ज्ञापित करो, जो उपकारी के उपकार को भूल जाता है वह कृतघ्न होता है और कृतघ्न व्यक्ति महापापी होता है। महापापी कितनी भी पूजा पाठ करे उस पाप को कैसे धोयेगा।

न भारा पर्वता भारा, न भारा सप्त सागरा।
निंदका हि महाभारा, तथा विश्वास घातका।।

नीतिकारों ने शास्त्रों में लिखा है-कि पृथ्वी कहती है मुझे अपने ऊपर पर्वतों का भार, भार नहीं लगता और मेरे ऊपर जितने भी सागर हैं उनका भी मुझे कोई बोझ नहीं लगता किन्तु मैं तो उनके बोझ से दबी जा रही हूँ, मेरे प्राण निकले जा रहे हैं, जो दूसरों की निंदा करते हैं, किसी भी धर्मी की, साधर्मी की निंदा करते हैं वह महापापी हैं। अपनी आत्मा की निंदा करने वाला पुण्यात्मा हो सकता है पर की निंदा करने वाला पापी होता है, और पृथ्वी कहती है तथा विश्वास घातका' जो विश्वास घात करे, जिन माता-पिता ने अपने बच्चों को बड़ी निष्ठा के साथ प्यार से पाल पोस कर बड़ा किया, अब वही बेटे-पुत्र वधू अपने ही माता पिता को घर से बाहर कर दें, ऐसा उन्होंने सोचा नहीं था। उनके साथ बहुत बड़ा विश्वास घात हो गया। बच्चों ने जो माँगा वह माँग माता-पिता ने अपनी इच्छाओं को मारकर पूरा की। उनकी कोई भी इच्छा अधूरी नहीं छोड़ी किंतु उन्होंने ही आज घर से बाहर निकाल दिया। क्या बीतती है उन माता-पिता पर जिन्होंने अपने बच्चों के लिये सब कुछ दे दिया अब इस वृद्धावस्था में कुछ भी नहीं बचा अब वे क्या करें? उनकी आप कल्पना करके तो सोचो जिसने अपने सब अरमानों को छोड़कर पुत्र के सभी अरमानों के लिये सब कुछ सौंप दिया उस कृतघ्नी पुत्र ने एक बार भी अपने माँ-बाप के बारे में नहीं सोचा।

महानुभाव ! ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण सुनने में आते हैं कि किस प्रकार वृद्धों की कैसी-कैसी अवस्था होती है और आज के दौर में चल रहा है कि वृद्ध पुरुषों को वृद्धाश्रम भेज दो। यह दौर भारतीय संस्कृति के कलंक का दौर है जिस दौर में वृद्ध आश्रम की स्थापना होने लगे। हम तो इस पक्ष में हैं कि वृद्ध आश्रम खुलने ही नहीं चाहिये। जहाँ पर वृद्ध आश्रम खुलते हैं मैं समझता हूँ उस समाज का अंत आ गया, वह समाज पतन के उन्मुख हो गयी, वह परिवार नष्ट होने की कगार पर बैठा हुआ है।

जो वृद्ध माता-पिता स्वयं गृहत्यागी होकर दीक्षा लेते हैं तो कोई बात नहीं किंतु जब पुत्र माता-पिता को घर के बाहर कर देता है तो यही समझना चाहिये कि बस अब उसके बुरे दिन आने वाले हैं उसका समय अब खराब हो गया, उसके पाप का उदय आ रहा है जिससे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। जो चार रोटी अपने माता-पिता को न खिला सके क्या भरोसा करें उसका कि वह अन्य किसी को खिलायेगा पिलायेगा, उसे तो चुल्लूभर पानी में डूब कर मर जाना चाहिये। जो अपने जन्मदाता, भरण पालन पोषणकर्ता अपने माता पिता का न हुआ वह किसी का क्या होगा वह किसी का क्या मान सम्मान करेगा।

बात आपको थोड़ी कड़वी लग रही होगी, किंतु बात वास्तव में बड़ी सत्य है। वह माता-पिता जो घर के देवता हैं उन्होंने जिस भावना से इस बगीचे को लगाया है, अपने खून-पसीने से सींचा है, जिस फुलवारी को देखकर वे चहके, भविष्य के सपने देख-देखकर के जिन्हें अपार आनंद आया था और आज वे इस अवस्था में हैं कि उनके पास अश्रु बहाने के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं।

एक व्यक्ति जिसकी सर्विस पूरी हो गयी थी, रिटायरमेन्ट होकर घर में आया। उसका बेटा शहर में रहता था, वह व्यक्ति अपने गाँव

के मकान को बेचकर सपत्नी बेटे-बहू के पास रहने लगा। किंतु समय ज्यादा बीत भी न पाया बहू ने कहा-हम इनकी सेवा ज्यादा नहीं कर सकते, इन्हें कहीं आश्रम में छोड़ आइये, माँ ने जब ये बात सुनी तो सुनकर मूर्च्छा खाकर मृत्यु को प्राप्त हो गयी, 2-3 माह बाद पिता भी अस्वस्थ हो गये, बस इस अस्वस्थता में उनकी सेवा कैसे करें? बहू ने पुनः कहा-इन्हें छोड़ आओ हमारे बस की नहीं है, बेटा छोड़ने के लिये चला गया, आश्रम ले गया, पिता अस्वस्थ तो था ही आश्रम वालों ने उसे अस्पताल में एडमिट करा दिया। संयोग की बात एक दिन वृद्ध जहाँ नौकरी करता था, वहाँ से एक कर्मचारी आया और उस पहले गाँव में पहुँचा जहाँ से वह वृद्ध मकान बेचकर शहर आ गया था। वहाँ पता चला अब वह शहर में रहते हैं। वह कर्मचारी पता लगाकर उसके बेटे के यहाँ पहुँचा, पूछा क्या यहाँ इस नाम का कोई व्यक्ति रहता है ? बेटे ने कहा-हाँ रहते थे, तो क्या वे मृत्यु को प्राप्त हो गये? नहीं मृत्यु को प्राप्त नहीं हुये, आप बताइये क्या बात है? वह बोला उनके हस्ताक्षर चाहिये, बेटा समझा कि कोई न कोई कारण होगा, पिताजी बैंक में काम करते थे, हो सकता है कोई फण्ड वगैरह हो। पिताजी को देखने आश्रम पहुँचा, पिताजी वहाँ नहीं मिले, पूछा कहाँ हैं, तो पता चला अस्पताल में भर्ती हैं। वह कर्मचारी व बेटा दोनों अस्पताल पहुँचे, कर्मचारी कहने लगा-साहब ! आपके नाम एक चैक आया है, आप हस्ताक्षर कर दें, आपने जब से नौकरी की थी तब से आपकी सैलरी में से फण्ड आपकी वृद्ध अवस्था के लिये जोड़ दिया गया था, वह राशि भाव लगभग 5 लाख रु. है। वह फण्ड सेवा निवृत्ति के पाँच वर्ष बाद मिलता है और आज आपके 5 वर्ष पूर्ण हो गये इसीलिये आज मैं वह चैक आपको देने आया हूँ। बेटा तुरंत कह उठता है-पिताजी घर चलो मैं आपकी सेवा करूँगा, अब उसकी पत्नी भी आ जाती है दोनों पुत्र व पुत्रवधू खींचतान करते हैं, आश्रम के

लोग भी आ जाते हैं कि ये 5 लाख का चैक हमें मिल जाये। वह वृद्ध सोच रहा है-देखो सारा झगड़ा यहाँ पैसे का है, वह कहता है-हस्ताक्षर मैं करता हूँ और इस चैक का पैसा मुझे नहीं चाहिए, मैं चाहता हूँ जिस आश्रम ने मुझे आश्रय दिया है उसी आश्रम में दे दिया जाये।

महानुभाव ! कहने का आशय यह है कि ये घटना केवल कल्पित नहीं सत्य भी हो सकती है, ऐसी कई घटनायें हैं। एक घटना है इन्दौर की-एक वृद्ध पति-पत्नी। जिन्हें उनका बेटा और बहू वृद्धाश्रम में छोड़ने गये। वृद्ध आश्रम का जो कुलपति था वह अपनी सफेद दाढ़ी हिलाता हुआ आया और उन दम्पत्ति को देखकर थोड़ा मुस्कुराया। यह देख जो साथ में बेटा बैठा था उसने उस कुलपति से पूछा क्या आप इन्हें जानते हैं जो आप इन्हें देखकर मुस्कुराये, वह कुलपति बोला-हाँ जानता तो हूँ, बेटा पुनः बोला-किन्तु ये तो यहाँ पहली बार आये हैं मुझे ज्ञात है ये यहाँ कभी नहीं आये, फिर तुमने इन्हें कैसे पहचान लिया। वह कुलपति बोला-ये यहीं आये थे, यहीं मिले थे, यहीं इनको देखा था, आज से लगभग तीस साल पहले ये और इनकी पत्नी मेरे पास आये थे, और मेरे यहाँ से एक अनाथ बालक को गोद लेकर गये थे वह 2-4 माह का बालक था। बेटा यह सुनते ही दंग रह जाता है-कहता है-पिताजी क्या वास्तव में मैं आपका बालक नहीं, मैं अनाथ बालक था और आपने आज तक जीवन में मुझे ये अहसास नहीं होने दिया कि आप मेरे पिता जी नहीं हैं। आपने पूरी सम्पत्ति मेरे नाम कर दी और फूट-फूट कर रोने लगता है। धिक्कार है मेरे लिये जिस पुरुष ने मुझ अनाथ को सनाथ बनाया मैं आज उसे अनाथ बनाने के लिये आश्रम में छोड़ने के लिये आया।

महानुभाव ! वास्तव में बात तो दर्दनाक है कि जिस अनाथ बालक को सनाथ बनाया आज वही बालक अपने माता-पिता को अनाथ बनाने जा रहा है। इस देश में पहले कभी वृद्धों की यह दुर्दशा

तो नहीं थी। वृद्धों की सेवा तो सदैव ही हुयी है। आज वह सेवा भाव लुप्त होता जा रहा है।

किंतु आज भी यही कहा जाता है यदि स्वस्थ व सुखी रहना चाहते हो तो वृद्धों की सेवा करो, यहाँ तक कि मुनिराज को आहार करने के लिये छः प्रतिज्ञा दी जाती हैं। इन छः कार्यों को करो तो आहार करो यदि ये छः कार्य नहीं करो तो आहार करने के अधिकारी नहीं हैं। अहिंसाव्रत का पालन, संयम की साधना, दस धर्म का पालन, वैय्यावृत्ति, क्षुधादि रोग की निवृत्ति, जीवदया इत्यादिक कारणों के लिये आहार किया जाता है इन छः कारणों में से वह जीवदया का पालन भी करता है, संयम की साधना भी करता है किन्तु वैय्यावृत्ति नहीं करता है और आहार करने जा रहा है तब भी प्रायश्चित का अधिकारी है। तो साधुओं के लिये भी नियम दे दिया कि यदि तुम वृद्धों की सेवा नहीं कर सकते हो, साधुओं की सेवा नहीं कर सकते हो, तो आहार लेना तुम्हारा दोषप्रद है। ऐसे ही गृहस्थों के लिये कह दिया यदि भोजन करना है तो भोजन करने का एक कारण सेवा भी है। वृद्ध पुरुषों की सेवा करना भी जरूरी है।

बस आपसे यही कहना चाहता हूँ-कि झुर्रियों की भी यथार्थता है, झुर्रियों के पीछे यदि देखना है तो वह विद्या प्राप्त होगी सेवा करने से। सेवा से मेवा की प्राप्ति होती है यह बात सब जानते हैं। एक कथानक आता है एक हरिण था, जब उसका मालिक वीणा बजाता था, वह लालमोती उगलता था, एक बार उसकी पत्नी ने उसका पेट चीर दिया तो कुछ नहीं निकला। क्योंकि वह हरिण संगीत से इतना आनंदित होता था कि तुरंत ही मोती पैदा होता था और वह उसे उगल कर चला जाता। तो ऐसे ही वृद्धों की सेवा करने से स्वतः ही मेवा मिलती है, पुण्य मिलता है। वह स्थान जहाँ वृद्ध की सेवा की जाती है वह तीर्थस्थान की तरह पावन हो जाता है।

यदि अपने जीवन में रिद्धि-सिद्धि समृद्धि चाहिये, बुद्धि की प्रगाढ़ता चाहिये, प्रकृष्टता चाहिये तो बस वृद्ध पुरुषों के चरणों में लग जाइये। वृद्ध पुरुष के चरण तुम्हें आचरण तक पहुँचा देंगे, मुक्तिवरण कराने में समर्थ बना देंगे। वृद्ध पुरुष के चरणों के माध्यम से सम्भव है समाधिमरण हो जायेगा। यदि उसके चेहरे पर पड़ी झुर्रियों का रहस्य जानना है तो वृद्धों के चरणों की सेवा करें वह तुम्हारे आचरण को शुद्ध करेगी। इसीलिये नित्य उनकी सेवा करनी चाहिये, तभी धर्म के पूर्ण फल की प्राप्ति होगी। आप धर्म के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करें ऐसी भावना आप सभी के प्रति भाता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।''

प्रवचन 6
मन का अर्थ

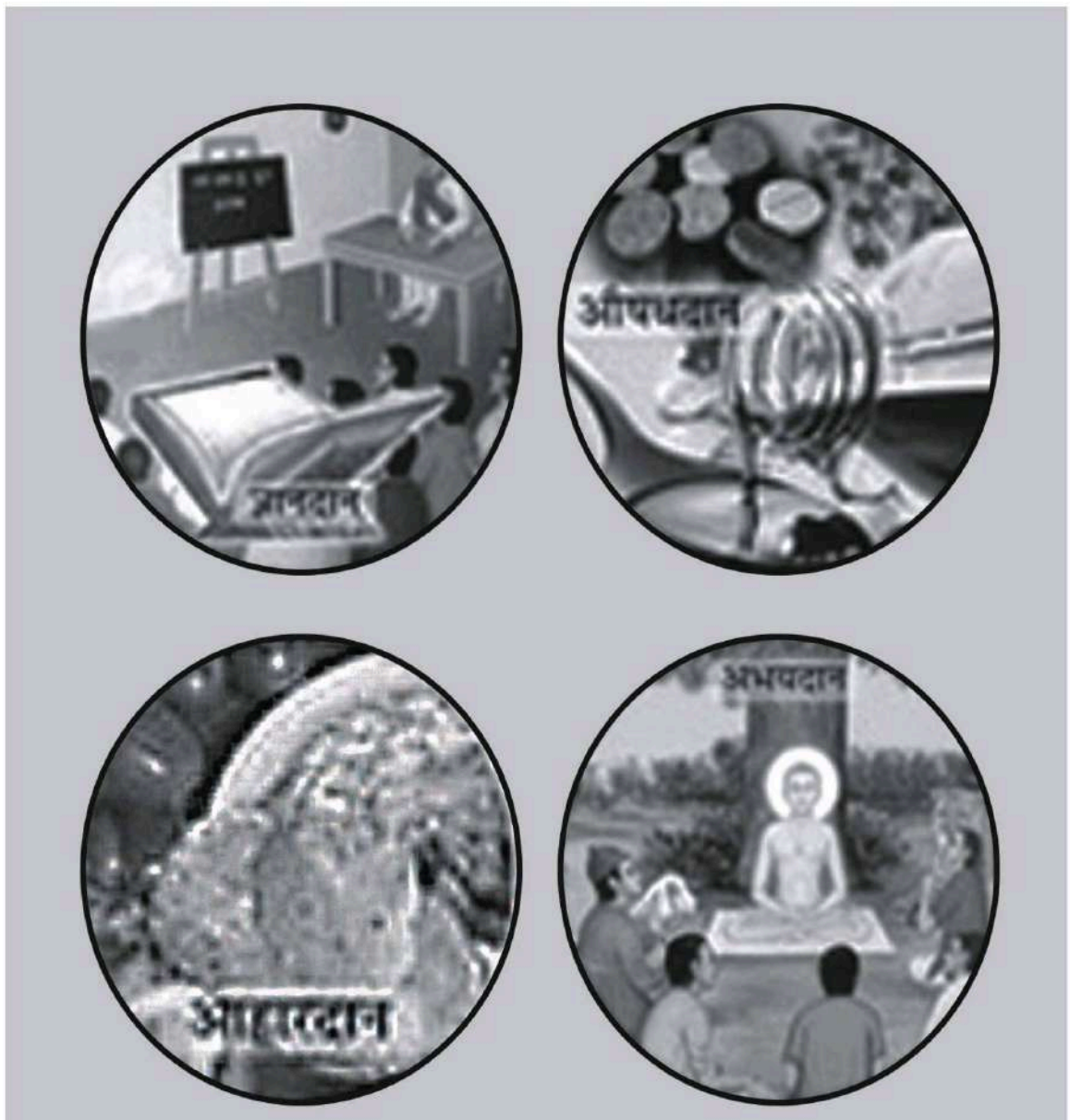

लक्ष्मी के सुत चार हैं, धर्म अग्नि नृप चोर।
जहाँ जेठे की कदर नहीं,
तीनों लेत बटोर।।

मत कर अर्थ को व्यर्थ

अपने आप को भूलकर इस संसार में दु:ख ही दु:ख है। जिसने अपने आप को जान लिया, पहचान लिया व प्राप्त कर लिया, सुख का सागर वहीं पर स्वयं सरक करके आ गया। अपने आप को भूलकर तीनलोक में विद्यमान समस्त चेतन-अचेतन पदार्थों को प्राप्त कर लेने के बाद भी व्यक्ति आत्म संतोष, आत्मशांति व आत्म वैभव को प्राप्त करने में असमर्थ होता है। हमारे जीवन में न जाने कितनी बार ऐसे अवसर प्राप्त होते हैं जिन अवसरों को प्राप्त करके हम अपनी आत्मा को पहचानने का, परमात्मा के समान जानने का अवसर प्राप्त करते हैं किंतु फिर भी न जाने हम कैसे चूक जाते हैं।

अर्थ भी हमारे सामने व्यर्थ हो जाता है शास्त्रों का। हमने शास्त्रों का अध्ययन किया, शब्दों का अर्थ निकाला, शब्दार्थ निकाला, अन्वयार्थ निकाला, भावार्थ निकाला, विशेषार्थ निकाला किंतु ये सब निकालने के बावजूद भी हम परमार्थ नहीं निकाल पाये। अर्थ कितना भी निकाल लें किंतु जब तक परमार्थ की प्राप्ति नहीं हुयी तब तक सभी अर्थ व्यर्थ हैं। अर्थ के दो अर्थ हैं एक अर्थ है धन-सम्पत्ति और दूसरा अर्थ है उत्कृष्ट प्रयोजन जिसे परम अर्थ कहते हैं। परमार्थ की सिद्धि करना है, सर्वार्थ की सिद्धि करना है, अमृतसिद्धि के समान दशा की सिद्धि करना है, उस सिद्धि के लिये अर्थ की बहुत आवश्यकता है। संसार का जीवन सुखद व्यतीत करने के लिये अर्थ चाहिए और वह अर्थ होता है-धन सम्पत्ति। किंतु परमार्थ का जीवन प्राप्त करने के लिये शास्त्रों का अर्थ चाहिये, शब्दों को पकड़कर के परमार्थ की सिद्धि नहीं होती, जब तक शब्दों में डूबेंगे नहीं, शब्दों के अर्थ को खोजेंगे नहीं तब तक परमार्थ नहीं मिलता।

महानुभाव ! डूबने का साहस करो, डरो मत तभी परमार्थ मिलेगा और यदि बाह्य अर्थ में डूब गये तो आपका जीवन भी व्यर्थ

हो जायेगा। प्राय:कर के संसार के अधिकांश प्राणी अर्थोपार्जन में अपना समय व्यतीत कर देते हैं। प्रात: काल से संध्याकाल तक व संध्याकाल से लेकर प्रात:काल तक निरन्तर एक ही मन में विचार चलता रहता है, किस प्रकार मैं धन कमाऊँ, किस प्रकार ज्यादा-से-ज्यादा धन मुझे प्राप्त हो जाये। किन्तु आचार्य महोदय कहते हैं-जिसने एक सीढ़ी को छोड़कर दूसरी सीढ़ी पर पैर रखना चाहा है वह नीचे गिर जायेगा। क्यों? पहली सीढ़ी कौन सी है? पहली सीढ़ी है धर्म की।

धर्म की सीढ़ी पर खड़े होकर तो धन को प्राप्त किया जा सकता है, अर्थ का परम भोग भी किया जा सकता है, धर्म की सीढ़ी को छोड़कर कोई भी अर्थ का सम्यक् भोग नहीं कर सकता है, वह न केवल व्यर्थ होता है, उसके साथ-साथ जीवन भी व्यर्थ हो जाता है। जब अर्थ के माध्यम से एक योगी शास्त्रों के शब्दों को ग्रहण करके शब्दों में से अर्थ को खोजता है, अर्थ तक पहुँच जाता है तो उसे परमार्थ की प्राप्ति हो जाती है। परमार्थ को प्राप्त करने के लिये वह योगी शब्द के अर्थ को खोज लेता है तो श्रावक भी अपने परमार्थ को प्राप्त करने के लिये वह धर्म के साथ अर्थ कमाता है-'धर्मार्थं' उसका धर्म ही प्रयोजन है-**'धर्मार्थं अर्थं संचयेत'।**

धर्म के प्रयोजन के लिये ही अर्थ का संचय किया जाता है। यदि जिसका अर्थ धर्मार्थ नहीं है, तो समझो उसका अर्थ व्यर्थ चला जा रहा है। इसीलिये हे भव्य जीव ! इस अर्थ को व्यर्थ क्यों करता है। जैसे योगी शब्दों का अर्थ जानकर भी तदनुरूप नहीं चले तो उन शब्दों का अर्थ व्यर्थ है। जैसे जब जान लिया कि अग्नि जलाती है फिर भी अग्नि में हाथ डालता जाये, अभक्ष्य या अशुद्ध वस्तु खाने से पाप का आश्रव होता है फिर भी उनका सेवन करता रहे, पाप करने से दु:ख मिलता है फिर भी पाप को न छोड़े, दुर्भावना, अशुभ आयु के बंध का कारण है फिर भी इसका त्याग न करे, तो ये तो ऐसे ही हुआ जैसे कोई कबूतर याद कर ले 'बिल्ली से सावधान-बिल्ली से सावधान' ये

शब्द तो पकड़ लिये किंतु शब्दों का अर्थ नहीं जाना कि बिल्ली से सावधान होने का आशय क्या है। बिल्ली आयी झपट्टा मारा पकड़ लिया और ले गयी, तो उसका वह शब्द रटना बेकार है बिना अर्थ का है।

ऐसे ही तोते ने याद कर लिया शिकारी आता है, जाल फैलाता है, दाने का लोभ दिखाता है, मुझे जाल में नहीं फँसना है, कहता भी जाये और जाल में फँस भी जाये, तो यह शब्द यात्रा व्यर्थ है। ऐसे ही जो श्रावक अपने जीवन में अर्थ कमाता ही कमाता जाता है किंतु उसे वह समीचीन रूप से खाता नहीं है केवल कमाता ही कमाता है, धर्म के क्षेत्र में उसका अर्थ कम लग पाता है जो धर्मार्थ कमाता है, धर्म के लिये कमाता है वह थोड़ा भी कमाता है तो उसके अर्थ का सदुपयोग होता है। उस अर्थ के माध्यम से स्व और पर का कल्याण होता है। उसका अर्थ वास्तव में सर्वार्थसिद्धि का कारण है, उन प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला है, अमृतसिद्धि का कारण है जहाँ मृत्यु नहीं होती ऐसी सिद्धत्व दशा को देने वाला है-आप पढ़ते भी हैं-

'धन बुरा हूँ भला कहिए, लीन पर उपकार सों'

धन बुरा है, किंतु वह धन भला भी हो सकता है, यदि उस धन के माध्यम से स्व और पर का उपकार हो रहा है तो।

''अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं''-अपने धन का ऐसे ही त्याग करना कल्याण का कारण नहीं है स्व और पर के अनुग्रह के लिये त्याग करना, वह कल्याण का कारण है।

धन यदि रखा है तो मिट्टी है। मिट्टी से ज्यादा उस धन की कोई कीमत नहीं होती किंतु वही धन तुम्हारे आर्त्त-रौद्र ध्यान को नष्ट करने में कारण है, वही धन दूसरे के धर्म ध्यान में निमित्त बन रहा है तब वह मिट्टी नहीं सोना है। जो धन पाप में लगा है, पाप से आया

है वह सोना नहीं मिट्टी है और जो पुण्य से आया है, पुण्य के लिये आया है वह मिट्टी भी सोना है। इस सोने व मिट्टी का सही प्रयोजन तो आप ही निकाल सकते हैं, यदि प्रयोजन सही है तो मिट्टी भी सोना है और प्रयोजन यदि गलत है तो सोना भी मिट्टी है।

महानुभाव ! यदि अतीत की ओर दृष्टि डालकर देखें तब भी धन कई लोगों के पास था। आज वर्तमान काल में दृष्टि डालें तो धन आज भी बहुत से लोगों के पास है, आगे भी बहुत से लोगों के पास होगा। धन का होना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना महत्वपूर्ण है धन का सदुपयोग करना। यदि धन का सदुपयोग किया है तो वह वास्तव में अपने कर्म को नष्ट कर सकता है, यदि धन का दुरुपयोग किया है तो धन के माध्यम से दुर्गति का आश्रव कर सकता है। देखना यह है कि धन का कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे सदुपयोग किया जा सकता है। नीतिकार कहते हैं-'धन क्या है'

दान देय तो संग चलेगी, खाओ खर्चो अंग लगेगी।
पड़ी रही तो जंग लगेगी, दुरुपयोग करो तो तंग करेगी॥

सम्पत्ति ऐसी है यदि दान में दिया तो अगले भव में साथ चली जायेगी, यदि स्वयं खाया है तो शरीर में लगेगी और यदि जमीन पर पड़ी रही, मृत्यु हो गयी तो वहाँ पड़े-पड़े उसे जंग लगेगी अथवा वह 'जंग' का कारण बनेगी। उस सम्पत्ति के पीछे आपके पुत्रों में झगड़ा हो सकता है।

दो भाईयों ने विदेश में बहुत कमाई की और पूरा धन देकर एक बहुमूल्य हीरा खरीद लिया। वह हीरा तो आ गया किंतु दोनों भाईयों के मन में एक दूसरे के प्रति विचार खराब हो गये। बड़ा भाई सोचता है यह हीरा हम दोनों का है, यदि मैं छोटे भाई को मार दूँ तो इस पर पूरा कब्जा मेरा हो जायेगा। किन्तु कुछ समय बाद वह बड़ा भाई अपने

ही विचारों से घबरा गया अरे ! मैंने यह क्या सोच लिया, अपने ही छोटे भाई को मारने का भाव कर लिया। वह रात्रि में ही अपने छोटे भाई को जगाकर कहता है-भाई मुझे डर लग रहा है, हीरे की सुरक्षा तुम करो। थोड़ी देर बाद बड़ा भाई सो गया छोटे भाई के मन में विचार आया, अरे ये इतना बेशकीमती हीरा है इसके दो भाग हो जायेंगे आधा मेरा आधा बड़े भाई का। यदि मैं बड़े भाई को मार दूँ तो ये पूरा मेरा हो जायेगा।

बाद में उसे भी पश्चाताप होता है वह तुरंत बड़े भाई को जगाता है कहता है-वास्तव में इस हीरे से बहुत डर लगता है, ये ठीक नहीं है। दोनों ने अपनी बातें एक दूसरे को सुनाई, हीरा हाथ में लेते ही हमारे परिणाम ऐसे हुये। घर जाकर उन्होंने वह हीरा अपनी बहिन को दे दिया-बहिन के मन में हीरा लेते ही भाव आया-कि इस हीरे पर मेरा अधिकार है दोनों भाईयों का नहीं, यदि दोनों भाईयों को मार दिया जाये तो हीरा मुझे मिल जाये। पुनः बहिन घबरा गयी और रोने लग गयी। उसने माँ के हाथ में दिया। माँ ने कहा-इस हीरे से हमारा कोई सरोकार नहीं है और ले जाकर नदी में फेंक दिया। उस हीरे को मछली निगल गयी मछुआरे ने मछली चीरी तो पेट में हीरा मिला। उसने राजा को भेंट कर दिया, वह हीरा राजा के पास पहुँचा तो राजा के मन में भी पाप आ गया। महानुभाव ! कहने का अभिप्राय यह है कि जिसके आते ही परिणाम खराब हों उस धन को मत रखो।

आग लगे उस धन में, उस धन पर बिजली टूट पड़े।
जिस धन के कारण मृत्यु हो, भाई-भाई में फूट पड़े॥

जिस धन के कारण मित्र एक दूसरे के प्राण लेवा बन जाते हैं। यदि भाई धन के कारण आपस में बोलते नहीं हैं तो वह धन किस काम का। वह शाश्वत नहीं है नष्ट हो जाने वाला है उसे तो छोड़ देना चाहिये।

एक घुड़सवार जंगल की ओर से जा रहा था, सामने एक साधु तपस्या कर रहे थे। उन्होंने घुड़ सवार की आहट सुनी और उससे कहा–आगे मत जाओ, बोले–क्यों महाराज ? आगे डायन है, पिशाचिन है। तब तक दूसरा भी आ गया, उससे भी मना किया किंतु दोनों घुड़सवार नहीं माने, यह कहकर कि देखते हैं कैसी डायन है दोनों आगे बढ़ गए। वे दोनों आगे बढ़े ही थे कि थोड़ी दूरी पर उन्हें एक कोहिनूर हीरा पड़ा दिखाई दिया। पहले घुड़सवार ने कहा यह हीरा मेरा है, दूसरा कहता है इसे पहले मैंने देखा है यह मेरा है। दोनों घोड़े से उतरकर नीचे आ गये, हीरे पर झपटने लगे, छीन–छान होने लगी, हीरा एक था दृष्टि दोनों की थी। वे युवा राजकुमार थे दोनों ने म्यान से तलवार निकाली और दोनों में युद्ध हुआ एक दूसरे की तलवार से वे दोनों न केवल घायल हुये अपितु मृत्यु को प्राप्त हो गये। तीसरा व्यक्ति जो साधु की बात को सुन रहा था, चरणों में प्रणाम किया कहने लगा महाराज ! आपने सही कहा था आगे डायन है। जो घुड़सवार यहाँ से निकले थे उन दोनों को वास्तव में डायन ने खा लिया।

महानुभाव ! ये धन की तृष्णा ऐसी डायन है जिसकी भूख शांत नहीं होती, न जाने ये कितनों का जीवन खा चुकी है। जो धन जितना ईमानदारी व न्याय से प्राप्त हुआ है वह तुम्हारा है, बेईमानी से जितना भी आयेगा बाहर निकल जायेगा। बर्तन में उतना ही पानी चढ़ता है जितना बड़ा बर्तन होता है, तुम्हारे पास सम्पत्ति उतनी ही रहेगी जितना तुम्हारे भाग्य में है ज्यादा इकट्ठी भी कर लोगे तो भोग न सकोगे, नष्ट हो जाएगी, निकल जायेगी। वेश्या कितना ही धन कमा ले वह धन को भोग नहीं सकती आखिर में दुर्दशा होकर के मृत्यु को प्राप्त होती है। चोर कितनी भी चोरी करके ले आयें उस धन को भोग नहीं सकते, वह धन तो लूट लाता है किंतु जेल में जिंदगी काटता है,

न चैन से खाता है, न सोता है, सिर्फ बदनामी सहन करता है, यातना सहन करता है।

मनुष्य को यह विश्वास होना चाहिये कि मेरे भाग्य का मुझे मिलेगा इसलिए इस धन को मैं व्यर्थ में न गवाऊँ। जो व्यक्ति अपनी किसी भी वस्तु या साधन का सदुपयोग करना जानता है वह वास्तव में उसका सही मूल्य हासिल करता है और जो सदुपयोग करना नहीं जानता वह उसका सही मूल्य हासिल नहीं कर सकता। एक करोड़ की चीज को एक कोड़ी के बदले दे दिया तो क्या लाभ हुआ।

'या धन की गति तीन हैं दान भोग अरु नाश'।
दान भोग यदि ना किया तो निश्चित होत विनाश॥

या तो दान में लगा दो, दान में लगाओगे तो भगवान् बन जाओगे, महान बन जाओगे, एक सच्चे व अच्छे इंसान बन जाओगे। यदि दान में नहीं लगा सकते हो-स्वयं खाओ और भोगो, जो भोगा है वह मिट्टी बन जायेगा।

पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज कहते हैं-कितना भी अच्छा भोजन करो-घाटी नीचे माटी है। चाहे रसगुल्ला खाया था या पेड़ा कुछ भी खाया वह तो घाटी नीचे माटी है। दो अँगुल की जीभ है तब तक स्वाद है उसके बाद नीचे जाना है। ऐसे ही स्वयं के खाने से मिट्टी हो जाता है, दूसरों को खिलाने से वह स्वर्णिम हो जाता है। किंतु जो व्यक्ति न तो स्वयं खाता है और न दूसरों को खिलाता है तो उसका धन मिट्टी से बदतर दशा या गंदगी बन जाता है। वह धन दूसरों के प्राण लेने के लिये डायन बन जाता है, वह धन भूत बन जाता है, यानि कितनों को दु:ख देता है कितनों के लिये आर्त्तध्यान का कारण बनता है, संक्लेशता का कारण बनता है कितनों के प्राण लेने में समर्थ हो जाता है।

ये धन या तो योग में लगाओ या भोग में लगाओ। योगी की साधना में, सेवा में नहीं लग पाया तो भोग में लगा लो, यदि उसमें भी नहीं लगा तो रोग में लगेगा, नियम से उसका वियोग होगा। जब तक संयोग है तब तक आपका उस पर अधिकार है अन्यथा वह तुम्हारे अधिकार से परे हो जायेगा।

अतीत पर थोड़ी निगाह डाल करके देखो धन किन-किन लोगों के पास था, उस धन का उन्होंने क्या किया। रावण के पास धन वृद्धि को प्राप्त होता गया, तो रावण ने अपने घर के जितने भी बर्तन थे वे सब सोने के बना लिये, इतना ही नहीं उसने अस्त्र-शस्त्र भी सोने के बना लिये और अपना कक्ष भी सोने का बना लिया। इतने से भी तृप्ति नहीं मिली तो उसने अपना पूरा महल सोने का बना लिया, तब भी संतोष नहीं हुआ उसने अपनी पूरी राजधानी सोने की बना ली। महानुभाव ! रावण के पास धन था, तीन खण्ड का वह राजा था, उसके पास भी देव सेवा में रहते थे, किंतु उससे उसने स्वयं के सुख की वृद्धि करना चाहा, उन सबको भोगने में ही प्रयासरत रहा। उसने धन को धर्म साधना के लिये साधन नहीं बनाया, योग में कारण नहीं बनाया, ध्यान ज्ञान के लिये नहीं केवल मान के लिये अपने धन को लगाया, उसका परिणाम ये हुआ वह धनी रावण अधोगति को प्राप्त हुआ।

दूसरी ओर छः खण्ड का राजा भरत चक्रवर्ती जिसने धन को प्राप्त किया और कहाँ लगाया। पहले तो उसने मन बनाया मेरे पास धन है तो भगवान् के पास दर्शन करने जब भी जाऊँगा खाली हाथ नहीं जाऊँगा रत्नों का थाल चढ़ाऊँगा, इतने से संतोष नहीं हुआ उसने महापूजा रचायी। भरतेश वैभव में लिखा है जब भरत चक्रवर्ती पूजा करता था तो रत्नों के ढेर पहाड़ जैसे लगा देता था, यदि जल चढ़ाना है तो वह चन्द्रकांत मणि, सूर्यकांत मणि चढ़ाता था, यदि चंदन

चढ़ाना है तो पुखराज आदि चढ़ाता था, यदि अक्षत चढ़ाना है तो हीरे आदि चढ़ाता था, यदि पुष्प चढ़ाना है तो नाना प्रकार के रत्न स्वर्ण के कमल चढ़ाता था, नैवेद्य में दिव्य रत्न, दीप में जिनकी कांति अचिन्त्य थी। ऐसी विविध मणियाँ, धूप-जिनमें से आभा निकल रही है ऐसे रत्न आदि चढ़ाता है।

इससे भी जब संतोष नहीं हुआ तो उसने नियम ले लिया मैं प्रतिदिन मुनिमहाराज को आहार दूँगा, उन्हें आहार दिये बिना भोजन नहीं करूँगा। किंतु कभी-कभी मुनिमहाराज नहीं आते तो आँखों से आँसू बहने लगते थे, सोचता था आज कैसे पापकर्म का उदय आ गया कोई भी मुनिराज मेरे यहाँ नहीं आये, क्या सभी का अयोध्यावासियों ने पड़गाहन कर लिया? मेरे इतने पाप का उदय, आज मेरे हाथ-हाथ नहीं सर्प के फण जैसे लग रहे हैं मेरे नेत्र-नेत्र जैसे नहीं नारियल के छेद जैसे लगते हैं, आज मेरा शरीर घृणित पाप युक्त दिखायी देता है इस प्रकार सोचता है, अविरल अश्रुधारा बह रही है क्योंकि आज जिस पुण्य से मैंने धन प्राप्त किया उसका सदुपयोग नहीं कर पाया।

ऐसा रत्नाकर कवि ने भरतैश वैभव में लिखा है तभी आकाश मार्ग से सूर्य और चन्द्रमा की तरह से दो ऋद्धिधारी मुनि आते दिखायी दिये, भरत ने उन्हें आहार कराया, आहारोपरांत छोड़ने गया। महाराज कहते हैं अब जाओ लौट जाओ-वह बोले-नहीं महाराज जी मैं आपको आपके स्थान तक छोड़कर आऊँगा ताकि मुझे मेरा स्थान मिल जाये, आत्मवैभव की प्राप्ति हो। इतने पर भी संतोष नहीं मिला और भी कुछ करना चाहते थे तब वह कैलाश पर्वत पर भगवान् की पूजा वंदना करने गया, वहाँ उन्होंने रत्न निर्मित भूत, वर्तमान, भविष्य की चौबीसी के 72 जिन मंदिर बनवाए। उनमें सोने का प्रयोग ऐसे किया गया जैसे ईंट को चिपकाने के लिए सीमेंट का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार अपने धन का सदुपयोग किया।

महानुभाव ! देवपत और खेवपत नाम के दो बालक राजा के सेवक बनकर शिखर जी की वंदना करने के लिये गये। दोनों बालक घर से चलने लगे तो माँ ने कहा बेटा-शिखरजी की वंदना खाली हाथ नहीं करना, माँ ने कुछ ज्वार के दाने पोटली में बांध दिये। वे बालक रात्रि में पहाड़ पर चढ़े और ज्वार के दाने चढ़ाकर पूरी वंदना कर प्रात:काल पाँच बजे तक आ गये, और पुन: राजा के यहाँ काम में लग गये। आज वे बालक बहुत गद्‌गद हैं कहते हैं हे भगवान् ! ऐसा पुण्य सबको देना। प्रात:काल बालक तो लौट आये अब राजा वंदना के लिये चढ़ा तो देखता है हर टोंक पर हीरे-मोती चढ़े हैं।

राजा का मन वंदना में नहीं लगा, उतर कर आया पूछा-यहाँ पर मुझसे बड़ा सेठ कौन है, जिसने भगवान् के सामने रत्न चढ़ाये हैं। सेवकों ने बताया यहाँ तो कोई नहीं है।

दूसरे दिन राजा ने अपने गुप्तचर शाम को ही पता लगाने के लिए नियुक्त कर दिये कि मुझसे पहले कौन आता है रत्न चढ़ाने के लिये। दूसरे दिन दोनों भाईयों ने सलाह की कि एक वंदना और कर आते हैं, रात्रि में पुन: 10-11 बजे दोनों चले गये और बहुत भक्ति भाव से हर टोंक पर माँ के दिये ज्वार के दाने चढ़ाते हुए वंदना कर रहे थे। वहीं गुप्तचर छिपकर बैठा था, देखा वेदी पर तो रत्नों का प्रकाश हो रहा है। वे पहुँचे राजा के पास और बोले-राजन्-न तो यहाँ कोई दूसरा राजा ही आया है और न ही स्वर्ग से देव आये हैं, आपके ही सेवक दो बालक पहुँचे हैं और रत्न चढ़ाये हैं।

राजा ने कुपित होकर दोनों बालकों को बुलाया-और चोरी का इल्जाम लगाते हुये उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई। वे बोले-महाराज ! आप हमारे अन्नदाता हैं देवता हैं आपको यदि शंका है तो हमारे प्राण ले लो पर मिथ्या दोष न लगाओ। हम गरीब जरूर हैं पर हम चोर नहीं

हैं बेईमान नहीं हैं। राजा पुनः जोर से चिल्लाया-झूठ भी बोलते हो। मेरे गुप्तचरों ने स्वयं तुम दोनों को पहाड़ पर ये रत्न चढ़ाते देखा है। वे बोले-महाराज हमारे पास रत्न कहाँ से आये, रत्न तो कभी हमने देखे ही नहीं। हमारी माँ ने हमें ज्वार के दाने दिये थे, हमने तो भगवान् के आगे वही चढ़ायें हैं। अच्छा तो क्या वे दाने रत्न बन गये, नहीं महाराज हमें नहीं पता वे क्या बन गये? यदि ऐसे ही तुम भगवान् के भक्त हो तो चलो-बेचारे बालक पहाड़ पर चढ़े साथ में कई लोग भी गये। वे पहुँचे और भगवान् के चरणों में अपना माथा रखकर बोले-हे प्रभु ! हमें अपने प्राणों की चिंता नहीं है हमारी भक्ति से यदि ये ज्वार के दाने रत्न हुये हैं तो वे आज भी हो जायें, इसलिये नहीं कि हमारे प्राण बच जायें अपितु इसलिये यदि ऐसा नहीं हुआ तो गरीबों के प्रति कोई विश्वास नहीं करेगा, सब लोग गरीबों को बेईमान कहेंगे, चोर कहेंगे। हम बस यही चाहते हैं, और झोली में से ज्वार के दाने चढ़ाये।

वे धोक दे ही रहे थे कि वे दाने रत्न-हीरे-मोती के रूप में चमकने लगे। सबने प्रत्यक्ष में देखा और कहा वास्तव में धन्य है इनकी भक्ति और श्रद्धा। राजा ने तलवार नीचे गिरा दी, दोनों के पैर पकड़ लिये कि मैं ही अपराधी हूँ जो निर्दोष बालकों की निष्ठा भक्ति पर विश्वास नहीं किया। वह ललितपुर का राजा ललितांग कहता है-मेरी भक्ति में शक्ति नहीं मैं तो अहंकारी हूँ, बस अब मुझे मुक्त करो और वहीं किन्हीं मुनिराज से दीक्षा ले लेता है और लिख देता है पत्र कि मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति के हकदार ये दोनों पुत्र ही होंगे। मैं अपनी अचेतन सम्पत्ति इन दोनों को सौंपता हूँ और चेतन सम्पत्ति स्त्री पुत्रादिकों का त्याग करता हूँ। दोनों बालक लौटकर ललितपुर आये। पत्र के अनुसार उन्हें सम्पत्ति भी दी गयी किंतु उन्होंने उस सम्पत्ति का एक पैसा भी अपने उपयोग में नहीं लगाया पूरा पैसा बुन्देलखण्ड के मंदिर बनवाने में खर्च कर दिया।

महानुभाव ! यह था धन का सदुपयोग। वह जबलपुर की बुढ़िया जिसने एक-एक मुट्ठी आटा बेचकर पैसा एकत्र किया और वह पिसनहारी की मढ़िया बनवायी। वहाँ की रानी कर्णवती जिसकी आँखों में वह बुढ़िया व उसकी झोंपड़ी खटकती थी, चाहती थी उसके महल के सामने से यह झोंपड़ी हटा दी जाये। आज न वह रानी है, न उसका महल किंतु आज भी जबलपुर में वह मढ़िया जी बनी है जहाँ पहाड़ के ऊपर चक्की के पाटे आज भी लगे हुये हैं। वह बुढ़िया उन पैसों से देवगढ़ जाकर मूर्ति लायी और अपने श्रद्धा का मंदिर बनवाया। उस बुढ़िया ने अपने चार चुटकी आटे का सदुपयोग किया इसका परिणाम यह हुआ वह मंदिर आज भी खड़ा है।

महानुभाव ! भरत के द्वारा निर्मित 72 जिनालय, पिसनहारी की मढ़िया आज भी है किन्तु रावण की लंका आज नहीं है। जिसने भी अपने धन का सदुपयोग करा है, चाहे तो पात्रदान में लगाया, या जिनमंदिर निर्माण में लगाया, शास्त्र के प्रकाशन में लगाया, चाहे धर्म के अनुष्ठान में लगाया कहीं भी लगाया उसका वह दान अमर हो गया।

हर व्यक्ति अपना धन बढ़ाना चाहता है। माना किसी के पास 10 लाख रुपये हैं तो लोग सलाह देने आते हैं एक काम करो 10 लाख रु. का एक मकान खरीदो, उस मकान के माध्यम से तुम्हारे पास किराया आता रहेगा, मकान की कीमत बनी रहेगी सो अलग। दूसरा व्यक्ति सलाह देता है प्लॉट लेकर डाल दो कुछ दिन बाद कीमत बढ़ जायेगी। कोई कहता है-फैक्ट्री में कुछ हिस्सा 10-20% बना लो पर्ची डाल दो इसके माध्यम से धन आता रहेगा। अगला कहता है दुकान ले लो, कोई कुछ कोई कुछ सलाह देकर धन का सदुपयोग करने की बात कहते हैं। देखो-मकान में आपने लगाया-कोई गारण्टी नहीं टिका रहे, मिनटों में धराशाही हो जाये। यदि दुकान में

लगाया कोई गारण्टी नहीं कि दुकान चले ही चले, लाभ भी हो सकता है हानि भी हो सकती है। यदि और भी कहीं लगाया तो पैसा डूब सकता है, किंतु एक जगह ऐसी है जहाँ पैसा लगाया जा सकता है और कभी डूबता नहीं।

अपना मकान नहीं भगवान् का मंदिर बनवाओ, मंदिर बनवाने से जितने भी लोग दर्शन करने, स्वाध्याय करने आयेंगे उन सभी का जो पुण्य होगा उसका 1/6 हिस्सा तुम्हारे खाते में जमा हो जायेगा। उस पुण्य से तुम्हें वो सब मिलेगा जो तुम चाहोगे। चाहे जंगल में हो या नदी में पुण्य वहीं पहुँच जायेगा। मिट्टी को भी छूओगे तो सोना हो जायेगा। अन्य प्रकार का पैसा तो डूब सकता है, आपसे कोई छीन सकता है, जल सकता है, चोरी हो सकता है, किंतु धर्म में लगाया एक पैसा भी नष्ट नहीं हो सकता है। नियम से उस पैसे का तुम्हें कमीशन मिलता रहेगा, मूल तो ज्यों की त्यों है सो है ही।

महानुभाव ! इस प्रकार यदि व्यक्ति अपना धन लगाता है तब तो ठीक है नीतिकार भी कहते हैं-

मीत न नीत गलीत है, जो धरिये धन जोड़।
खाये खर्चे जो बढ़े, तो जोड़िये करोड़॥

हे मित्र ! ये नीति नहीं है यह तो गलीत धिक्कारने की बात है, जो तुम धन को जोड़ते जा रहे हो। पेट को काट-काट कर जोड़ रहे हो ये अच्छी बात नहीं। यदि दान देने के उपरांत और अपना पेट भरने के उपरांत, जोड़ो तो कोई बात नहीं। क्योंकि आपका जोड़ा हुआ धन तो नष्ट हो सकता है, रखी हुयी रोटी-दाल सब्जी खराब हो जायेगी, कोई खा जायेगा छीन कर ले जायेगा किंतु यदि आपने प्यार के साथ, सम्मान के साथ किसी को दो रोटी भी खिला दी हैं, विधिपूर्वक नवधा भक्ति से तो नि:संदेह वह दो रोटी 2 लाख 2 करोड़ रोटी पूड़ी में बदल जायेगी। जिस प्रकार 22 घड़ी के लिये अंजना ने मूर्ति

छिपायी थी वह 22 घड़ी का 22 वर्ष हो गया। ऐसे ही तुमने एक पैसा भी धर्म के क्षेत्र में दे दिया तो वह 10-20 गुना होकर मिलेगा।

धर्मक्षेत्र में दिया गया दान नि:संदेह पुण्य को देने वाला है। इसीलिए आप जितना भी कमाते हो, आपकी जितनी भी सामर्थ्य है उसमें से धर्म का सेवन करना चाहिये, धर्म के लिये उसमें से निकालना चाहिये। महानुभाव ! मेहनत से कमाओ फिर जितना भी आता है उसे सही रूप से व्यय करना सीखो। यदि तुम्हारे पास दान देने की बुद्धि नहीं है, धर्म के लिये खर्च करने के लिये बुद्धि नहीं है तो भगवान् से कहना-भगवान् ! मुझे ऐसा धन नहीं चाहिये कि जिस धन को प्राप्त करके मेरा साहस उसे धर्म में खर्च करने के लिए न हो पाये। तुम कमाकर बैंक में रखते हो, मकान, दुकान खरीदते हो, ब्याज पर उठाते हो, बेटा बेटी पर लगाते हो, पर विश्वास रखो ये सब धोखा दे सकते हैं किन्तु धर्म कभी धोखा नहीं देता। आपने जितना भी धर्म के लिये खर्च किया है उतना तुम्हें नियम से मिलेगा ही मिलेगा।

देखो-क्षेमंकर श्रेष्ठी के यहाँ धण्णंकर-पुण्णंकर नाम के दो बालक नौकरी करते थे। क्षेमंकर श्रेष्ठी मुनिमहाराज की वंदना करने के लिये गये। उन्होंने दोनों सेवकों से कहा तुम भी वंदना करो और ये चावल चढ़ा दो। उन्होंने हाथ जोड़े कहा-सेठ जी क्षमा करो हम भगवान् की व मुनिमहाराज की वंदना तो करेंगे किंतु आपके दिए ये चावल नहीं चढ़ाएंगे। हम अपने द्रव्य से ही भगवान् की पूजा करेंगे आप हमारी तनख्वाह हमारा जो वेतन है वह दे दो और उन्हें वेतन मिला, कितना मिला? पाँच कोड़ी। पहले मुद्रा के रूप में कोड़ी चलती थी, उससे उन्होंने पुष्पादि फलादि लिये और उनके माध्यम से भगवान् की व मुनिराज की वंदना की। वही पुण्णंकर और धण्णंकर आगे अमरसेन और वइरसेन होते हैं जिन्हें पाँच प्रकार की विद्या की प्राप्ति होती है। महानुभाव ! वह धनदत्त ग्वाला जिसने मात्र पुष्प ही

तो चढ़ाया था भगवान् के सामने, आगे चलकर वह करकण्डु नाम का राजा होता है।

तो कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति अपने धन का सदुपयोग करने का संकल्प ले। यदि लक्ष्मी तुम्हारी बढ़ नहीं रही जबकि तुम दसों साल से खूब मेहनत कर रहे हो, ज्यों की त्यों है तो एक काम करो-धर्म में, दान में, पुण्य में-लक्ष्मी को दे दो हम दावे के साथ कहते हैं कि तुम्हारी सम्पत्ति बढ़ेगी। सम्पत्ति घट रही है माना कि पहले 10 करोड़ थी आज 1 करोड़ रह गयी है तो दान में लगाना प्रारंभ कर दो, गारण्टी है लक्ष्मी घटना बंद हो जायेगी और जिसकी लक्ष्मी बढ़ रही है वह धर्म में लगाना प्रारंभ कर दे गारण्टी है कि जिस अनुपात में बढ़ रही है उस अनुपात से भी ज्यादा बढ़ेगी। महानुभाव ! कभी दान धर्म में देने के लिये सकुचाओ मत, अपनी शक्ति के अनुसार लगाने का प्रयास करो। यदि तुमने दान देने से मना कर दिया तो समझो तुमने पुण्य को आने से मना कर दिया है लक्ष्मी को ठोकर मार दी। क्योंकि जो पैसा धर्म में लग गया वह बढ़ता ही चला जायेगा।

एक सत्य घटना है एक व्यक्ति जिसके घर में 7-8 लाख का कैश रखा था, संयोग की बात समाज के लोग चंदा लेने गये। लोगों ने कहा धर्म का अमुक अनुष्ठान है-तुम्हारी जो सामर्थ्य हो वह तुम दे दो-वह बोला-मेरे पास पैसा कहाँ है, है ही नहीं, होता तो जरूर देता कभी मना नहीं करता। उन लोगों को पता था अंदाजा था कि इसके पास पर्याप्त धन है। पर उसने तो मना कर दिया मेरे पास कुछ भी नहीं है। उन लोगों ने कहा भी भाई ! अभी हमें आवश्यकता है तुम लाख दो लाख रु. की मदद कर दो बाद में हम तुम्हें वापस कर देंगे। किन्तु उसने बड़ी मुश्किल से 11 हजार रु. लिखाये। रात्रि में उसके घर में चोर घुस गये और सारा पैसा लूटकर ले गये।

प्रात:काल रिर्पोट लिखायी समाज के दो-चार व्यक्तियों को भी लेकर गया। मेरा इतना सोना चाँदी चला गया और नगदी रुपया भी लिखाया कि इतना था। तो समाज के लोग कहने लगे ये झूठ बोलता है कल इसके घर में तो कुछ था ही नहीं, चोरी कहाँ से हो गया 7-8 लाख रु. इसके यहाँ कहाँ से आ गये-किन्तु उसने थानेदार से खूब कहा कि मैं सच कह रहा हूँ मेरा इतना नगद पैसा था वह वास्तव में चोरी हो गया। थानेदार ने कहा कि मैं कैसे मान लूँ तुम्हारे ही समाज के लोग मना कर रहे हैं। वह कहता है आप चाहो तो वहाँ फोन लगा लो जहाँ से कल 7 लाख का पेमेन्ट मेरे पास आया है। वे समाज के लोग कहने लगे जब तेरे पास रखा था तो तूने कल मना क्यों कर दिया कि तेरे पास कुछ भी नहीं है। यदि तू उधार रूप भी मंदिर के कार्य के लिए दे देता तो चोरी में कुछ तो बचा रहता, हो सकता है दान के पुण्य से चोर की आँखों में अंधेरा ही छा जाता, चोरी ही करके नहीं ले जा पाता। कई बार जो धर्मात्मा और पुण्यात्मा होता है उसका पैसा ऐसे नहीं जाता है।

तो कहने का आशय है-जो व्यक्ति अपने धन को खा लेता है, भोगों में, पाप में लगा देता है तो वह धन माटी के समान होता है, किन्तु जिसने अपने धन को धर्म के कार्य में लगाया है, अरे कल का क्या भरोसा कल तुम लखपति ही रहोगे या करोड़पति या रोड़पति। कल जब नहीं रहेगा तो क्या करोगे, आज जब मन में भावना आ रही है तो पुण्यकर्म में लगा दो। कभी हीनता का भाव मत लाओ कि मेरे पास नहीं है। कहो-मेरे पास है, जितना भी है उसी के समान दान भी करूँगा। भगवान् से क्या छिपाना, भगवान् से छिपाकर कहाँ जाऊँगा। तुम्हारी सब दौलत धर्म की बदौलत है और तुम धर्म के लिये ही मना कर रहे हो।

यदि किसी व्यक्ति ने पैसा भगवान् की बदौलत ही प्राप्त किया है और कभी भगवान् के मंदिर में लगाने का मौका मिला तो संकोच

कैसा। सही बात तो यह है जब भगवान् ने तुम्हें चुपचाप दिया है तो तुम भी चुपचाप भगवान् के काम में दे दो और यदि चुपचाप न दोगे ढोल बजाके दोगे तो उतनी ही प्रभावना रह जायेगी इसलिये गुप्त रूप से ज्यादा से ज्यादा देने का प्रयास करो। गुप्त में देने से गुप्त रूप में खजाने मिलेंगे। ऐसे दिया कि दाँये हाथ से दिया बाँये हाथ को पता भी न चला तो ऐसे सम्पत्ति मिलेगी कि जैसे मिट्टी पकड़ी और सोना हो गयी, काँच पकड़ा था कोहिनूर हीरा बन गया।

महानुभाव ! ऐसे बहुत सारे प्रसंग हैं जिन्होंने अपने धन का सदुपयोग किया। नीतिकार कहते हैं-

अर्थस्योपार्जने दुःखं, दुःखं च तस्य रक्षणे।
आय दुःखं व्यये दुःखं, दुःखं अर्थस्य संश्रयात्॥

अर्थ के उपार्जन करने में कष्ट होता है, अर्थ के रक्षण करने में दुःख होता है, अर्थ के व्यय करने में दुःख होता है, अर्थ आ रहा है तब भी दुःख, जा रहा है तब भी दुःख, रक्षा कर रहे हैं तब भी दुःख। उस अर्थ को अपने चित्त से क्यों लगाते हो अर्थ को परमार्थ में क्यों नहीं लगा लेते हो। और भी कहते हैं-

धर्म से धन आता है अर्थात् पुण्य से धन आता है। पुण्य होता है तो व्यक्ति व्यापार अल्प पूँजी से करता है तो भी उसके पास धन आ जाता है। ''अर्थमेवार्थ निमित्तं'' अर्थ अर्थ के निमित्त होता है यह बात सत्य है, किंतु फिर भी अर्थ अर्थ के निमित्त तभी होता है जब अर्थ को परमार्थ में लगाया हो। अर्थ के माध्यम से यदि केवल अपने स्वार्थ की सिद्धि की है, केवल दूसरों को ठगने का दुःसाहस किया है तो वह अर्थ अनर्थ का निमित्त हो जाता है। आचार्य शिवकोटि महाराज ने लिखा है ''अत्थो अणत्थ मूलो'' अर्थ अनर्थ का मूल है, झगड़े की जड़ है, कलह की जड़ है और वह मृत्यु तक का कारण

बन सकता है। सम्पत्ति जो धर्म के साथ नहीं जुड़ी विपत्ति का कारण है, उस सम्पत्ति के कारण अनिष्ट हो सकता है इसलिये उस सम्पत्ति को ज्यादा अपने पास मत रखो। उस वित्त को वीतरागी से लगाओ उस वित्त को शुद्ध चित्त के साथ धर्म से लगाओ तब तो ठीक है, यदि आप उस अर्थ को परमार्थ मानकर उसी में लगे रहे तब नि:संदेह जीवन में परम परमार्थ की प्राप्ति नहीं होगी।

महानुभाव ! पहले बात कही थी 'धन बुरा हूँ भला कहिये, लीन पर उपकारसों' धन वास्तव में बुरा है, धन धर्म को नष्ट करने वाला है, दुर्गति में ले जाने वाला है-**बहु आरंभ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः** किन्तु वह धन भला हो सकता है यदि पर उपकार करो तो। भरतचक्रवर्ती की तरह खर्च किया है या श्री रामचन्द्र जी की तरह जिनालय बनवाये, हरजसराय की तरह जिन्होंने हस्तिनापुर का मंदिर बनवाया था या जीवराज पापड़ीवाल जिन्होंने 1548 से लेकर 1553 पाँच वर्ष के बीच में लगभग 2 लाख जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा करायी और भी बहुत सारे श्रेष्ठी जो सदैव धर्म के क्षेत्र में बहुत अग्रणी रहे।

उन्होंने सही रूप में धर्म के स्वरूप को पहचाना है। अन्यथा धन तो बहुत से लोगों के पास आता है। तुम्हारी आत्मा को ये दृढ़ विश्वास हो जाये कि धर्म की जड़ कभी सूखती नहीं, जिसका धन धर्म से जुड़ गया उसकी जड़ कभी सूखेगी नहीं, पाप से लग गया तो हरी नहीं रह पायेगी। पाप उस वृक्ष को काट देता है बिना जड़ का वृक्ष टिक नहीं पाता और धर्म से जुड़ गया तो उसकी जड़ पाताल तक जाती है। तो बस हमारा आपसे यही कहना है कि आप अपने धन का सदुपयोग करना सीखें। जिससे आपका नरभव सफल और सार्थक हो।

''श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।''

प्रकरण 7

परिणाम जवानी के जोश का

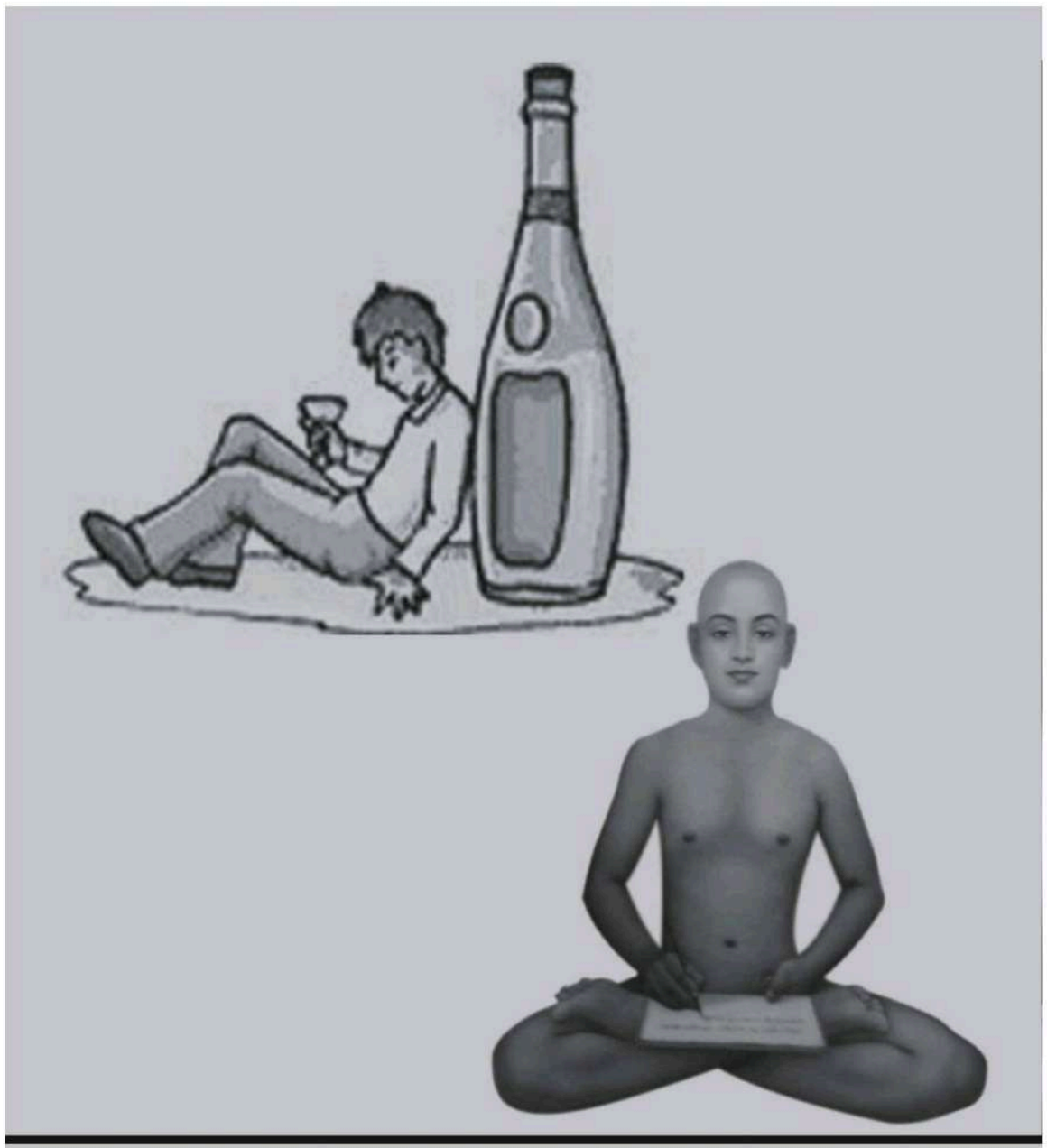

विकार व व्यसनों के वश में, न होने वाला युवा ही, जीवन का सर्वाधिक सफल, उपयोग कर सकता है।

परिणाम जवानी के जोश का

संसार का प्रत्येक प्राणी जिसके पास जितने भी साधन हैं, उनके माध्यम से सुख और शांति की खोज करने का पुरुषार्थ करता है। जिस प्राणी के पास मात्र एक इन्द्रिय है वह एकेन्द्रिय जीव भी दु:ख नहीं चाहता, दो, तीन, चार इन्द्रिय जिनके पास शरीर के अतिरिक्त वचन बल भी है, वह उन दोनों के माध्यम से पुरुषार्थ करता है, दु:खों से बचने का। आपने देखा होगा-कभी चींटी आदि पानी के समीप में पहुँच जाये तो पुन: तुरंत ही लौट जाती है या मक्खी बैठी है आप अपनी अँगुली उसके पास ले जाओ तो वह तुरंत उड़ जाती है। वह भी सामने कष्ट को अनुभव करके अपनी रक्षा का प्रयास करती है। जो पंचेन्द्रिय जीव हैं संज्ञी या असंज्ञी वह भी प्रयास करते हैं, कार्य करते हैं।

महानुभाव ! जिनके पास पाँच इन्द्रियाँ हैं, मन भी है, वचन बल भी है, शरीर भी स्वस्थ व निरोगी है, तत्त्वज्ञान है ऐसे व्यक्ति पुरुषार्थ करते हैं अपने कर्मों को निर्जीर्ण करने का क्योंकि जिन व्यक्तियों के अंदर तत्त्वज्ञान है, यथार्थ सम्यग्ज्ञान है, आत्मा का बोध है ऐसा व्यक्ति कर्मों के बंधन में बंधना नहीं चाहता, कर्मों को नष्ट करना चाहता है। जिस व्यक्ति ने ये जान लिया है कि कर्म आत्मा के लिये दु:खकर हैं वह कर्मों को नष्ट करने का संकल्प लेता है। जिस व्यक्ति ने कर्मों को हितकर माना है वह व्यक्ति कर्मों को बटोरता जाता है। जब तक पाप से परिचय नहीं हुआ तब तक पाप से विरक्ति नहीं होती। पाप से परिचय होता है पाप का फल भोग लेने से, पाप से विरक्ति होती है दूसरे व्यक्ति को पाप का फल भोगते देखने से।

पाप फल वहाँ अरुचिकर होता है जब पाप के बारे में सुना जाता है और स्वयं पाप का फल भोगकर के अनुभव करके स्वयं पाप का त्याग करने का संकल्प मन में आ जाता है। कई व्यक्तियों के मन में पुण्य कार्य करने की भावना होती है और वह भावना दूसरे पुण्यात्मा व्यक्ति को देखकर बनती है, पुण्य का फल भोगते हुये देखकर बनती है, पुण्य के बारे में सुनकर पुण्यकार्य करने की भावना होती है यदि कभी सातिशय पुण्य का उदय आ जाये तो वह पुण्य भी अच्छा पुण्य कराने में समर्थ होता है। निकृष्ट पुण्य संसार का कारण होता है, उत्कृष्ट पुण्य परम्परा से मोक्ष का कारण होता है, संसार का नहीं। यदि वह सम्यक्दृष्टि अपने पुण्य के बदले में संसार की विषय भोग वस्तु नहीं चाहता है तो।

महानुभाव ! पुरुषार्थ बाल्य अवस्था में मंद होता है, किशोर अवस्था में थोड़ा प्रबल हो जाता है और यौवन अवस्था में वह उत्कृष्ट रूप को प्राप्त कर लेता है, प्रौढ़ावस्था में ढल जाता है और वृद्धावस्था में औपचारिकता चलती है पुरुषार्थ की। यह अवस्था हमारे और आपके सबके पास है। बाल्य अवस्था रत्नों की तरह से है। यदि बाल्यावस्था में सही मार्ग का चयन कर लिया जाये तो संभव है यौवन अवस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था सुखद हो सकती है। और बाल्य अवस्था में यदि एक कदम बहक जाये तो असंभव है पूरे जीवन में मंजिल की प्राप्ति कर पाना। ये बाल्य अवस्था का मंद पुरुषार्थ, किशोर अवस्था का प्रबल पुरुषार्थ, यौवन अवस्था का पूर्ण उत्कृष्ट पुरुषार्थ व्यक्ति को तदनुरूप फल देने में समर्थ होता है। यदि बाल्य अवस्था में शुभ पुरुषार्थ किया है तो शुभ फल की प्राप्ति होती है, अशुभ पुरुषार्थ किया है तो अशुभ फल की प्राप्ति होती है।

सूर्य मध्याह्न काल में मध्य में पहुँच जाता है उसका प्रकाश, प्रताप, ऊष्णता प्रखर हो जाती है। उतनी प्रखरता, उतनी प्रकृष्टता

बाल सूर्य की और वृद्ध सूर्य की नहीं देखी जाती। उगता हुआ सूर्य अच्छा लगता है, लोग प्रात:काल उगते सूर्य में घूमने जाते हैं, कहते हैं अमृत स्नान है, प्रात:काल का सूर्य देखना चाहिये उससे नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। संध्याकाल का सूर्य भी अच्छा लगता है किन्तु मध्याह्न काल के सूर्य में कोई घूमने नहीं जाता, वह तो ऐसा लगता है जैसे चुभ रहा हो, उसकी धूप काट रही हो क्योंकि वह बहुत प्रखर हो गया। जब व्यक्ति शक्ति से सम्पन्न होता है तब वह अपने मन की कामना को, भावना को पूर्ण करने में समर्थ होता है।

बात ये है घोड़ा तीव्रगति से दौड़ने वाला है किन्तु उतना ही ज्यादा खतरनाक है थोड़ा सा भी चूक गये, हवा के साथ बातें करने वाला घोड़ा वह तो वायु की तरह से उड़ जायेगा किंतु युवा को जमीन पर धराशाही करके जायेगा। युवा भी वायु की तरह से होता है यदि उल्टा चलता है तो, और युवा यदि सीधा चलता है तो युवा है। तो वह घोड़ा उसे मंजिल तक शीघ्र पहुँचा देता है।

जिस युवा ने घोड़े की लगाम कसकर पकड़ रखी है, जो अच्छी तरह से घोड़े पर बैठना जानता है ऐसा व्यक्ति तीव्रगामी घोड़े पर बैठकर मंजिल तक पहुँच जायेगा किंतु जो समर्थ नहीं है घोड़े को पकड़ने में वह नि:संदेह धराशाही हो जायेगा। तीव्र वेग से चलने वाला वाहन शीघ्र आपको गन्तव्य तक पहुँचा सकता है किंतु यदि आप नियंत्रण करना नहीं जानते हैं तो वह तीव्रवेग वाला वाहन कभी मंजिल तक न पहुँचा पाएगा, ऐसा भी हो सकता है मार्ग में ही आपको दूसरी गति में पहुँचा दे। मानव के जीवन में प्रमुख तीन अवस्थायें आती हैं-बचपन, जवानी और बुढ़ापा। बचपन और बुढ़ापा दोनों दूसरों के सहारे के बिना जीना असंभव है। बचपन में माँ-बाप के सहारे की और बुढ़ापे में संतान के सहारे की जरूरत होती है,

लेकिन जवानी एक समय ऐसा है जिसमें किसी सहारे की जरूरत नहीं होती है। मानव जीवन का सबसे शक्तिशाली समय जवानी है।

''जो चट्टान से टकराये उसे तूफान कहते हैं।
जो तूफान से टकराये उसे जवान कहते हैं॥''

जवानी में दिल में जोश, जिगर में गुस्सा, बाँहों में बल, पैरों में पंख, दिमाग में शोले होते हैं। जवानी में इंसान सबसे ज्यादा गलतियाँ करता है, लेकिन वह गलती ऐसी नहीं होनी चाहिये जिसकी सजा जीवन भर भुगतनी पड़े। जवानी के पौधे पर अनुभव के फूल देर से खिलते हैं।

महानुभाव ! जवानी मानव के लिये वरदान है तो अभिशाप भी। जिसने जवानी को वरदान बनाया है उन्होंने अपनी आत्मा को भगवान् बनाया है, पर जिसने जवानी का दुरुपयोग किया, जवानी की धारा में बह गया, उसका जीवन अभिशाप हो गया। उसने जवानी को पाकर पाप किया इसलिये उसके जीवन को अभिशाप लगा है, उसने संताप को सहन किया है।

जवानी वह चौराहा है जहाँ से अनेक रास्ते निकलते हैं, यदि उस जवानी के चौराहे से व्यक्ति अधोगति की ओर जाना चाहे तो गाड़ी अधोगति की ओर भी जाती है और ऊर्ध्वगति की ओर भी जाती है। जवानी का मोड़ जीवन का सबसे खतरनाक मोड़ है एक मोड़ चूक गये तो देवगति को छोड़ नरकगति भी पहुँच सकता है और एक मोड़ पर सावधान हो गये तो वह व्यक्ति जो नरकगति की तैयारी वाला था देवगति में भी पहुँच सकता है। जवानी के मोड़ को छोड़ मत, जवानी के मोड़ पर दौड़ मत जवानी के मोड़ पर सावधान होने की आवश्यकता है।

जवानी का जोश रोष को पैदा करने वाला होता है। वह जवानी नीर की तरह से है जवानी के जोश में यदि रोष का जहर मिल जाता है तो जल विषाक्त हो जाता है उसे पीने वाला व्यक्ति दुर्गति दुरावस्था का पात्र बन जाता है। जवानी तो नीर की तरह से है यदि उसमें होश की शक्कर मिल जाये तो जवानी का नीर शर्बत बन जाता है, मिष्ट होता है, शक्ति भी देता है, शीतलता भी देता है साथ-साथ आनंद भी देता है, सुख की अनुभूति कराने वाला होता है। जवानी के जोश के साथ यदि थोड़ा सा तोष मिल जाये वह 'क्षीर का तोष' नीर में मिल जाए तो पानी भी दूध जैसा हो जाता है और दूध के साथ पानी भी पी लिया जाता है, वैसे अकेला पानी पीने में नहीं आता।

जवानी के जोश में यदि गुणों का कोष मिल जाये तब तो समझो उस नीर में आपने बूरा मिलाकर सत्तू डाल दिया, आपने उसे पान कर लिया तो समझो भोजन की भी तृप्ति हो गयी, पानी की भी तृप्ति हो गयी।

महानुभाव ! जवानी उभय शक्ति से युक्त है। वह अधोगति में ले जाने में भी कारण है ऊर्ध्वगति में भी कारण है, इसीलिये जवानी के जोश को आप ऐसे उपयोग मत करो। जवानी का जोश घी है, उस अकेले घी को पीओगे तो पचा नहीं पाओगे। जवानी के जोश में थोड़ा सा होश मिला लो यदि जवानी के घी में होश का बूरा मिलाकर खाओगे तो तंदरुस्त हो जाओगे, हृष्ट पुष्ट हो जाओगे। अकेला यदि घी पी गये तो रेचक हो जायेगा, पेट में टिक नहीं पायेगा। उस जवानी के घी का सेवन दाल में डालकर, रोटी पर चुपड़कर करोगे तो लाभदायक होगा अन्यथा जवानी का अकेला जोश इतना लाभ दायक नहीं होगा।

इसीलिये अकेला जोश से युक्त युवा, वायु की तरह से पतित हो जाता है, वायु कितनी भी ऊपर चले, उड़े यदि उसे सहारा नहीं

मिलता है तो पर्वत से टकराकर के चूर-चूर हो जाती है, और यदि वायु को सही दिशा मिल जाये तो वायु हजारों लाखों-करोड़ों मीलों तक चली जाती है। ऐसे ही युवा को जिसमें जोश है वायु जैसा उसे वृद्ध का कहीं होश मिल जाये तो नि:संदेह वह युवा कर्मों का छेद करने में भी समर्थ हो सकता है।

महानुभाव ! ये जवानी के जोश का ही तो परिणाम था कि यदुवंशी राजकुमारों ने शराब पीकर के मदोन्मत्त होकर मुनिराज पर उपसर्ग कर दिया था। जवानी के जोश में भूल गये कि वे क्या कर रहे हैं। द्वीपायन मुनि के ऊपर न केवल कंकड़-पत्थर फेंके, न केवल धूल व मिट्टी फेंकी, न केवल पानी उलीचा, न केवल शब्दों के बाणों के प्रहार किये यहाँ तक कि मुनिराज के ऊपर मल मूत्र भी क्षेपण किया।

यह जवानी के जोश का ही दुष्परिणाम रहा। जितने भी उपसर्ग किये जाते हैं, जवानी के जोश में किये जाते हैं। क्या कभी किसी वृद्ध पुरुष ने उपसर्ग किया। युवा जब जोश में आता है तो भूल जाता है कि मैं उपसर्ग भगवान् पर कर रहा हूँ या मुनिराज पर, जिनवाणी पर कर रहा हूँ या धर्म और धर्मात्मा पर। वह जोश में आकर होश को खो बैठता है। नि:संदेह वह रोष में आकर नरक के द्वार को प्राप्त करता है। उसके जीवन में गुण के कोष की होली जल जाती है। कुछ युवाओं के बारे में सुनने में आया जो युवा भगवान् की वेदी को भी तोड़ने के लिये आ गये। उन युवाओं ने जवानी के जोश में आकर के वेदी को तोड़ तो दिया किन्तु वे चारों युवा छ: महीने तक भी न रह सके।

पाप कर्म का उदय आया जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी मनुष्य पर्याय छूट गयी। चाहे मृत्यु एक्सीडेंट से हुई हो या अन्य किसी प्रकार से चारों मृत्यु की गोद में सो गये।

गौतम स्वामी के पूर्वभवों में आता है वह रानी विशालाक्षी और उसकी दो दासी रंगरी, चामरी जिन्होंने यौवन के नशे में आकर के मुनि महाराज पर उपसर्ग किया था। 7 दिन के अंदर कुष्ट रोग हो गया। तीनों मृत्यु को प्राप्त कर नरकादि में गयीं, वहाँ से कुत्ती, सूकरी, गर्दभी इत्यादि बनीं।

जवानी के जोश में आकर के कनकोदरी ने लक्ष्मीमति से स्पृहा करके भगवान् की मूर्ति को 22 घड़ी के लिए छिपा दिया था, जवानी का नशा चढ़ा हुआ था रूप सौन्दर्य के कारण, उसका परिणाम यह हुआ कि 22 वर्ष तक अंजना की पर्याय में पति वियोग सहन करना पड़ा। जवानी के आवेश में आकर ही वेदवती ने सुदर्शन मुनि व आर्यिका माता जी की निंदा की थी, उसी वेदवती के जीव ने सीता बनकर के अपवाद को सहन किया, जंगल में भटकती रही, यही तो जवानी के जोश का परिणाम था।

राजा श्री कंठ ने मुनिमहाराज को कुष्ट रोगी कह दिया था, सात सौ सैनिकों ने ताली बजा दी थी। वे जवानी के जोश में आ करके होश खो बैठे थे उसी का तो दुष्परिणाम था श्रीपाल की पर्याय में वह कुष्ट रोगी हुआ और ताली बजाने वाले 700 सैनिक भी कुष्ट रोगी हुये। वही श्री कंठ राजा जिसने मुनिमहाराज को धक्का देकर गड्ढे में गिराया था तो उसे भी समुद्र में गिराया गया था। पुनः मुनिराज को गड्ढे से निकालकर क्षमा माँगी थी, प्रायश्चित भी लिया था, तो उसे भी समुद्र से निकाल लिया गया। उसने मुनिमहाराज से कह दिया था कि ये तो भांड जैसे लगते हैं तो वह भी उस अवस्था को प्राप्त हुआ। राजकुमार कामदेव होते हुये भी उसका सभा में तिरस्कार हुआ, भांडों ने आकर कहा ये तो हमारे परिवार का है।

महानुभाव! भीष्म पितामह के बारे में वैदिक परम्परा कहती है जब वे शर शैय्या पर लेटे थे तब उन्होंने श्री कृष्ण से पूछा कि मुझे

शर शैय्या क्यों प्राप्त हुयी मुझे अपने 100 भवों का याद है मैंने कोई ऐसा कृत्य नहीं किया कि छः महीने तक मुझे शरशैय्या पर लेटना पड़े। श्री कृष्ण ने कहा-तुमने ठीक कहा किन्तु तुम्हें याद नहीं है 101 वे भव में भी तुम राजा थे यौवन अवस्था से युक्त थे, घोड़े पर सवार होकर जा रहे थे, तुम्हारे मार्ग में एक काला नाग आ गया तुमने उस काले नाग को तीर से उठाकर के फेंक दिया और अपने घोड़े को दौड़ाते हुए चले गए। लौटकर जब आप उसी रास्ते से आये तो आप देखते हैं कि वह नाग जो आपने उछाल दिया था, झाड़ी पर पड़ा है, काँटों के बीच में पड़ा है उसमें छेद हो गये, खून बह रहा है, तुम्हारे मन में करुणा जागी तुमने नाग वहाँ से निकाला वह नाग संतोष को प्राप्त हुआ और संतोष के साथ उसने प्राण त्याग दिये। उसका परिणाम आज तुम्हें यहाँ भोगने के लिये मिल रहा है।

वैदिक परम्परा कहती है कि महाराज दशरथ युवावस्था में जब शिकार करने के लिये गये थे तब रात्रि के अंतिम प्रहर में यह जानकर की कोई जंगली जानवर पानी पीने के लिये आया है उन्होंने तीर छोड़ दिया। किन्तु वह तीर श्रवण कुमार के लगा। यौवन के नशे में आकर वह तीर छोड़ तो दिया था किन्तु उसका परिणाम कि श्रवणकुमार के वियोग में उसके माता-पिता के प्राण निकले थे, उन्होंने राजा दशरथ को अभिशाप दिया कि जिस तरह हम अपने पुत्र के वियोग में मर रहे हैं तुम भी वैसे ही मरोगे और दशरथ के प्राण अपने पुत्र राम के वियोग में निकले। किंतु जैन परम्परा कहती है कि ऐसे प्राण नहीं निकले।

महानुभाव ! ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं कि यौवन अवस्था में आकर के किसने क्या-क्या नहीं किया। यौवन के नशे में आकर के एक छोटी सी भूल की, वह छोटी सी भूल जीवन भर के लिये शूल बन गयी। जवानी के जोश में आकर के ही तो द्रोपदी ने कह

दिया था दुर्योधन से कि अंधों के तो अंधे ही होते हैं। उसी का दुष्परिणाम निकला कि महाभारत का युद्ध हुआ। जवानी का ही नशा था कि वह सिंहोदर वज्रकर्ण को नष्ट करना चाहता था किंतु वज्रकर्ण की सहायता लक्ष्मण ने की तो वह स्वयं नष्ट हो गया। जिसने भी जवानी के नशे में आकर के कोई भी कृत्य किया है चाहे रावण ने जवानी के जोश में आकर के और सत्ता के मद में मदहोश होकर के किसी परअंगना का अपहरण किया क्या परिणाम निकला लंका सहित पहुँच गया रसातल में।

जवानी के जोश का परिणाम वह चारुदत्त जिसने वेश्या के यहाँ रहकर 32 करोड़ दीनार गँवा दी। जवानी के जोश का परिणाम वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती शिकार करने का अधीन हो गया, परिणाम निकला नरक की व्यवस्था। जवानी के जोश में सुभौम चक्रवर्ती ने अपमान कर दिया णमोकार महामंत्र का, अपमान करने का ये परिणाम निकला स्वयं नरक की यातना भोगनी पड़ रही है। जवानी के जोश का ही परिणाम था राजा श्रेणिक ने यशोधर मुनिमहाराज के गले में मृतक सर्प डाल दिया था और उस जोश का परिणाम ये निकला कि उन्होंने नरकायु का बंध कर लिया। उस आयु के बंध को भगवान् महावीर स्वामी की भक्ति करके भी काट नहीं सका। एक बार किसी आयु का बंध हो जाये तो वह कटता नहीं है कम ज्यादा तो हो सकता है किन्तु मूलतः नष्ट नहीं होता।

महानुभाव ! ऐसे एक नहीं अनेक कथानक आप जानते हैं। एक वृद्ध पुरुष जिसकी दाढ़ी सफेद हो गयी, बाल सफेद हो गये, आँखें धस गयीं, जेल में कारागार के बीच पड़ा हुआ है, आँखों से आँसू बह रहे हैं। मुलाकात हुयी उससे पूछा-क्या हुआ? बोला कुछ नहीं एक छोटी सी भूल का परिणाम जवानी के जोश में आकर के मैं सहन नहीं कर पाया, किसी ने मुझे अपशब्द कह दिया और मैंने तुरन्त ही हाथ

में लगी लाठी का वार कर दिया। लाठी सिर में लगते ही वह वहीं पर ढेर हो गया। 10-20 गवाह थे पुलिस आयी और तुरंत पकड़ कर ले गयी। केस चला मुझे आजीवन कारावास की सजा मिल गयी। वह जोश-जोश में होश खो बैठा।

एक बार एक सामान्य से लड़के ने एक नगर के 'दादा' जो युवा था उससे कह दिया तू दादा बन गया है, सातवें आसमान में झूलता है, मुझसे पंगा नहीं लेना नहीं तो जिंदगी भर जेल में सड़ना पडेगा। उस दादा ने कहा ये पिन्ना सा व्यक्ति मेरा क्या कर लेगा। वह लड़का जानबूझ कर उससे भिड़ गया था, उस दादा ने उस लड़के के दो-चार तमाचे लगाये, जब वह तमाचे लगाने लगा तो उस लड़के ने हाथ जोड़ लिये किंतु वह माना नहीं, उसने उसके सीने पर पिस्तौल रख दी, वह दौड़ा और कुयें के पाट पर पहुँच गया। दादा भी वहाँ पहुँचा, धक्का लगा, वह लडका कुयें में गिरा यद्यपि वह तैराक था किंतु पत्थर से सिर फटा और प्राणान्त हो गया।

वह सामान्य सा बालक सोच रहा था मैं तैराक हूँ मरूँगा नहीं, जानबूझ कर उसने उस दादा को जेल में डालने की साजिश रची थी किंतु उसे ये नहीं मालूम था कि मेरा सिर फूट जायेगा। वह और उसके दो मित्र ने योजना बनायी थी कि तुम जानबूझ कर उससे अपशब्द कहना जिससे वह भड़क जायेगा। उसके पास बन्दूक सदैव रहती ही है। जैसे ही बन्दूक निकालेगा तुम्हारे ऊपर रखेगा दूर से खड़े हम दोनों उसका फोटो खींच लेंगे, वीडियो बना कर प्रूफ तैयार कर लेंगे कि ये तुम्हें मार रहा था, तुम भाग कर कुँए के पास जाना चूँकि वह अच्छा तैराक था, सोचा कि कुँए में गिर जाऊँगा तो बाहर निकल आऊँगा किंतु ये नहीं पता था पत्थर से सिर फूट जायेगा और वहीं प्राणान्त हो जायेगा। एक मित्र तो नहीं रहा किन्तु योजनानुसार दूसरे मित्र ने फोटो व वीडियो कोर्ट में दिखा दी उस दादा की दादागिरी का परिणाम वह जेल में सड़ रहा था।

महानुभाव ! जवानी का जोश बहुत महँगा पड़ता है, यदि जवानी में होश न हो तो बेकार है जोश। औषधि तुम्हारे पास कितनी भी अच्छी हो किंतु औषधि का सेवन करने की विधि नहीं जानते तो जो औषधि रोग को हरण करने वाली होती है वही प्राणों का हरण करने वाली भी हो सकती है। इसीलिये जोश को ठंडा होने दो। कोई बात नहीं कछुये की चाल चलो, खरगोश की चाल चलने की आवश्यकता नहीं है। यदि आपको मार्ग का ज्ञान नहीं है तो खरगोश की दौड़ मत दौड़ो यदि मार्ग में कोई टूटा पुल मिल गया, स्पीड पर ब्रेक न लगा सके तो अध:पतन सुनिश्चित है।

कछुये की चाल चलोगे तो कम से कम अपनी स्पीड पर ब्रेक तो लगा लोगे। आप देखते हैं आज युवा लड़के जवानी के जोश में गाड़ी 170-180 की स्पीड में चलाते हैं, हो सकता है आपकी गाड़ी का बीमा हो किन्तु तुम्हारा बीमा नहीं है। यदि गाड़ी टूट गयी तो मिल जायेगी किंतु तुम्हारा जीवन दुबारा न मिलेगा। आपने किसी वृद्ध ड्राइवर को गाड़ी तेज रफ्तार में भगाते नहीं देखा होगा और युवा को साइकिल भी मिल जाये तो ऐसे उड़ेगा जैसे हैलीकॉप्टर में बैठा हो। उसके अंदर जोश होता है वह ये नहीं सोचता कि मैं 5 मिनट देरी से पहुँच जाऊँगा तो ठीक रहेगा, जब कि ये लिखा रहता है 'धीरे चलिये, सुरक्षित पहुँचिये' किंतु ये बातें उसके जीवन में कोई प्रभाव नहीं दिखा पातीं। तो महानुभाव ! मात्र जोश का परिणाम अच्छा नहीं होता।

दूसरी ओर जिसने यौवन अवस्था को अच्छी तरह से सफल और सार्थक किया है, उसने अपने यौवन को वरदान बनाकर के अनागत में उसके फल को प्राप्त किया है। जिसने यौवन में मस्ती की है, अनीति व अत्याचार का सहारा लिया है वह व्यक्ति वृद्ध अवस्था में रोने को मजबूर हुआ है। जिसने यौवन अवस्था में अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया है, वृद्ध अवस्था में उसे अपने ऊपर पश्चाताप हुआ

है। हाय रे ! मैंने यौवन अवस्था में क्यों दुष्परिणाम, दुर्व्यवहार किया जिससे आज मैं मजबूर हो गया इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये।

एक व्यक्ति विधान सभा के इलेक्शन में खड़ा हुआ, उसे बहुत अच्छी उम्मीद थी कि मैं जीत जाऊँगा, खूब पैसा भी खर्च किया और सबके घर गया, उम्र में अपनों से बड़ों के पैर भी छूये। प्रार्थना करके आया आप अबकी बार मुझे जिता दो मैं समाज की सेवा करना चाहता हूँ और जब रिजल्ट आया-पूछा मित्रों ने क्या हुआ-वह बोला मैं हार गया। पूछा क्यों? तुमने तो बहुत मेहनत की। वह बोला-मैं हारा जवानी के कारण। क्या मतलब ? तुम तो वृद्ध हो 70 साल को पार कर रहे हो जवानी कैसे? वह बोला जवानी में मुझसे कुछ कृत्य ऐसे हो गये थे जिसका दुष्परिणाम मैं आज तक भोग रहा हूँ।

जवानी में मैंने अत्याचार किया था, अन्याय किया था, किंतु लोग गाँठ बांधकर बैठे हैं वे बैर भुलाते नहीं। मैंने 100 बार भी पैर पड़े उन्होंने हाँ तो किया पर वोट मुझे नहीं दिया। महानुभाव ! जवानी ऐसी अभिशाप रूप हो जाती है कि कई भवों तक जवानी का वह ग्रहण लग जाता है। कितने ही भवों को वह खण्डित करता है सदोष बना देता है। जोश जीवन को सदोषमय बनाने वाला है दोष मय बनाने वाला है और होश जीवन को गुणों का कोष बनाने वाला है। जिसने अपने यौवन को तपस्या में लीन कर दिया, समझो उसका यौवन सफल और सार्थक हो गया।

तप करते यौवन गयो, द्रव्य गयो मुनिदान।
प्राण गये संन्यास में, तीनों गये न जान॥

यदि तपस्या करते हुये उसने यौवन अवस्था को व्यतीत किया है, जिसका द्रव्य मुनि आदि को दान देने में खर्च हो गया है और जिसके प्राण समाधिमरण पूर्वक निकल गये हैं समझो वे गये नहीं सफल और सार्थक हो गये।

भरतचक्रवर्ती ने अपनी यौवन अवस्था तप के साथ व्यतीत की, इसीलिये भरतचक्रवर्ती दीक्षा लेने के बाद अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान को प्राप्त हो गये। राजकुमार मल्लिनाथ ने बाल्यावस्था में ही दीक्षा ले ली, दीक्षा के छः दिन बाद ही केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। अरिष्ट नेमिनाथ भगवान् ने भी अपने आप पर संयम रखा बाल ब्रह्मचारी रहे, जिन्होंने भोगों का त्याग करके, पशुओं पर करुणा करके, जोश में आकर के न तो पशुओं को मारा और न अन्य कोई दुष्कृत्य किया, अपितु स्वयं विरक्त होकर के दीक्षा ले ली। अपनी इन्द्रियों को कसा, अपनी आत्मा में बसे, उसका परिणाम ये हुआ 56 दिन में केवली बन गये। वर्धमान महावीर जातिस्मरण होने से वैरागी हो गये 30 साल में दीक्षा लेकर के 12 साल तक जवानी का घोर तप किया परिणाम ये निकला 42 साल में केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया।

जम्बू कुमार जो कि 'कम्मेसूरा' महायोद्धा, वे महापुरुष मगध देश की राजगृही में जन्मे राजा श्रेणिक के संकेतानुसार युद्ध करने के लिये तमिल गये। वहाँ आठ हजार सैनिकों सहित चन्द्रशेखर राजा के साथ युद्ध किया, तलवार की दम पर उन्हें हटाया, रक्त की नदी बहा दी और वहाँ की कन्या को राजा श्रेणिक के लिये प्रदान कराया। लौटते समय सुधर्माचार्य केवली मिले, वैराग्य को प्राप्त हो गये पुनः घर आकर के देखा, घर की सजावट देखकर माता पिता से पूछा–ये सब क्या है? कहा–बेटा तेरी शादी होने वाली है। चार कन्याओं से संबंध पक्के कर दिये हैं। जम्बू कुमार ने कहा–मैं शादी नहीं करूँगा, मैं दीक्षा लूँगा। पिता जी ने कहा मैं वचन दे चुका हूँ।

जम्बू कुमार ने कहा ठीक है मैं आपके वचन रखने के लिए विवाह तो कर लूँगा किंतु कन्याओं के पिता से कह देना मैं शादी के दूसरे दिन दीक्षा ले लूँगा। कन्याओं ने कहा–तभी तक दीक्षा की कह रहे हैं जब तक किसी कुमारी अँगना के चक्कर में नहीं पड़े, अभी

किसी कन्या की आँख का काजल नहीं देखा इसीलिये वैराग्य की बात कर रहे हैं, एक बार निगाह से निगाह मिली तो वैराग्य सब धुल जायेगा और जम्बूकुमार के संकेत को कन्याओं ने स्वीकार कर लिया कि जब हमारे यौवन को देखेंगे तो वैराग्य बह जायेगा जैसे थोड़ी सी कीचड़ मूसलाधार वर्षा से बह जाती है। जम्बूकुमार की शादी हो गयी। जम्बूकुमार अपने संकल्प में दृढ़ थे, शादी के दूसरे दिन दीक्षा ले ली और वे जम्बूकुमार कर्मों को नष्ट करके केवली बन गये।

महानुभाव ! जवानी का जोश जब रोष के साथ रहता है तब तो नि:संदेह सत्यानाश करने वाला होता है और जवानी के जोश में यदि कहीं होश आ जाये तो ये आत्मा का विकास करने वाला होता है। जिसने जवानी में आकर के तपस्या की, उपवास किये, पक्ष, मास, द्विमास, त्रिमास, चतुर्मास, षट्मास तक तपस्या की और तप करके जवानी के जोश को ठंडा कर दिया और इन्द्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि पद को प्राप्त किया। जवानी के जोश में सिंह निष्क्रीड़ित व्रत किये, चाहे सोलहकारण व्रत, दशलक्षण व्रत, सिद्धचक्रादिक, अष्टाह्निक व्रत किये उसका परिणाम ये हुआ व्रतों के प्रभाव से अगले भव में मोक्ष प्राप्त कर लिया।

परिणाम जवानी का बड़ा खतरनाक होता है। बड़ा दर्दनाक होता है किंतु कब? जब जवानी के साथ रोष हो तब, मदहोश हो तब। सत्ता को पाकर मूर्च्छित हो जाये, जवानी को पाकर उसका विवेक नष्ट हो जाये तब वह जवानी का जोश नि:संदेह दुर्गति की यात्रा कराने वाला होता है। किंतु जवानी के जोश के साथ विजय और विजया को देखो-जवानी का जोश तो था किंतु शीलव्रत का पालन किया, देव अवस्था को प्राप्त किया। वह सुदर्शन सेठ जिस पर उपसर्ग भी आया किंतु डिगे नहीं, दीक्षा लेकर तपस्या की ओर मोक्ष को प्राप्त कर लिया। उन वारिषेण मुनिराज को देखो-उपसर्ग भी आया नियम ले

लिया कि यदि उपसर्ग से मुक्ति मिलेगी तो पाणिपात्र में ही आहार करूँगा, वे वारिषेण स्वामी अपने कल्याण को प्राप्त हुये।

यह था परिणाम जवानी के जोश का। जब जोश आता है तब व्यक्ति को ख्याल नहीं रहता, वह क्रोध में आ करके अपने पूज्य पुरुषों के प्रति क्या शब्द बोल रहा है। जोश में आकर उसे याद नहीं रहता कि वह कौन सी क्रिया कर रहा है-हिंसा की या अहिंसा की। वह वासना का शिकार होकर भूल जाता है कि वह सुकृत्य कर रहा है या कुकृत्य कर रहा है। वह नहीं जान पाता कि ये मेरे लिये दु:खदायी, कष्टदायी हो जायेगा। वह यह भूल जाता है कि ये सदा नहीं रहेगा। सबका समय बदलता है। आज जिसका पाप का उदय है कल उसका पुण्य का उदय भी आ सकता है और यदि आज पुण्य का उदय है तो कल पाप का उदय भी आ सकता है। आज तू जिसे मार रहा है हो सकता है कल तू उसके हाथों से मारा जाये। दुनिया में बदला किसी का छूटता नहीं। यदि मनसा, वाचा, कर्मणा पाप-पुण्य कुछ भी किया हो उसका फल हमें ही प्राप्त होगा।

महानुभाव ! सप्त व्यसन तो सातों नरकों के द्वार हैं। चाहे वह शराब पीने वाला कोई यदुवंशी राजकुमार रहा हो, माँस खाने वाला राजा बक रहा हो, परस्त्री गामी रावण हो, चाहे और भी कोई दुर्व्यसनी रहा वह नरक को प्राप्त हुआ। उन जवानी के पापों को काटने के लिये कई जन्म भी थोड़े पड़ जाते हैं। जवानी का पाप इतना बड़ा हो सकता है 70 कोड़ा-कोड़ी सागर तक संसार में परिभ्रमण करा सकता है।

एक चक्रवर्ती राजा रथ में सवार होकर जाता है, वहाँ से हाथी पर बैठ कर जा रहा है, फिर वह घोड़े पर बैठा, पुन: पालकी में बैठा एक कदम भी उसने जमीन पर नहीं रखा पुन: सिंहासन पर बैठा वहाँ उसकी सेवा चल रही है, इत्र का छिड़काव हो रहा है, चंवर ढुराये जा

रहे हैं, पंखे झल रहे हैं, सेवक पैर दबा रहे हैं-एक सखी दूसरी सखी से पूछती है-

रथ गजा सु चढकै चलो, चलो पालकी माँहि,
कब के थाके हैं सखी, आज दबावैं पाँव॥

ये राजा पहले रथ में बैठा फिर हाथी, घोड़े पर बैठा, पुनः पालकी में बैठकर के सिंहासन पर बैठ गया। ये तो एक कदम भी चला ही नहीं फिर ये कहाँ से थक गया जो इसके पैर दबाये जा रहे हैं। तब दूसरी सखी जो आगम की जानकार थी वह कहती है-

भू सोयो, उपवास करे, तपो धूप और छाँव।
अक्ष रोक पैदल चलो, अबे दबावैं पाँव॥

सखी ये पूर्व जन्म में जब मुनिमहाराज थे, देव इन्द्र बनने के पहले, तब इन्होंने जमीन पर शयन किया, उपवास, नीरस, अंतराय को स्वीकार किया उस समय कोई देखने वाला भी नहीं था, कंठ सूख रहा था, उस समय इन्होंने गर्मी में धूप में बैठकर तपस्या की, सर्दी में शीतल स्थान पर बैठकर तपस्या की, एक दिन दो दिन नहीं, कई माह तक खड़े होकर तपस्या की। इतना ही नहीं इन्द्रियों का निरोध किया, पैदल विहार किया भूमण्डल पर, पैदल विहार करने के उपरांत भी इसने उस समय भी किसी से पैर नहीं दबवाये थे वैय्यावृत्ति नहीं करवायी थी, अपना पुण्य किसी को दिया नहीं था।

'तब को थाको है सखी अबे दबावैं पाँव'

यह तब का थका है इसीलिये अब यहाँ पैर दबाये जा रहे हैं। महानुभाव ! जवानी में जिसने पुण्य किया है, ऐसे व्यक्ति की प्रौढ़ावस्था में सेवा होती है। घर के पुत्र, पुत्रवधू, मित्र आदि सभी सेवा करते हैं। जिसने जवानी में पुण्य नहीं कमाया तो उसे सेवा

मिलती नहीं। घर में रहकर मोह नहीं घट रहा वही छलकपट, मायाचारी, दुर्भावनायें, तो ये पाप की जननी हैं इन इच्छा आकांक्षाओं से पाप आता है इसीलिये व्यक्ति संसार में गृहस्थी में रहता हुआ पाप कमाता है, उसकी मृत्यु अच्छी नहीं हो पाती। इसीलिये शास्त्रों में तो लिखा है-**राजेश्वरी सो नरकेश्वरी।** राजअवस्था में जो मृत्यु को प्राप्त होता है वह नरक अवस्था को प्राप्त होता है और **तपेश्वरी सो शिवेश्वरी** जो तप करके मृत्यु को प्राप्त करता है वह स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त करता है।

महानुभाव ! इसीलिये जब भी आँखें खुल जायें, अपना कल्याण करने के लिये निकल आओ। जवानी के जोश में एक बार भी ठोकर लगकर आँखें खुलीं तो जाग जाओ, मैंने इतने पाप कमा लिये, इन पापों को मुझे ही तो भोगना पड़ेगा और यदि इन पापों को तपस्या करके नहीं काटा तो नरक में मेरे तिल-तिल बराबर टुकड़े कर दिये जायेंगे, घानी में पेल दिया जायेगा, इससे अच्छा है यहाँ तपस्या करके पापों को नष्ट कर दिया जाये। जब भी जग जाये, जरूरी नहीं व्यक्ति 8 वर्ष में ही दीक्षा ले, 18 वर्ष में भी दीक्षा ले सकता है 28-38 में भी कोई रोक नहीं है। 48-58 में भी होती देखी है और दीक्षा 68, 78, 88, 98 साल की उम्र में भी हो सकती है। यदि भावना है पुण्य योग है तो दीक्षा आपको 108-120 साल में भी मिल सकती है।

महानुभाव ! किन्तु पुण्य किया हो तब। इसलिये बंधुओं जब आँखें खुल जायें तभी आत्म कल्याण के लिये आगे बढ़ जाना चाहिये। बहाने बहुत हैं, बहाने मत खोजो। मोह को तोड़ने वाले के सामने कोई बहाना नहीं होता।

प्रद्युम्न कुमार दीक्षा लेने के लिये तैयार हुये, पिता से आज्ञा लेकर के आये पत्नी से कहने लगे मुझे वैराग्य हो गया है, मैं दीक्षा

के लिये जा रहा हूँ, माँ की आज्ञा और ले आऊँ। पत्नी बोली-आपको कोई वैराग्य नहीं हुआ, शांति से बैठो जब वैराग्य होगा तब किसी से पूछना नहीं पडेगा और उनकी पत्नी उनसे पहले चली गयी दीक्षा लेने के लिये। महानुभाव ! बहाने बहुत होते हैं यहाँ पूछना-वहाँ पूछना, जब दीक्षा लेनी है तो उपसर्ग सहन करने के लिये तैयार हो जाओ, कौन क्या कहेगा, जिसे जो कहना है कहे मैं शांति से अपने परिणामों को संभालूँगा, अपना कल्याण करूँगा। दुनियाँ तो कहे बिना मानेगी नहीं चाहे कितना अच्छा करो या बुरा करो। आप जानते ही हो वह बात।

एक बार पिता पुत्र जा रहे थे। पिता ने पुत्र को घोड़े पर बिठा दिया। किसी नगर में पहुँचे लोग देखकर हँसने लगे देखो भईया ! क्या घोर कलयुग आ गया-बेटा तो घोड़े पर बैठा है बेचारे बाप को पैदल चला रहा है। बेटे को बहुत शर्म महसूस हुयी, बोला-पिताजी मुझे क्षमा करो मुझसे गलती हुयी, घोड़े पर आप बैठो मैं पैदल चलता हूँ। अगले गाँव में पहुँचे तो पुनः लोग कहने लगे-धिक्कार है, अनर्थ-अनर्थ। बाप को देखो शर्म भी नहीं आती खुद घोड़े पर बैठकर चल रहा है बेचारा छोटा सा बेटा पैदल चल रहा है। पिताजी ने कहा-देखा बेटा मैंने कहा था ये दुनिया है न चैन से जीने देगी न मरने देगी। अब क्या करें? अब वे दोनों पैदल चलने लगे। तीसरे गाँव में पहुँचे-हे भगवान्! संसार में मूर्खों की कमी नहीं है एक खोजो चार मिलेंगे, चार खोजो हजार मिलेंगे, हजार खोजो तो बेशुमार मिलेंगे। देखो तो-घोड़ा साथ में है फिर भी पैदल चल रहे हैं।

बेटे ने कहा-पिताजी अब क्या करें-उन्होंने सोचा घोड़ा तो है ही दोनों ही उस पर बैठकर चलते हैं। अब अगले गाँव में पहुँचे, लोग फिर ताली बजाने लगे-हे भगवान् ! दया का तो कहीं नाम-निशान ही दिखायी नहीं देता, कितनी क्रूरता है, ये कितने निर्दयी हैं उस मरियल

से घोड़े पर दोनों लदकर बैठ गये। बेचारे उतर गये, बड़ा मुश्किल क्या करें। बेटा बोला पिताजी एक काम करो घोड़े को अपने कंधे पर रख लेते हैं और कंधे पर घोड़े को रखकर चले। गाँव वाले कहने लगे-देखो-दो गधे एक घोड़े को लेकर जा रहे हैं। बड़ा मुश्किल हुआ, आगे नदी का पुल मिला घोड़े को वहाँ छोड़ दिया कहा-भाई तेरा-मेरा साथ बस यहीं तक है।

महानुभाव ! ये तो दुनिया है यह न तो चैन से तुम्हें बैठने देगी, न जीने देगी, न सोने देगी, न शांति से मरने देगी। यदि शांति से समाधि मरण भी करना चाहोगे तो पुनः दुनियाँ तुम्हें बेचैन करेगी, निमित्त उपस्थित करेगी जिससे तुम्हारी बेचैनी बढ़े और शांति भंग हो। किंतु तुम्हें यदि अपनी आत्मा का होश है, बोध है, आत्मकल्याण की भावना है, तो जब तक तुम्हारी आँखें बंद नहीं हुयी हैं। तब तक आँखें खुले-खुले अपनी आत्मा का अवलोकन कर लो। जब तक किसी की अर्थी जले, अस्थियों में आग लगे तब तक उससे पहले आत्मा के प्रदेशों में आस्था जगा करके अपनी चेतना में ज्ञान, संयम का दीपक जला करके आत्मा के प्रदेशों को आलोकित कर लो। तब तक अपनी आत्मा का कल्याण कर लेना चाहिये। आप और हम समझते हैं ये मनुष्य भव बहुत दुर्लभ है एक बार हाथ से निकल गया तो वैसे ही समझो कि चिंतामणी रत्न हाथ में आया और कौवे को उड़ाने के लिये हमने फेंक दिया।

कौवे तो काँव-काँव कर रहे हैं वे कौवे नहीं हैं विद्याधर और देवता हैं, जो तुम्हारे हाथ से चिंतामणी रत्न को छीनना चाहते हैं। वे काँव-काँव इसीलिये कर रहे हैं कि तुम अपने रत्न को उन पर फेंक दो और वे तुम्हारे रत्न को लेकर चलते बनें। ये भव ऐसे व्यर्थ नहीं करना है, सफल और सार्थक करना है। जवानी के जोश में आकर के होश को नहीं खोना है, पापों का त्याग कर पुण्य का संचय करना है।

जिससे वह पुण्य हमें हमारे आत्म कोष तक पहुँचाये, हमारे नर भव को सफल बनाये इन्हीं शुभ भावनाओं के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।''

प्रवचन 8

पुकार नहीं मुस्कार

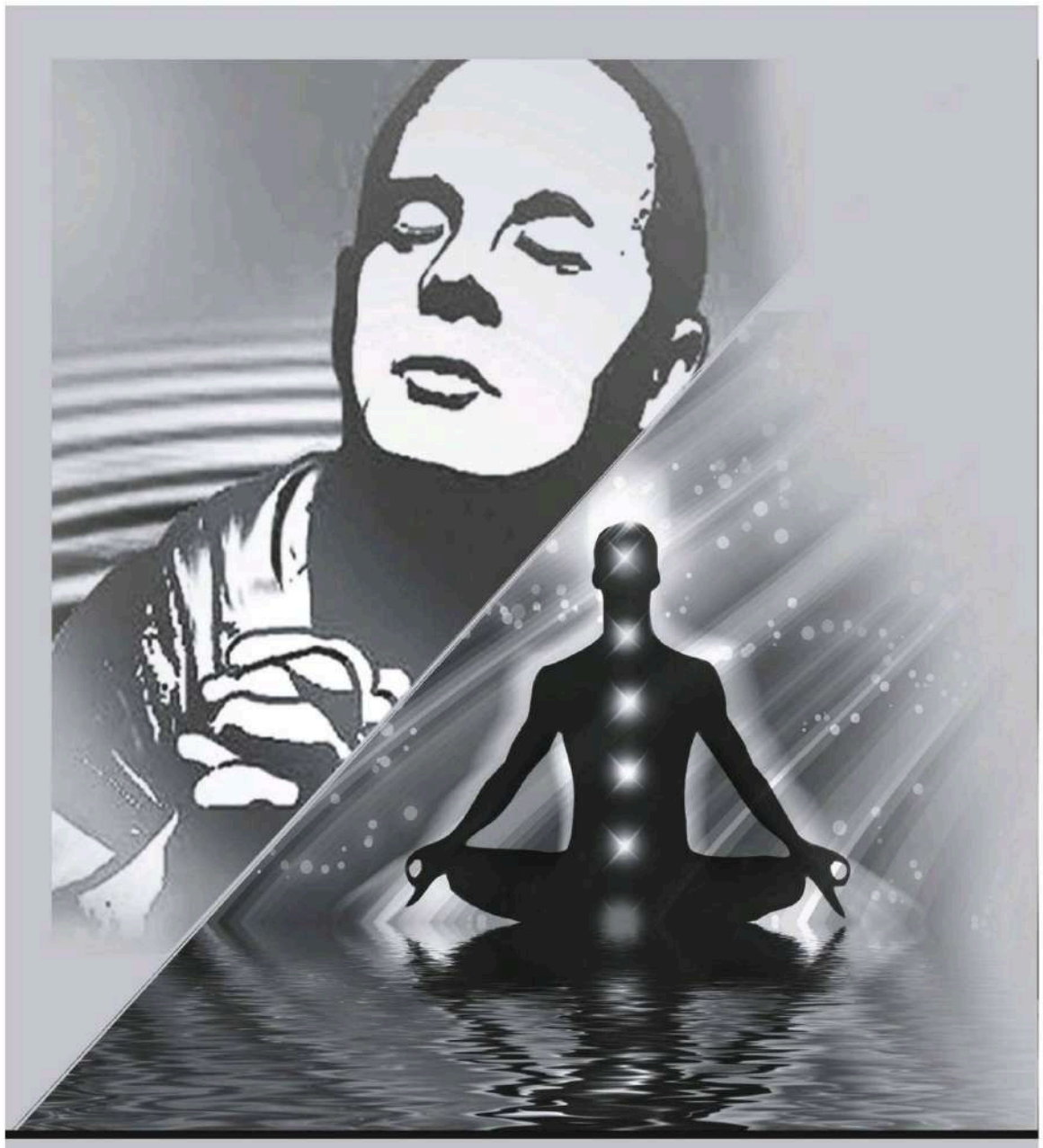

अपने दर को छोड़कर, किस दर जाऊँ मैं,
जब मै ही अपनी ना सुनूँ,
तो किसे सुनाऊँ मैं।

पुकार नही पुचकार

आज हम थोड़ी सी चर्चा करेंगे, इस विषय को लेकर 'पुकार नहीं पुचकार'। पुकार और पुचकार इन शब्दों के मायने हैं क्या? इन दो शब्दों में ऐसा क्या रहस्य भरा है कि जिसे प्रवचन का विषय बनाया जाये, ये तो सामान्य से शब्द हैं। कई बार सामान्य में भी हमें विशेष दिखाई दे जाता है और कई बार विशेष में भी विशेष के दर्शन नहीं होते। यद्यपि ये बात सत्य है कि सामान्य के बिना कोई विशेष नहीं होता और विशेष के बिना कोई सामान्य नहीं होता।

महानुभाव ! जीवन में तीन घटक आवश्यक हैं-तीन के बिना वह कार्य पूरा नहीं होता। कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो दो के माध्यम से पूर्ण होते दिखाई देते हैं और उसमें साक्षात् उपादान और प्रेरक निमित्त को मान लिया जाता है, उदासीन निमित्तों की गिनती नहीं की जाती। किंतु काम तीन के माध्यम से होता है। एक होता है-'उपादान' जिसमें नियम से काम होता है। एक होता है 'प्रेरक निमित्त' जो उपादान को क्रियाशील करने में समर्थ होता है और तीसरा होता है 'उदासीन निमित्त' जिसकी उपस्थिति के बिना काम नहीं हो सकता। एक उदाहरण से देखें-

कोई व्यक्ति पुस्तक पढ़ना चाहता है तो पहली बात तो पुस्तक होना चाहिये, दूसरी बात पुस्तक पढ़ने वाला व्यक्ति होना चाहिये, जो पुस्तक पढ़ना जानता हो, जिसके नेत्रों में ज्योति हो, और प्रकाश हो ये अनिवार्य शर्त है। आपकी दृष्टि में इतना पर्याप्त है किंतु इसके अलावा भी बहुत कुछ चाहिये। वह है-पुस्तक व पुस्तक पढ़ने वाला कहाँ पर स्थिर है वह भूमिका भी चाहिये, पुस्तक पढ़ने वाले के लिये पुस्तक के साथ-साथ समय भी चाहिये, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश, काल इत्यादि सब उस समय उदासीन निमित्त हैं किंतु हैं अवश्य। उस

तीसरे उदासीन निमित्त की चर्चा हम कर नहीं पाते। जैसे 'कलश' बनाना है तो कलश के लिये ऐसी मिट्टी चाहिये जिसका कलश बन सके, कुम्भकार चाहिये, चाक चाहिये किन्तु इसके साथ-साथ समय भी चाहिये, स्थान भी चाहिये और कुम्भकार की निरोगी अवस्था चाहिये, मौसम की अनुकूलता चाहिये। ये सारे भी निमित्त होते हैं। भोजन बनाने के लिये भी केवल महिला और सामग्री की आवश्यकता नहीं होती, इनके साथ-साथ बर्तन भी चाहिये। ऐसे ही जीवन में तीन घटक हैं। इन तीन के बिना आत्मा का कल्याण होता नहीं। तीनों ही आवश्यक हैं जिसे जैन सिद्धान्त की भाषा में कहें-सम्यक्दर्शन-सम्यक्ज्ञान-सम्यक्चारित्र।

वैदिक परम्परा की भाषा में कहें-श्रद्धा, विवेक और क्रिया। यदि अन्य किसी की भाषा में कहें-भक्ति, प्रेम और परोपकार। सबकी भाषा अलग-अगल हो सकती है किन्तु घटक तीन होते हैं वे तीन घटक हैं-धर्म, दर्शन और अध्यात्म।

धर्म-'धर्म क्या है'-धर्म वह शक्ति, वह विधि, वह क्रिया है जिसके माध्यम से प्राणी के जीवन में विद्यमान दु:खों का नाश होता है। धर्म की परिभाषा आ. समन्तभद्र स्वामी ने दी-

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसार दु:खतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे॥

'यो धरति उत्तमे सुखे'-जो उत्तम सुख में जीव को पहुँचाता है, जो सभी कर्मों का नाश करने वाला है, वह सच्चा धर्म है। और धर्म का आशय है-बाह्य आचरण, सदाचरण, संयम। जो बाह्य में दिखाई दे रहा है वह धर्म है।

'चारित्तं खलु धम्मो'-चारित्र ही निश्चय से धर्म है। वही देखने में आता है। अच्छी क्रिया करने से व्यक्ति अपराधी नहीं बनता, बुरा कार्य करने से गुनाहगार बनता है अच्छा कार्य करने से सम्मान प्राप्त

होता है। अच्छी क्रिया करने से शांति मिलती है आनंद आता है, बुरी क्रिया करने से संक्लेशता बनती है दु:ख होता है, आर्त्त ध्यान बनता है। तो धर्म है-''प्राणी का बाह्य सदाचरण''। धर्म बाह्य क्रिया है धर्म के बिना सुख का मार्ग प्रारंभ नहीं होता, कल्याण नहीं होता किंतु अकेला वह धर्म भी कार्यकारी नहीं है जब तक उसके साथ दर्शन न हो।

दर्शन-दर्शन का आशय है-अंतरंग की आँख से देखना, किंतु जहाँ देखना होता है वहाँ जानना भी होता है, दर्शन के साथ विचार भी होता है। दर्शन एक दृष्टिकोण है दर्शन एक विचार या प्रणाली है। दूसरे शब्दों में कहें तो दर्शन का आशय है-आस्था और ज्ञान, विवेक बुद्धि से की गयी क्रिया। बाह्य आचरण को धर्म की श्रेणी में ले लिया और श्रद्धा व ज्ञान को दर्शन में ले लिया। जैन दर्शन में ऐसा कहा है यानि जैन वाङमय में ऐसा कहा है या जैन की दृष्टि ऐसी है, जैन का आचरण ऐसा है अर्थात् जैन धर्म ऐसा है। जैन धर्म में बताया है यह खाओ यह मत खाओ, ऐसा काम करो, ऐसा काम मत करो। अहिंसा का पालन करो हिंसा को छोड़ो। ''इदं कार्यं विधेयं, इदं कार्यं त्याज्यं'' ये कार्य करने के योग्य है यह कार्य छोड़ने के योग्य है, यह कहलाता है धर्म। मंदिर जाओ गलत स्थान पर मत जाओ, पूजा-पाठ करो-लड़ाई झगड़ा मत करो, विद्वेष, निंदा मत करो यह कहलाता है धर्म। धर्म के मायने हैं आचरण-क्रिया। कौन सी क्रिया करनी चाहिये कौन सी नहीं तो बताते हैं-

''असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं''

अशुभ से निवृत्ति शुभ में प्रवृत्ति ही चारित्र है वही धर्म है। जितनी अशुभ क्रियायें छोड़ते जायेंगे उतने ही आप धर्म के क्षेत्र में बढ़ते जायेंगे किन्तु दर्शन कहता है-

केवल बाह्य क्रियाओं से कल्याण नहीं होगा, अंतरंग की दृष्टि भी आवश्यक है, आत्म कल्याण की तीव्र पिपासा हो, निष्ठा हो,

अंदर से पूर्ण समर्पण हो आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में यह विश्वास हो कि इसके माध्यम से मेरा कल्याण होगा। जिस आचरण पर विश्वास नहीं होता है, जिस आचरण पर अच्छी तरह से विचार नहीं होता है वह आचरण सुख-शांति देने में असमर्थ हो जाता है। जो व्यक्ति पूजा करते हुये भी पूजा पर विश्वास नहीं रखते हैं, महामंत्र का जाप करते हुये भी उस पर विश्वास नहीं करते हैं, व्रत शील उपवास का पालन करते हुये भी अंदर से विश्वास नहीं है तो उनकी वे क्रिया उन्हें अन्तरंग में शांति नहीं दे पाती। जब अंदर में विश्वास बहुत गहरा होता है, आत्मा के प्रदेशों में रुचि होती है तब वह क्रिया सुख व शांति देने वाली होती है।

पानी यूँ ही अचानक आपके हाथ में आये और आप पी लें तो हो सकता है आपको उतना आनंद नहीं आये, किंतु जब तीव्र प्यास लगी है और आपको उस समय गरुड़ गंगा का औषधि जैसा मीठा ठंडा पानी यदि मिलता है तो तृप्ति हो जाती है बहुत आनंद आता है। जो चीज साधना करने पर मिलती है तो उसकी प्राप्ति में आनंद ज्यादा आता है और अचानक हीरा हाथ में लग जाये उसका मूल्य आप जानते ही नहीं कि काँच व हीरे में क्या अंतर है तो आपको खुशी नहीं होगी। ज्यों-ज्यों हीरे के बारे में जानकारी बढ़ेगी कि ये काँच नहीं है ये तो विशेष काँच से ज्यादा महँगा है, पुनः और जानकारी बढ़ी, नहीं ये तो स्वर्ण से भी ज्यादा मँहगा है, ये तो सामान्य हीरा नहीं कोहिनूर हीरा है। ज्यों-ज्यों उसके बारे में जानकारी बढ़ती है त्यों-त्यों हीरे के प्रति रुचि, आकर्षण, राग और ग्राहक बुद्धि तीव्र हो जाती है। जब तक हीरे की जानकारी नहीं है तब तक उसे तुम समझ नहीं रहे इसीलिए हाथ में आकर भी उस हीरे का मूल्य आपकी दृष्टि में नहीं है।

इसीलिए कहा-केवल बाह्य आचरण से काम नहीं चलेगा। ये बात ठीक है, प्रकाश के लिये कमरे में बल्व लगाना जरूरी है, किन्तु

यदि लाइट नहीं है तो वह बल्व जलेगा नहीं। उसी प्रकार धर्म के साथ श्रद्धा की लाइट भी जरूरी है। नहीं आ रही तो विचार करो जनरेटर चालू करो, ज्ञान के द्वारा सोच-समझकर के लाइट को पैदा करना पड़ेगा। चिंतन क्यों? जिससे आत्मा की निष्ठा बढ़े, आत्मा की प्रतिष्ठा बढ़े, स्वभाव के प्रति प्रतीति हो जागरण हो इसीलिये तत्त्व का चिंतन किया जाता है, स्वाध्यायादि किया जाता है। तब उसे उसकी महत्ता का पता चल पाता है। तब वह बाह्यक्रिया, अंतरंग की निष्ठा और विचार का सही दिग्दर्शन कर पाता है।

अध्यात्म-जब दर्शन और धर्म दोनों मिल जाते हैं तब बन जाता है 'अध्यात्म'। जिसमें जिस समय बाह्य आचरण व अंतरंग में निष्ठा हो, उनका एक मेक हो जाना, अभेदरूप में हो जाना वह कहलाता है अध्यात्म।

'अधि आत्मने निवसति' आत्मा में निवास करना, आत्मा में आत्मा को जानना, आत्मा में आत्मा को देखना, उसी में लीन हो जाना ये अध्यात्म है। उस अध्यात्म के बिना दोनों बेकार हैं। अध्यात्म रसिक ही आनंद का अनुभव करता है, केवल धर्म का आचरण करने वाला व्यक्ति अपनी बाह्य क्रियाओं से केवल संतुष्ट होता है, दूसरे प्रशंसा करते हैं तो फूला नहीं समाता, तत्त्व चिंतन करने वाला व्यक्ति बाह्य में वैसी क्रिया कर पाये या न कर पाये उसके जीवन में प्यास होती है। किंतु वास्तव में आत्म रस पीने वाला, आत्मानुभव करने वाला तो आध्यात्मिक रसिक ही हो सकता है।

हम देख रहे हैं आज का विषय-''पुकार नहीं पुचकार'' पुकार का आशय है-बाह्य आचरण और पुचकार का आशय है अंतरंग की दृष्टि। जिसके पास अंतरंग की दृष्टि है वह आचरण को प्राप्त कर लेगा, करके ही रहेगा, किंतु अंतरंग की दृष्टि नहीं है तो बाह्य आचरण ज्यादा देर तक टिक नहीं सकेगा, नष्ट हो जायेगा। पात्र में रखा पानी तो सुरक्षित रह सकता है किंतु अँजुली में रखा पानी एक-एक बूँद

करके निकल जाता है। ऐसे ही बाह्य आचरण को यदि स्थायी बनाना है तो आचरण रूपी लोहे के टुकड़े को पकड़ने के लिये दृष्टि रूपी चुंबक अंदर से लगा दो, उसे छोड़कर के आचरण जायेगा नहीं और चुंबक चली गयी तो आचरण गिर जायेगा।

जब तत्त्व चिंतन, विचारणा शक्ति, ज्ञान होता है वह आत्मा आचरण से गिरता नहीं है और जब दृष्टि निकल जाती है, सम्यक्ज्ञान निकल जाता है तो आचरण गिरने लगता है। जैसे-रामदाने के लड्डू में चाशनी यदि कम डाली है तो वह फैल जायेगा। ईटों पर ईंट रखकर मकान बनाया है और सीमेंट नहीं लगाया तो वह दीवार गिर जायेगी उसी प्रकार अंतरंग आत्मा का सीमेंट है, दृष्टि, तत्त्व चिंतन, विचार और बाहर का आचरण ईंट पत्थर की तरह से है।

तो पुकार है-बाह्य आचरण व पुचकार है अंतरंग की दृष्टि। वह बाह्य आचरण अंतरंग की श्रद्धा के बिना टिकेगा नहीं। इसीलिये संयम की स्थिरता यदि बनती है तो वह वैराग्य से। वैराग्य के बिना संयम भंग हो जाता है, ढोंग होता है, दूसरों को रिझाने के लिये होता है किन्तु वह आत्मकल्याण करने वाला नहीं होता। पुकार का आशय है-प्रभु परमात्मा से प्रार्थना करना, अपने इष्ट, प्रभु परमात्मा, आराध्य को बुलाना। जो बुला रहा है उसकी कुछ कमजोरी है। कमजोर व्यक्ति ही बुलाता है, आवाज लगाता है और जिसके पास कुछ दम खम है उसे आवाज लगाने की आवश्यकता नहीं उसके पास तो लोगों की लाइन लगी रहती है।

एक व्यक्ति सब्जी और फल गली-गली में बेच रहा है। आवाज लगा-लगा के बेच रहा है, एक दुकानदार अभी दुकान पर नहीं आया पहले से ही लाइन लगी है खरीदने वालों की। एक व्यक्ति जो सबको बुला रहा है और एक ओर भीड़ लगी है। महावीर स्वामी के पीछे लक्ष्मी दौड़ रही थी और आज का इंसान लक्ष्मी के पीछे दौड़ रहा है। सामान्य व्यक्ति रोटी के पीछे दौड़ रहा है और एक व्यक्ति है जिसके

पीछे रोटी दौड़ रही है। जो पुकार रहा है बुला रहा है वह कहीं न कहीं से कमजोर है किंतु जिसके पास अंतरंग की पुचकार है उसे किसी को बुलाने की आवश्यकता पड़ नहीं सकती है। अंतरंग का पुण्य है तो बाह्य वैभव साथ में लेकर चलने की आवश्यकता नहीं। यदि पुण्य नहीं है तो बाह्य सामग्री कितना साथ निभायेगी आज नहीं तो कल छूट जायेगी, यदि मित्रों को बांधने की कला तुम्हारे पास नहीं है तो मित्र तुम्हारा साथ कब तक दे पायेंगे आज नहीं तो कल बिखर जायेंगे छूट जायेंगे।

यह अंदर की पकड़ जो देखने में नहीं आती वही तो सबसे महत्वपूर्ण चीज है। दृश्यमान का महत्व अदृश्य शक्ति के माध्यम से है, अदृश्य शक्ति न हो तो दृश्यमान वस्तु का कोई महत्व न रहे। हमारे शरीर में से आत्मा निकल जाये तो इस माटी के टुकड़े का कोई महत्व नहीं। यदि पुण्य तुम्हारे पास नहीं है तो पुण्य फल की प्राप्ति तुम्हें हो भले ही जाये किंतु उसे भोग नहीं सकते। पुण्य तुम्हारे पास है तो चाहे पुण्यफल रूप वस्तुयें तुम्हारे पास नहीं हों, सब प्राप्त हो जायेंगी। स्वर्ग के देवता आकर सेवा करेंगे तुम्हारी पुण्य के फल से, और यदि पुण्य नहीं है तो तुम्हारे पास तीन खण्ड का राज्य भी होगा वह भी छीन लिया जायेगा, वह राज्य तुम्हारी मौत का कारण बन सकता है, जो चक्र तुम्हारी रक्षा करने वाला था वही तुम्हारे लिये घातक हो सकता है।

महानुभाव ! पुकार का आशय है 'चिल्लाना'। हे भगवान् ! मेरी सुनो तुम तो मेरी सुनते ही नहीं हो। चिल्ला-चिल्ला कर भगवान् को बुला रहा है। खूब चिल्ला-चिल्ला कर पूजा स्तुति पढ़ रहा है। इसी पर तो कवि ने व्यंग किया-

कंकर पत्थर-जोड़कर मस्जिद लिया चिनाय।
ता पर चढकर बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥

क्या भगवान् बहरा है, अरे बाहर के भगवान् को क्यों बुलाता है अंदर के भगवान् को देख, अंदर का भगवान् न देखा, अंदर के भगवान् को न जाना, उस पर विश्वास नहीं है तो चिल्लाता रह तेरी सुनता कौन है-

तेरे दर को छोड़कर किस दर जाऊँ मैं।
सुनता मेरी कौन है किसे सुनाऊँ मैं॥

ये तो बाहर की बात है किंतु सच्चा तो ये है।

अपने दर को छोड़ कर किस दर जाऊँ मैं।
जब मैं ही अपनी ना सुनूँ तो किसे सुनाऊँ मैं॥

मुझे तो खुद की सुनना व सुनाना है। दूसरों को सुनायेंगे तो दूसरा तुम्हारा मुँह बंद कर देगा। अपनी बात सुनाने के लिये दूसरों का कान मत पकड़ो अपनी जीभ को पकड़ लो और यदि तुम्हारी बात अच्छी होगी तो लोग तुम्हारे पास सुनने के लिये आयेंगे। व्यक्ति पुकारता है कब?

दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय॥

सुख में यदि सुमिरन किया है पुण्य किया है, भक्ति की है, तो जीवन में दुःख आयेगा क्यों? अब चिल्ला रहा है जब अँगुली दब गयी। पहले मना किया तो किसी की सुनी नहीं जब फँस गया तब चिल्ला रहा है बचाओ-बचाओ।

कोई बढ़ई लकड़ी को चीर रहा था। दोपहर का समय, वह लकड़ी में छैनी फँसी छोड़ भोजन करने चला गया लकड़ी आधी चिर गयी थी पूरी अलग-अलग नहीं हुयी थी। बंदरों की टोली आयी उन्होंने देखा ये क्या कौतुक है, एक बंदर उछल कर बैठ गया और छैनी निकालकर हिलाने लगा, अन्य बंदरों ने समझाया भी किंतु वह

नहीं माना उसने छैनी खूब हिलायी जो छैनी फँसी थी वह तो अलग हो गयी उसकी पूँछ उसमें दब गयी, अब वो चिल्ला रहा है, रो रहा है, पुनः खूब झटका लगाकर के खींचा तो उसकी पूँछ कट गयी। यदि पहले से मान लेता तो चिल्लाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

पुकारता वही है जिसने पहले किसी को पुचकारा नहीं है। जो पुचकारता है उसे पुकारने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिसने पूर्व के जीवन में किसी का उपकार किया है, प्रेम किया है, वात्सल्य दिया है, किसी की सेवा की है उसे दूसरों को पुकारने की आवश्यकता नहीं पड़ती किंतु जिसने ऐसा नहीं किया है उसे तो दूसरों को पुकारना ही पड़ता है, चिल्लाना ही पड़ता है। तब कवि ने दूसरी बात कही-

सुख में सुमिरन किया नहीं, दुःख में करता याद।
कह कबीर उस भक्त की, कौन सुने फरियाद॥

सुख में तो तुमने भगवान् का सुमिरन किया नहीं, अब दुःख में याद करता है। ऐसा बेईमानी का काम मिथ्यादृष्टि करता है। मिथ्यादृष्टि जीव सुख में भगवान् की पूजन नहीं करता, सुख में कहता है-भगवान् की अटकी हो तो आ जायें मेरे पास, दे दूँगा उनको भी चंदा थोड़ा बहुत, मेरे पास क्या कमी है, मैं क्यों जाऊँ भगवान् के पास। जब मेरी अटकेगी तब देखूँगा। ऐसे जो कहता है, उसको अटकना पड़ता है और जाना पड़ता है भगवान् के पास। और जो कहता है, क्या दुःख, क्या सुख सब पुण्य पाप की धूप छाया है नष्ट हो जायेंगे, मैं तो भगवान् के पास अपनी आत्मा को भगवान् बनाने जा रहा हूँ उसे जीवन में कभी पुकारना नहीं पड़ता।

जो पुण्य के उदय में इतराता है, दूसरों को ठुकराता है, ऐसा व्यक्ति पाप के उदय में नौ-नौ आँसू बहाता है, सबके आगे हाथ जोड़ता है, माथा टिकाता है, किंतु पुण्य के उदय में जो अपने पुण्य का सदुपयोग करता है उसे पुकारने की आवश्यकता नहीं पड़ती,

दर-दर की ठोकर खाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, द्वार-द्वार पर हाथ फैलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। तो महानुभाव ! पुकारो मत, पुकारना तो अपनी गलती स्वयं सिद्ध करना है कि मैं इसके लायक नहीं हूँ फिर भी माँग रहा हूँ। मुझे ये दे दो वो दे दो। माँगने से भीख तो मिलती नहीं और क्या कुछ मिलेगा, कुछ नहीं मिलेगा। किंतु बिना माँगे सब कुछ मिलता है।

बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख।

बिना माँगे मोती भी मिल जाता है, राज्य तक मिल जाता है। बिना माँगे तीर्थंकर प्रकृति मिलती है, बिना माँगे अरिहंत सिद्ध का वैभव मिलता है किंतु काबलियत होना चाहिये। जो जिसके योग्य है वह वस्तु उसे आज नहीं तो कल मिल ही जायेगी और जिसके लिये तुम योग्य नहीं हो उस वस्तु को प्राप्त भी कर लोगे तो भी वह तुमसे छूट जायेगी नष्ट हो जायेगी।

हम कई बार कहते हैं अच्छा सुगठित गढ़ा हुआ पत्थर जंगल में भी पड़ा होगा, जो कोई भी देखेगा उठाकर ले आयेगा और न सही महल में लगा पाये कम से कम महल के द्वार पर डाल देगा और झोंपड़ी वाला होगा तो वह भी उठा लायेगा कहेगा कम से कम पैर धोने के काम आयेगा। किंतु जो ईंट कच्ची है महल के बीच में भी लगी होगी तो महल को कच्चा कर देगी, धराशाही कर देगी। अपनी काबलियत, क्षमता ही स्वयं के लिये सम्मान व प्रतिष्ठा-सुख शांति देने में समर्थ है। यदि अपना ही पुण्य नहीं है अपने पास बीज नहीं है तो वृक्ष कहाँ से होंगे।

पुकार का आशय है बाहर से याचना करना, सहायता माँगना। पुचकार का आशय है स्वयं अपनी योग्यता को जाग्रत करना। जो माता-पिता वृद्ध अवस्था में अपने बच्चों को पुकार रहे हैं, बेटा-बेटा पानी तो ले आ, बेटा दो घंटे हो गये अब तो पानी ले आ मैं कब से

बुला रहा हूँ, पर बेटा सुन ही नहीं रहा। बहू को बुलाया, उसने भी नहीं सुना, लगी है अपने काम में, कहकर गयी लाती हूँ किन्तु फिर भी भूल गयी।

जो वृद्ध पुकार रहा है नि:संदेह उसने पुचकार नहीं लगायी, नहीं तो आज पुकार नहीं लगानी पड़ती। प्रारंभ में अपने बेटे बहू को इतना प्यार दिया होता कि उसके बिना बेटा बहू रह ही न पायें तब बेटा उसके चरणों में रहता श्रवण कुमार की तरह सेवा करता। आज बेटा तुम्हारी सुन नहीं रहा इसका आशय यह है तुमने बेटे को जन्म देते ही किसी हॉस्टल में डाल दिया होगा इसीलिये आज बेटे ने तुम्हें तुम्हारी वृद्धावस्था में वृद्धाश्रम में छोड़ दिया। बचपन में बेटे ने तुमसे कहा-पिताजी समय दे दो अब आप मेरे पास बैठते नहीं हैं सुबह से चले जाते हो रात में आते हो तब तक मैं सो जाता हूँ, मैं कई दिनों से आपका चेहरा भी नहीं देख पाता। जिस समय वह बेटा पुकार रहा है उस समय उसके पिता के पास समय नहीं है तो संभव यही है कि कल बेटे के पास भी तुम्हारे लिये समय नहीं होगा। आज बेटा कहता है समय चाहिये और पापा कहते हैं बेटा समय नहीं है, कल तुम्हें भी यही शब्द सुनने मिलेंगे कि पिताजी मैं अभी बहुत व्यस्त हूँ समय नहीं दे सकता।

महानुभाव ! जैसा हम कर रहे हैं वैसा ही तो मिलना है, आज यदि तुमने अपने बच्चों के लिये किया है, पिता के लिये किया है, पिता की पूरी सेवा की है व बच्चों के प्रति पूरा कर्त्तव्य किया है तब नि:संदेह मानो तुम्हारी भी सेवा होगी और तुमने यदि अपना कर्त्तव्य नहीं किया तो तुम्हें भी नहीं मिलेगा।

एक बालक अपने पिता के पास पहुँचा, उसके पिता जी प्रोफेसर थे और उन्हें संभव है 60,000 रु. महीना मिलते थे, प्रतिदिन का 2000 रु.। वे माना कि प्रतिदिन 5 घंटे की ड्यूटी देते हैं तो एक घंटे का 250 रु. हो गया, वे बहुत व्यस्त रहते थे, उनके पास समय नहीं

रहता था। उनका बेटा उनके पास आया-कहने लगा-पापा मुझे समय चाहिये। वे थके हारे आये थे, परेशान थे उन्होंने बालक को एक थप्पड़ मार दिया। बेचारा बेटा रोता हुआ ऊपर कमरे में चला गया।

शाम का वक्त था 8 या 8.30 बज रहे थे। पिताजी जब अपने काम से फ्री हुए, उन्हें लगा मैंने बिना वजह बेटे के गाल पर तमाचा मार दिया और उसका मन दु:खी हो गया। वह ऊपर गये सोचा बेटा सो गया होगा। उसने जैसे ही बेटे को बुलाया बेटा तुरंत ही बिस्तर से खड़ा हो गया, उसने कहा-बेटा-तुम कुछ कह रहे थे, बेटा बोला-मैं यह कह रहा था कि आप 1 घंटे में कितना कमा लेते हैं, बेटा तुम ये क्यों पूछ रहे हो? फिर भी बताया महीने में 60,000 एक दिन में 2000 और 1 घंटे में मान लो 250 रु.। वह बालक दौड़कर गया अपनी गुल्लक को तोड़ता है और पैसे गिनता है, उसमें 250 रु. थे, और लेकर पापा को देता है कहता है पापा ये लो 250 रु. मुझे अपने 1 घंटे का समय दे-दो मैं आपके साथ खेलना चाहता हूँ।

जो बेटा अपने पापा से प्यार करने के लिये यहाँ तक कहे कि आपका समय बहुत कीमती है, आपके जीवन में पैसे की बहुत अहमियत है बच्चों की कोई अहमियत नहीं है, उन्हें प्यार देने के लिये समय नहीं है, ऐसे माता पिता को वृद्धावस्था में अपने बच्चों के हाथ की सेवा नहीं मिलती। उन्हें अपने बच्चों को पुकारना पड़ता है, जिन माँ-बाप ने अपने बच्चों को पुचकारा है उनके बच्चे अपने माँ-बाप को छोड़ते नहीं हैं, वे परछाई की तरह साथ रहते हैं। ऐसे ही जो भक्त अपने भगवान् के पास हमेशा रहता है, 24 घंटे, आठों याम रहता है अपने इष्ट को अपने आत्म प्रदेशों में बसा कर रखता है उसे भगवान् को बुलाना नहीं पड़ता, उसका भगवान् तो सदा उसके साथ रहता है। किंतु जो भगवान् को साथ में नहीं रखता तो उसे भगवान् को बुलाना पड़ता है।

महानुभाव ! जब भगवान् से एक बार मन लग गया तो भगवान् को बार-बार बुलाना नहीं पड़ता। जब भक्त व भगवान् एक हो गये

जिसे अभेद भक्ति कहते हैं जब अभेद हो गया तो बाहर से चिल्लाने की आवश्यकता नहीं। Voice contact सबसे weak contact होता है। आवाज लगाकर बुलाना चाहे मोबाइल से बुलाना, ई-मेल से बुलाना यह सबसे वीक पॉइंट है। इससे powerful contact है eye contact प्यार भरी आँखों से एक बार देख लिया, बस उसका होकर रह गया, उसके बाद होता है हार्ट कॉन्टेक्ट। हृदय के तार हृदय तक छू गये और उससे भी सबल व प्रबल कॉन्टेक्ट है आत्मा से आत्मा के तार जुड़ें।

एक व्यक्ति जुड़ता है भावनाओं से। भावनायें यहाँ से विदेश में बैठे व्यक्ति तक को भी स्पर्शित करती हैं। यदि आपके पास प्रभावी विचार हैं तो अपने विचारों से सामने वाले के विचारों को भी चेंज किया जा सकता है। तुम्हारे पास सकारात्मक प्रभावी शक्ति हो तो सामने वाले की नकारात्मक भावनाओं को नष्ट किया जा सकता है। यदि तुम्हारे अंदर प्रेम की अधिकता है तो सामने वाले की विद्वेषता को नष्ट किया जा सकता है। यदि धर्म के मर्म का अथाह सागर है तो सामने वाले के चित्त में विद्यमान मिथ्यात्व को भी धोया जा सकता है। कषायों को, क्रूरता को, बैर, अहंकार, मायाचारी को नष्ट किया जा सकता है। और कई बार ऐसा देखा जाता है-आपने साहित्य में पढ़ा होगा-प्रेम की चरम सीमा वहाँ होती है जहाँ पर शब्दों का प्रयोग नहीं होगा। शब्दों की बात तो बहुत बोनी है, थोथी, उथली है किंतु भावों की बड़ी अचल है, सीधा प्रभाव पड़ता है।

भावों के बारे में आचार्यों ने लिखा है-भाव हैं 'पुचकार' व क्रिया का आशय है पुकार। पुचकार के मायने हुआ आत्मा से साक्षात्कार। पुकार के मायने हुआ-बाह्य क्रिया, तप, भक्ति, संयम साधना। पुकार अर्थात्-कीर्तन, पुचकार अर्थात् आत्मध्यान। आप आठों याम अपने ईश्वर को पुचकारते हैं तो वह तुम्हें छोड़ नहीं सकता और आप कभी-कभी अपने भगवान् को साथ में रखते हैं हमेशा नहीं रखना चाहते हैं, रख नहीं सकते, कहीं न कहीं गड़बड़ हो तो

परमात्मा भी तुम्हारे साथ आ नहीं सकता। आप अपनी हर क्रिया में हर समय परमात्मा को रखना चाहते हो तो वह आपसे दूर हो नहीं सकता।

कहने का आशय यही है कि हम अपने आपको पुचकार लें अभी तक हम अपनी आत्मा को दुतकारते रहे हमने अपने गुणों को, श्रद्धा को दुतकारा, जो वास्तव में अपने थे उनको दुतकारा इसीलिये पराये को पुकारना पड़ा, अपने को नहीं दुतकारते तो पराये को नहीं पुकारना पड़ता। अभी समय है अपने को दुतकारो मत पुचकारो। पुचकार पर्याप्त है पुकार का कहीं अंत नहीं होता। पुकारते-पुकारते जीभ थक जायेगी किंतु कोई तुम्हारी पुकार को सुनेगा नहीं, कबीर दास ने लिखा-

आँखनियाँ झाँई पड़ी पंथ निहार-निहार।
जीवणियाँ छाला पड़ा नाम पुकार-पुकार॥

द्वार देखते-देखते आँखों में झाँई आ गयी, पुकारते-पुकारते जीभ में छाले आ गये किंतु मेरे श्याम मेरे राम, मेरे भगवान्, मेरे वीर, तुम कहाँ छिपकर बैठ गये क्यों सामने नहीं आते, मेरी क्यों नहीं सुनते? जब तुमने अपनी आत्मा की नहीं सुनी तो तुम्हारी बात कौन सुने, तेरे मन की बात तूने क्यों नहीं सुनी तेरे मन ने तुझे बहुत रोका पाप करने से पर तूने मानी कब ? तू तो अपनी मनमानी करता रहा।

महानुभाव ! पुकार का आशय है बाहर से सहयोग माँगना, चाबी खुद के हाथ में होते हुये भी चिल्ला रहा है अरे कोई मेरे महल का ताला खोल दो और बाहर दौड़ रहा है, आवाज लगा रहा है। अरे तेरे महल की चाबी तेरे पास है तो कोई क्यों आकर तेरा महल खोलेगा। तेरी चाबी से तुझे ही महल खोलना है चिल्लाने से कुछ नहीं होने वाला।

पुचकारने का आशय है स्वयं में समर्थ हो जाना। पास में रखी औषधि का सेवन स्वयं कर लेना, अपना पानी स्वयं पी लेना, अपनी

मंजिल को स्वयं प्राप्त कर लेना, अपने पैरों से चलना। पुचकारने का आशय है अपनी आँखों को स्वयं खोल लेना और पुकारने का आशय है अपनी आँख बंद करके बाहर से प्रकाश माँगना। पुकारना हमेशा मिथ्या होता है, पुचकारना ही सम्यक् होता है। पुचकारने वाले को बस एक बार अपनी आत्मा को पुचकारना है, जिसको अनादिकाल से दुतकारते चले आ रहे हैं। फिर कभी किसी को पुकारना नहीं पड़ेगा।

महानुभाव! बस इतना ही कहना चाहते हैं कि एक बार तो अपनी आत्मा को पुचकार लो। अपनी आत्मा को पुचकारने की याद तो तब आयेगी जब अपने घर के बाल बच्चों को पुचकारोगे, प्यार का सागर तुम्हारे अंदर लहराये तो सही, तब तो ठीक है। इतना प्रेम उमड़े कि घृणा, विद्वेष, बैर भाव किंचित् भी शेष न रह पायें, फिर तुम्हें सब जगह आनंद ही आनंद आयेगा। प्रेम जब अनंत अवस्था को प्राप्त हो जाता है तब समझ लेना आत्मा का प्रत्येक प्रदेश संत अवस्था को प्राप्त हो जाता है और इतना ही नहीं जब चेतना का प्रत्येक प्रदेश संत हो जाये तो समझ लेना तुम्हारे जीवन में जो कोई भी दिन आयेगा वह बसंत का रूप लेकर के ही आयेगा। किसी कवि ने लिखा है-

प्रेम जब अनंत हो गया रोम-रोम संत हो गया।
आपकी कृपा क्या हुयी, मन मेरा बसंत हो गया॥

बसंत का आशय है-बस+अंत=बस अब संसार का अंत आ गया। जहाँ जीवन में बसंत आ गया तो समझो संसार का अंत आ गया। बस आप सभी से इतना ही संकेत है अब अपनी आत्मा को दुतकारो मत पुचकारो। चाहे आत्मा की निधि हो चाहे व्यवहार में जिन्हें तुम अपना कहते हो तुम्हारा मित्र या जिससे खून का संबंध है उनको पुचकारना प्रारंभ कर दो। चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो। शत्रु कहोगे तो मेरा शत्रु, मेरापन आ गया। जिसे भी अपना कहते हो उसको पुचकारना प्रारंभ कर दो तुम्हारे अंदर से शत्रुता मिट जायेगी, मित्रता का आविर्भाव हो जायेगा, प्रेम वात्सल्य उमड़-उमड़ कर आ जायेगा।

कई बार लोग कहते हैं-महाराज जी आप पुचकार कर क्यों आशीर्वाद देते हैं बिना पुचकार के दे दें तो क्या हर्ज है। हम अपनी आत्मा को पुचकारते हैं किंतु तुम्हें लगता है कि हम तुमको पुचकारते हैं। हम तो तुम्हारे अंदर बैठे परमात्मा को पुचकारते हैं कि इनके अंदर भी ऐसा ही परमात्मा विराजमान है जैसा हमारे अंदर विराजमान है। तो महानुभाव ! आपसे भी इतना ही कहना चाहते हैं कि सबके प्रति प्रेम की गंगा बहाना है। प्रेम नि:स्वार्थ भावना से लुटाना है और सबका प्रेम स्वयं को भी पाना है इसी तरह अपने जीवन को स्वर्ग बनाना है। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ-

''श्री शांतिनाथ भगवान् की जय''

प्रवचन ९
माटी पर मिटने वाले

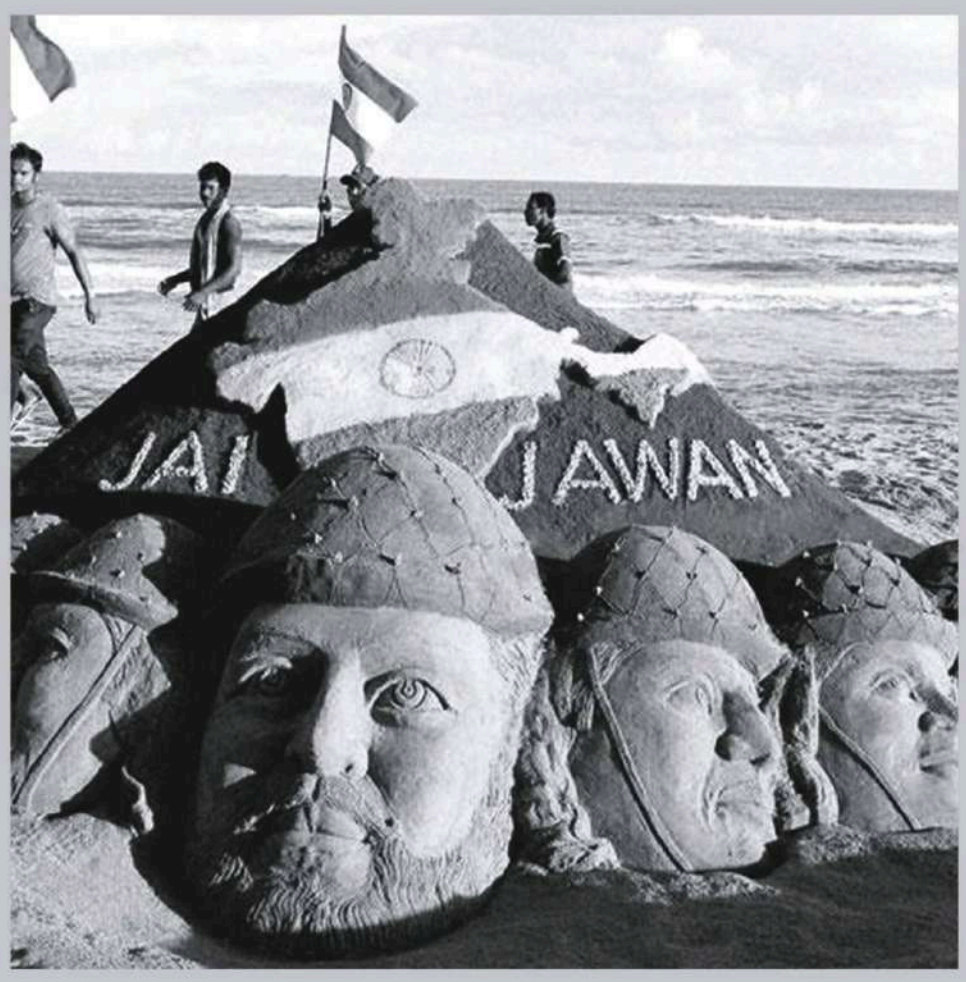

क्या किया जो प्राण गँवाये, नश्वर देह के वास्ते।
धन्य है जो सब कुछ छोड़ा, मातृ भूमि के वास्ते।
महापुरुा वन्दनीय जगत् में, मुनि दिगम्बर श्रेठ महान।
धन वैभव सब छोड़ चले जो, मोक्ष महल के रास्ते।

माटी पर मिटने वाले

आप और हम सभी जानते हैं जिसने भी जन्म लिया है उसे मृत्यु को गले लगाना पड़ता है। कोई मृत्यु को हँसकर गले लगाता है तो कोई रो-रोकर, कोई मृत्यु के आने के पहले मर जाता है कोई मृत्यु को मारकर के मरता है। कोई संयम के साथ मरता है तो कोई असंयम के साथ मरता है, कोई दीनता के साथ मरता है तो कोई अदीन होकर, कोई वीरता के साथ मरता है तो कोई कायरता के साथ, कोई धर्म को चित्त में धारण करके मरता है तो कोई पाप को। मरना सबको होता है, एक व्यक्ति वह होता है जो शुद्ध संकल्प के साथ मरता है, एक व्यक्ति वह होता है जो अशुद्ध संकल्प के साथ मरता है। मरना तो सबको है किसी को आगे किसी को पीछे।

एक व्यक्ति मरने के उपरांत भी अमर है आज उसके नाम का पत्थर भी पूजा जा रहा है, उसके नाम की जयकार लगायी जा रही है, उसका नाम सुनते ही हाथ जुड़ जाते हैं मस्तक झुक जाता है, उसका नाम किसी कागज पर लिख दिया जाये तो वह शास्त्र कहलाता है लोग उसे पूजते हैं, स्वाध्याय करते हैं उसके जीवन की चर्चा धर्मशास्त्र कहलाती है, जहाँ उसका नाम लिख दिया लोग अर्घ चढ़ाते हैं और एक व्यक्ति ऐसा होता है जिसका नाम प्रातःकाल कर्ण गोचर भी हो जाये तो लोग कहते हैं अरे तुमने भी सुबह-सुबह किसका नाम ले लिया, हमारा तो आज का पूरा दिन ही खराब हो जायेगा और उस नाम को धिक्कारते भी हैं। इतना ही नहीं उस नाम के प्रति लोगों की विद्वेष भावना, घृणा का भाव रहता है। महानुभाव ! संसार में सब प्रकार के जीव हैं। प्रत्येक प्राणी जिसने जन्म लिया है उसे मृत्यु को गले लगाना पड़ेगा इस बात को सब जानते तो हैं किंतु जीते जी मान नहीं पाते। केवल जानना पर्याप्त नहीं है जब तक माना न जाये।

हमारे जीवन में माटी का बहुत बड़ा महत्व है, माटी से ही तो हम यहाँ तक आये हैं। जितनी भी ये पर्याय दिखायी देती हैं वे सब माटी हैं और जब तक व्यक्ति माटी में डूबा रहता है तब तक मृणमय से चिन्मय तक नहीं पहुँच पाता। यदि मृणमय में तन्मय हो गया तब तो उसका जीवन ही माटी-माटी हो गया और यदि वह मृणमय से चिन्मय हो जाता है, ज्ञेयमय, बोधमय हो जाता है, तपमय, ध्यानमय हो जाता है तब उसका जीवन वास्तव में सफल और सार्थक हो जाता है।

महानुभाव ! व्यवहार धर्म की चर्चा करते हैं, जो व्यक्ति जिस परिवार में रहता है उस परिवार की रक्षा करना, उस परिवार का संवर्धन करना यह उस परिवार के मुखिया का कर्त्तव्य है और मुखिया के आदेश का पालन करना घर में रहने वाले सभी सदस्यों का कर्त्तव्य है। मुखिया सबसे ज्यादा सुखिया भी है, मुखिया सबसे ज्यादा दु:खिया भी है। मुखिया खुश तब होता है जब उसके आश्रित अधीनस्थ व्यक्ति खुश रहें, संतुष्ट हों, आनंदमय हों तब नि:संदेह मुखिया बहुत सुखी होता है और जब उसकी जनता दु:खी होती है, परेशान होती है, रुग्ण होती है, त्रासता का अनुभव करती है तब सबसे ज्यादा दु:खी होता है मुखिया।

महानुभाव ! हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है अपने परिवार की, अपनी संस्कृति की, अपनी आन-बान-मर्यादा की रक्षा करना। जब कोई आपके परिवार को या देश को अकारण गुलाम बनाये, कष्ट दे, मारे, पीटे तो परिवार का मुखिया शांति से बैठा नहीं रहेगा परिवार का मुखिया तो विरोध करेगा ही इसके साथ-साथ अन्य लोग भी विरोध करेंगे, ये उन सबका नैतिक कर्त्तव्य भी है अन्यथा वे परिवार से विलग माने जायेंगे। जो व्यक्ति देश में रहते हुये भी देशभक्ति की भावना न रखे तो यह कहा जायेगा कि यह देशद्रोही है क्योंकि लोक-व्यवहार भी एक धर्म होता है।

हम आध्यात्मिक धर्म की चर्चा भी करते हैं किंतु लोक धर्म हमारा यह कहता है कि अपने परिवार की सुरक्षा के साथ-साथ अड़ौसी-पड़ौसी की, नगर निवासियों की भी रक्षा करें, हमारा लोक धर्म कहता है हम अपने देश की भी रक्षा करें। यदि कोई विदेशी हमारे देश को गुलामी की जंजीरों में बाँधना चाहता है तो उसका पूर्ण विरोध करना चाहिये। कहीं कोई व्यक्ति हमारी संस्कृति का उन्मूलन या स्खलन करना चाहता है तो एक देशभक्त का खून खौल जाता है। वह सामने आ जाता है जैसे एक सिंहनी किसी गाय के बछड़े पर वार करती है या हरिणी के बच्चे पर वार करती है तो वह गाय अपने बछड़े को, वह मृगी अपने बच्चे को बचाने के लिये सिंहनी से भी लड़ जाती है वह किसी की परवाह नहीं करती और जब वह गाय तीव्र शक्ति के साथ, तीव्र आक्रोश में, तीव्र मातृत्व व वात्सल्य भाव को लेकर वार करती है सिंहनी पर, तब उसका पहला सींग सिंहनी के पेट में घुस जाता है। वहीं सिंहनी का प्राणान्त भी हो सकता है वह इतनी शक्ति से वार करती है कि सिंहनी की आँख को आर-पार कर देती है, ऐसी शक्ति उस गाय व मृगी के पास आ जाती है। कई बार छोटी-छोटी सेनाओं ने बड़ी-बड़ी सेनाओं को मात दी है, मुँह तोड़ जवाब दिया है।

महानुभाव! भारत जो पहले कभी आर्यावर्त के नाम से प्रसिद्ध था, भगवान् ऋषभदेव के पुत्र, कामदेव बाहुबलि के भाई प्रथम चक्रवर्ती भरत जिनके नाम से इस देश का नाम भारत पड़ा। भारतवर्ष होने के उपरांत इस देश में समृद्धि रही, तब भगवान् ऋषभदेव के सामने से कर्म भूमि का प्रारंभ हुआ, सृष्टि की रचना हुयी तब से वे आदि ब्रह्मा कहलाये।

तब से लेकर के हम समझते हैं कलिंगाधिपति सम्राट खारवेल जिन्होंने पूरे भारत वर्ष पर राज्य किया या चन्द्रगुप्त मौर्य जो अंतिम

मुकुट बद्ध राजा हुआ तब तक स्वतंत्रता व स्वाधीनता का ढोल बजता रहा, पराधीनता देखने में नहीं आयी। उस समय को याद करो जब सिकंदर आदि ने भारत पर धावा बोला उसके बाद और भी विदेशी आये, अलग-अलग लोगों ने भारत पर राज्य किया। खिल्लीवंश, मौर्य वंश आदि हुये, तभी मुगल भी आये, इसके साथ-साथ यवन तुर्की आदि भी आये, फिर अंग्रेज आये उन्होंने भी भारत देश पर राज्य किया। लगभग 1660 के आस पास ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना हुयी और 1947 तक अंग्रेजों ने अपना राज्य किया।

वे यहाँ व्यापार के बहाने से आये और यहाँ आकर उन्होंने अपने पैर जमा लिये, यहाँ के मार्किट पर अपना अधिकार कर लिया, यहाँ की जनता के साथ अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया, यहाँ के राजाओं को फूट डालकर के अपनी ओर मिलाना शुरू कर दिया और भारत देश पूरी तरह गुलाम हो गया। भारतीय व्यक्तियों के पास न धर्म कर्म करने की स्वतंत्रता थी, न संस्कृति की रक्षा करने की स्वतंत्रता थी, न अपने रीति-रिवाज त्यौहार मनाने की स्वतंत्रता थी, न शास्त्र प्रकाशन की स्वतंत्रता थी, न मंदिर बनवाने की स्वतंत्रता थी या और भी कोई अनुष्ठान कराने की स्वतंत्रता नहीं थी।

प्रत्येक कार्य करने के लिये अंग्रेजों की स्वीकृति लेना जरूरी था और वे स्वीकृति नहीं देते थे, उनकी एक नीति थी भारतीयों को भारतीयों से लड़ाओ। उन्होंने अपनी सेना में भारतीय सैनिक भर्ती भी किए तो इसीलिये कि भारतीयों को भारतीयों से मरवाओ जिससे उनकी सेना सुरक्षित रहे। ऐसी गंदी नीतियों के साथ गुलामी का काल जीया, तब कुछ भारत के नौजवान जो जोश और उत्साह के साथ आगे आये और आगे आकर सबसे पहले भारत को गुलामी की जंजीर से बचाने के लिये बिगुल बजाया। झांसी की रानी लक्ष्मी बाई ने 1857 में क्रांति प्रारंभ की, मंगलपाण्डे आदि नये-नये युवा आते गये और

स्वतंत्रता प्राप्त होने से पहले देश की सुरक्षा के लिये इस माटी पर मिटने वाले कितने शहीद नहीं हुये।

महानुभाव ! झांसी के लाला हुकुमचंद्र जैन जिसको सरे आम फाँसी पर लटका दिया था, वृक्ष पर टाँग दिया था। वह फकीरचंद जैन जिनको सबके सामने फाँसी पर लटका दिया था, अमरचंद जैन वांठिया ग्वालियर के, मोतीचंद शाह सोलापुर के और सिंघई प्रेमचंद्र जैन दमोह के, वीरसातप्पा टोपण्णावर (कडवी शिवापुर) बेलगाँव के, उदयचंद जैन मंडला के, साहुलाल जैन वैशाखिया गढ़ाकोटा के, कुमारी जयावती संगवी अहमदाबाद से, नाथालाल शाह अहमदाबाद इत्यादि कितने लोगों को जीते जी मृत्युदंड दिया गया। फाँसी की सजा दी गयी। इसके साथ-साथ अण्णा पत्तावले शांगली से, मगनलाल जैन ओसवाल जांबडा-इंदौर से, कंधेलाल जबलपुर से, मुलायम चंद जैन जबलपुर से, भूपाल पंडित जी हैदराबाद से, चौथमल भंडारी उज्जैन से, भईयालाल दमोह से भारमल और भूपाल अणस्खुरे कोल्हापुर से, हरिश्चन्द्र जैन डौंबा, परमणी से इत्यादि लोगों को उस समय 1900 से लेकर 1947 के बीच में भरे चौराहे पर सबके सामने फाँसी की सजा मृत्युदंड सहन करना पड़ा, स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के कारण।

महानुभाव! इतना ही नहीं जब यवनों से युद्ध हुआ तब दानवीर भामाशाह जिन्होंने इस राजस्थान की भूमि की सुरक्षा के लिये उसकी आन-बान-शान के लिये, कई पीढ़ियों से जोड़ा हुआ धन जो कि मंदिर बनाने के लिये जोड़ा था उस धन को महाराणा प्रताप के सामने जाकर समर्पित कर दिया, कलिंगाधिपति सम्राट खारवेल जिसने आदिनाथ भगवान् की मूर्ति जिसे मगध का राजा हरकर ले गया था उसे प्राप्त किया और चक्राधिपति कहलाता हुआ पूर्व से लेकर कन्याकुमारी तक विजय प्राप्त की।

महानुभाव ! इतने ही नाम नहीं अन्य नाम जो आपको याद हों चाहे-चन्द्रशेखर हो, भगतसिंह हो, सुभाषचन्द्र बोस हो, सुखदेव हो, चाहे विसमिल्ला खाँ कितने सारे वीर पुरुष रहे उस समय लहर ही ऐसी आ गयी थी,

उस समय देश भक्ति का ऐसा जज्बा था। आज भी हमें देश भक्ति की भावना को कम नहीं करना। आचार्य सोमदेव सूरि ने भी यशस्तिलक चम्पू में लिखा है-

''सर्व पक्षपातेसु स्वदेश पक्षपातोमः''

सभी प्रकार के पक्षपातों में अपने देश का पक्ष लेना, अपने देश की रक्षा करने का भाव होना वह महान है। देश के प्रति भावना तो सबके जीवन में होना चाहिये क्योंकि जिसके जीवन में देशभक्ति की भावना नहीं है, जिसके रग-रग में रोम-रोम में साहस नहीं है, उत्साह नहीं है ऐसा व्यक्ति देश की सुरक्षा नहीं कर सकता और जो देश की सुरक्षा कर सकता है वही अपने परिवार व समाज की रक्षा कर सकता है।

मातृभूमि की रक्षा हेतु, माटी पर मिटने वाले,
वही देश के उन्नायक हैं वही देश के रखवाले।
आज धर्म की रक्षा हेतु हम भी शुभ संकल्प करें,
संकल्प की दृढ़ता से ही मुक्ति रमा का वरण करें॥

आज अपने देश में शांति है, स्वतंत्रता है, प्रजातंत्र है किंतु जिस समय क्रांति ही क्रांति थी उस समय धर्म और धर्मात्मा दोनों ही संकट में थे, उस समय साधना नहीं थी उस समय साधुओं की इतनी संख्या नहीं थी, मंदिरों की संख्या भी इतनी नहीं थी। मंदिर और मूर्तियाँ तोड़ दिये जाते थे। उस समय तो सबके मन में बस एक ही भूत जैसा सवार था वह था कैसे भी इन विदेशियों के चंगुल से बाहर होना, इन्हें बाहर

करो ये हमारी स्वतंत्रता को छीने बैठे हैं हमें कुछ करने नहीं देते हमारी भावनाओं को कुचल रहे हैं, हमारे धर्म को नष्ट कर रहे हैं, हमारी संस्कृति को नष्ट कर रहे हैं। ऐसे माटी पर मिटने वाले वीर शहीदों को हम स्मरण करते हैं।

तीन प्रकार की माटी मैंने समझीं-पहली माटी देश की माटी है जिस पर हमने जन्म लिया जिसकी रक्षा करने के लिये लोगों ने अपने जीवन को समर्पित कर दिया। दूसरी माटी है देह की माटी। इस शरीर की माटी पर मिटने वाले लोग भी रहे, शरीर की रक्षा करने के लिये लोगों ने देश को छोड़ दिया, धर्म को छोड़ दिया, मानवता को छोड़ दिया। 'ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती' जो छः खण्ड का राजा बन गया किंतु फिर भी अपने शरणागत की रक्षा न कर सका जिसे बहुत दयावान्, करुणावान् होना चाहिए किन्तु वह बहुत कुव्यसनी था, शिकार खेलने का शौकीन उसे दूसरों को सताने व कष्ट देने में बहुत आनंद आता। ऐसे इंसान देह की माटी के लिये दूसरों को मिटाने वाले होते हैं। दूसरे के अंडे को माँस को खाने वाले, शराब को पीने वाले होते हैं। अपनी माटी को बढ़ाने के लिये दूसरे के प्राणों को लेने वाले।

ऐसे व्यक्ति निकृष्ट होते हैं वे चाहते हैं चाहे धर्म चला जाये किंतु मैं अपने शरीर को कष्ट नहीं दे सकता। नियम टूटे तो टूट जाये कोई बात नहीं वे निश्चित ही अपनी देह की माटी को बहुत महत्व देते हैं। चाहे वे सुभौम चक्रवर्ती हों जिन्होंने शरीर की माटी की रक्षा करने के लिये णमोकार महामंत्र को लिखकर उस पर पैर रख दिया। ऐसे कितने ही लोग हुए जिन्होंने अपनी देह की माटी के लिये दूसरों पर अत्याचार किये, अन्याय का सहारा लिया और जाकर नरक की भूमि को छूआ।

अपने शरीर की माटी को लेकर फूलने वाला वह कंस था, जरासंध था या रावण था। अपनी माटी को देखकर संतुष्ट होने वाले

चाहे कौरव थे चाहे अन्य कोई राजा जिन्होंने अपने शरीर की माटी पर घमण्ड किया। वह रूपवती चाहे लक्ष्मीमति थी, चाहे वह कनकोदरी जिसने अपने रूप सौंदर्य पर अहंकार करके कि मैं लक्ष्मीमति से ज्यादा सुंदर हूँ, मेरे प्रति प्रेम अधिक हो, अपने पति को रिझाने का प्रयास किया। माटी पर मिटने वाली वह कमलावती जिसने नरवाहन राजा को अपनी ओर आकृष्ट किया, कितना दुष्चरित्र किया कि पुत्र समान अपनी सौत के बेटे को ही फँसाया और मृत्यु दंड देने को तैयार हो गयी। जो अपनी माटी की सुरक्षा करना चाहता है उसकी सुख-सुविधा लेना चाहता है, पंचेन्द्रिय के भोगों में निमग्न रहना चाहता है ऐसा व्यक्ति अधम हैं, निकृष्ट हैं।

तीसरी माटी होती है-'माँ' वह माँ जिनवाणी इस पर प्राण देने वाले भी हैं, जिन्होंने धर्म को नहीं छोड़ा। अष्टम वसुधा की प्राप्ति की लगन है, उसके लिये अपने तन की चिंता नहीं की। उन्होंने अपनी आत्मा की शाश्वत माटी को प्राप्त करने के लिये इस माटी पर जो कर्मों की मिलावट है उसको दूर करने के लिये अनेक परीषहों को सहन किया। सहन करते चले गये किंतु उन्होंने धर्म से मुख नहीं मोड़ा-उनकी गाथा कहाँ से प्रारंभ करें जिन्होंने अपने शरीर की माटी छोड़ी किंतु जिनवाणी को नहीं छोड़ा।

वह पुरुरवा भील जिसने कौवे के माँस का त्याग किया, सभी परिवार के व्यक्ति कह रहे हैं तुम कौवे का माँस खालो तो ठीक हो जाओगे, किंतु उसने कहा-मर जाऊँगा पर कौवे का माँस नहीं खाऊँगा, और अंत में सभी माँसों का त्याग कर दिया, अणुव्रतों को ग्रहण कर लिया व स्वर्ग में जाकर देव हुआ।

वह खदिरसार भील उसने भी कौवे के माँस का त्याग किया, उसका साला उसे समझाने आ रहा था तब रास्ते में उसे एक देवी

मिली उसके रोने का कारण पूछा तो उसने कहा-तुम्हारे बहनोई ने माँस का त्याग कर दिया है, वह किसी रोग से मृत्यु को प्राप्त होने वाला है और मरकर मेरा पति होगा। तुम जिसे माँस खिलाने जा रहे हो यदि वह माँस खा लेगा तो नियम तोड़ने के फल से वह नरकायु का बंध करके नरक में चला जायेगा, अभी उसने आयु का बंध नहीं किया। उसके साले ने कहा-लोक व्यवहार वश में खदिरसार से कहूँगा तो सही किंतु ज्यादा जोर नहीं दूँगा। वह पहुँचा और कहा-अरे खदिरसार खा लो कौवे का माँस, क्या होता है इससे, तुम गुरु महाराज से प्रायश्चित ले लेना कोई बात नहीं। खदिरसार ने कहा मैं नियम नहीं तोड़ सकता। उसकी दृढ़ता देखकर उसके साले ने कहा-बहुत ठीक-कोई बात नहीं तुम्हारी आयु अब ज्यादा नहीं है मृत्यु समीप है।

खदिरसार ने कहा तुम्हें कैसे मालूम ?- उसने बताया कि मुझे रास्ते में देवी मिली थी उसने मुझे सब बताया कि यदि तुम कौवे के माँस त्याग के नियम पर दृढ़ रहोगे तो उसके पति 'देव' रूप होओगे, खदिरसार ने कहा-ऐसी बात है कि मैं कौवे के माँस त्याग करने से व्यंतर देवी का देव बनूँगा और नियम तोड़ दिया तो नरक में जाऊँगा, तो ठीक है आज से सब माँसों का त्याग, इतना ही नहीं पाँच अणुव्रतों को स्वीकार करता हूँ और वह खदिरसार भील सभी प्रकार के पापों का त्याग कर प्राणों का अन्त कर देता है। उसके शरीर की अन्तिम क्रिया विधि संस्कार करके उसका साला जब अपने घर जा रहा था। मार्ग में फिर वही देवी रोती हुयी दिखायी दी, पूछा-देवी ! अब तुम क्यों रोती हो, मैंने तो उसे कौवे का माँस भी नहीं खिलाया, अब तो वह तेरा पति बन गया होगा। वह बोली-तुमने उससे मेरी कही सारी बातें कह दी थीं, तब उसने सभी अन्य माँसों का त्याग कर दिया था, अणुव्रतों को ग्रहण कर लिया था। इसीलिये उसने सौधर्म स्वर्ग के देवपद को प्राप्त कर लिया है। महानुभाव ! उसने प्राणों को छोड़ दिया किंतु नियम को नहीं छोड़ा।

सुकौशल मुनिराज पर उपसर्ग आया, उपसर्ग को समता से सहन करते रहे, केवली बन गये किंतु नियम नहीं तोड़ा, सुकुमाल मुनिराज को स्यालिनी अपने बच्चों के साथ तीन दिन तक भक्षण करती रही, तब भी वे ढिगे नहीं उपसर्ग को सहन करते रहे और अपनी साधना से अहमिन्द्र बन गये। गुरुदत्त मुनिमहाराज जिन पर रुई लपेट करके कपिल ब्राह्मण ने आग लगा दी, द्रोणगिरी से उनका मोक्ष हुआ। शरीर को छोड़ दिया किन्तु धर्म को नहीं छोड़ा। पाण्डवों को गर्म-गर्म लोहे के आभूषण पहनाये शरीर को छोड़ दिया किन्तु धर्म को नहीं छोड़ा तीन भाई युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन मोक्ष को प्राप्त हुये दो भाई नकुल सहदेव अपने भाई में राग की भावना रखने से सर्वार्थसिद्धि गये वे मोक्ष नहीं जा पाये। इसके साथ-साथ अभिनंदन आदि 500 मुनिराजों को घानी में पेलकर दण्डक राजा ने मरवा दिया किंतु उन्होंने चूँ तक नहीं किया, प्राण दे दिये समता के साथ, किंतु धर्म को नहीं छोड़ा। पार्श्वनाथ स्वामी ने उपसर्ग को सहन किया, उपसर्ग में केवली अवस्था को प्राप्त कर लिया किंतु धर्म को नहीं छोड़ा, सुदर्शन जिन्होंने गृहस्थ जीवन में भी बहुत उपसर्गों का सामना किया, मोक्षमार्ग में दीक्षा ले ली तब भी उपसर्ग कम नहीं आये और उपसर्गों का सामना करके पटना से मोक्ष को प्राप्त कर लिया।

श्री रामचन्द्र जी के ऊपर भी उपसर्ग आया था सीता का जीव जब उपसर्ग करने लगा तब उन्होंने रागान्वित होकर अपने परिणामों को गिराया नहीं अचल रहे अपने ध्यान में, वे गजकुमार मुनि जिनके सिर पर जलती सिगड़ी रख दी फिर भी अपने ध्यान से डिगे नहीं, अकम्पनाचार्य आदि 700 मुनियों पर घोर उपसर्ग हुआ वे अपने धर्म से डिगे नहीं।

धर्मघोष मुनिराज प्यास के मारे कण्ठ सूखता जा रहा है, गंगादेवी आयी सोचती है इन मुनिराज की मैं कैसे वैय्यावृत्ति करूँ क्या करना

चाहिये जिससे उनकी व्याकुलता दूर हो जाये, वह गंगादेवी जाती है विदेह क्षेत्र, सीमंधर स्वामी के समवशरण में और गणधर देव से पूछती है-हे प्रभो ! एक मुनिराज गंगा नदी के घाट पर तपस्या कर रहे हैं, आकुल व्याकुल हो रहे हैं, क्या करना चाहिये, लगता है प्यासे हैं, मैं पानी का लोटा लेकर पहुँची उन्होंने मेरे हाथ से वह पानी का लोटा नहीं लिया मुझे क्या करना चाहिये-गणधर परमेष्ठी ने समझाया-देखो देवी ! वे मुनिमहाराज हैं ऐसे आहार नहीं लेते उनकी आहार चर्या की वृत्ति अलग होती है, वे सिंहवृत्ति से जाते हैं। अभी उनका व्रत उपवास चल रहा है, उनका कंठ सूख रहा है, उनके परिणामों में आकुलता है, गंगा देवी बोली-तो मैं उनकी सेवा कैसे करूँ? गणधर देव ने बताया अभी बहुत गर्मी पड़ रही है जिससे उनके प्राण कण्ठ तक आ गये हैं, किंतु समता उन्होंने अभी तक छोड़ी नहीं है, समता छूट गयी तो हो सकता है दुर्गति भी संभव है इसीलिये तुम शीघ्रता से जाओ और कृत्रिम बादल तैयार करके उनके ऊपर बारिश कर दो, वह गंगा देवी जाती है और कृत्रिम बादल बनाकर घनघोर बारिश कर दी, मौसम ठंडा हो गया महाराज के मन में जो आकुलता-व्याकुलता हो रही थी उनके परिणामों में शांति आयी। अब न कंठ सूख रहा है और न अन्य कोई व्याकुलता है, महाराज ध्यान में संलग्न हो गये और चारों कर्मों को नष्ट करके अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञानी बन गये। वही मुनिमहाराज जिनके थोड़ी देर पहले कंठ में प्राण अटके हुये थे, आकुलता बन रही थी वे ही मुनिराज केवल ज्ञानी बन गये और चार प्रकार के देवों ने आकर के पूजा की, जयघोष किया गंधकुटी की रचना कर दी, केवली भगवान् की दिव्यध्वनि खिरना प्रारंभ हुयी।

महानुभाव ! इस देह की माटी पर मिटने वाले भी बहुत जीव हुये किंतु देह की माटी पर मिटने वाले अधो गति को प्राप्त हो गये और देश की माटी पर मिटने वाले हो सकता है मध्यम गति को प्राप्त

हो जायें, हो सकता है देवगति तक पहुँच जायें किन्तु जिन्होंने माँ के लिये अपने प्राण विसर्जित कर दिये 'माँ' अर्थात् जिनवाणी माँ के लिये प्राण दे दिये, धर्म के लिये प्राण दिये नियम से उन्हें स्वर्ग में उच्चासीन अवस्था प्राप्त हुयी या फिर कर्मों को नाश कर मोक्ष अवस्था प्राप्त की।

वास्तव में सत्यता तो ये ही है जो जिसके प्रति समर्पित है उसके लिये प्राण समर्पण कर दे तो समझो वास्तव में वह उसके प्रति समर्पित है। यदि धर्म के प्रति समर्पण है तो उसके वह भाव, वह क्रिया समाधिमरण कहलाती है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने लिखा-

धर्माय तनुविमोचन, माहुः सल्लेखनामार्याः।

आर्य पुरुष धर्म के लिये समता पूर्वक शरीर को छोड़ते हैं वह सल्लेखना कहलाती है।

अंतःक्रियादिकरणं, तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं, समाधि मरणे प्रयतितव्यम्॥

अंतरंग की क्रिया का और तप का फल है समाधिमरण। ऐसा सर्वज्ञ देव ने कहा है इसीलिये यदि धर्म के लिये अपने प्राणों को छोड़ता है तो समाधि मरण कहलाता है। महानुभाव! धर्म की रक्षा व अपने आत्म धर्म की रक्षा भी करना है और लोक में विद्यमान जिनशासन की भी रक्षा करना है। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो आत्मधर्म की रक्षा के लिये जिन शासन को मलिन भी कर देते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं जो जिन शासन की रक्षा के लिये आत्म धर्म में कटौती कर लेते हैं, पुनः प्राप्त कर लेते हैं। विष्णु कुमार मुनिराज ने जिनशासन की रक्षा करने के लिये, एक कदम नीचे रखा पुनः अपने आत्म धर्म को प्राप्त किया। ऐसे अनेक धर्मात्मा हुये जिन्होंने उपसर्गों को सहन किया। धर्म की रक्षा के लिये चेलना रानी रात्रि में

ही गयी मुनिराज के उपसर्ग को दूर करने के लिये कितने-कितने प्रसंग उल्लिखित हैं अपने शास्त्रों में।

महानुभाव ! यदि कोई देशभक्त है तो वह देश की सेवा चाहे जैसे हो करता है। गुप्त रूप से भी करता है। एक वृद्ध पुरुष ट्रेन से यात्रा कर रहा था, ट्रेन में और भी लोग थे। उसके सामने एक व्यक्ति बैठकर केला खा रहा था और छिलके वहीं गाड़ी में डाल रहा था। वह वृद्ध पुरुष उठा छिलके उठाये और अपने रूमाल में बांध लिये, लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कैसा पागल व्यक्ति है जो छिलके उठा कर रूमाल में बांध रहा है, दूसरी ओर देखा एक व्यक्ति मूँगफली खा रहा था छिलके नीचे डाल रहा था, वह वृद्ध पुरुष गया अपनी साफी से मूँगफली का कचरा आदि साफ किया और छिलके अपनी साफी में बांध लिये। लोग देख रहे हैं कि ये क्या कर रहा है, तभी एक युवा व्यक्ति ट्रेन में घुसा जिसके जूतों में कीचड़ आदि लगा हुआ था, वह जैसे ही गद्दी पर बैठा तो उस वृद्ध पुरुष ने अपनी जेब से अखबार निकाला और कहा मैं आपको थोड़ा कष्ट देना चाहता हूँ थोड़ा पैर ऊपर उठाना और अखबार निकालकर बिछा दिया, अब आप आराम से बैठ जाओ।

लोगों को यह सब कृत्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, कोई न कोई बात तो अवश्य है। लोगों की उत्सुकता बढ़ी और पूछा-आखिर बात क्या है आप यह सब क्यों कर रहे हैं ? उसने कहा देखो ट्रेन हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है, यहाँ पर आपने छिलके डाल दिये, यहाँ हममें से कोई भी व्यक्ति उससे फिसल सकता है, मूँगफली के छिलकों से गंदगी होगी। मैंने राष्ट्रीय सेवा में अपना जीवन लगाया है। तुम लोगों ने अपना जीवन किसके लिये लगाया है, ये तुम लोग ही जानो। महानुभाव ! क्या उस वृद्ध पुरुष जैसी हमारी भावना हो पाती है ? नहीं हो पाती। धर्म का कोई काम पड़ा हो तो जो काम स्वयं कर

सकते हैं वह स्वयं नहीं करेंगे, अपने अधीन नौकर को बुलायेंगे। अरे वह छोटा सा काम स्वयं भी किया जा सकता है।

विवेकानंद जी का नाम तो आपने सुना ही होगा, उन्हें बचपन में मिट्टी के खिलौनों से बहुत प्रेम था। संयोग की बात एक दिन वे अपने खिलौनों को बिछाकर सड़क के समीप बैठे हुये थे, वे खेलने में मस्त थे, अचानक सामने दृष्टि गयी वहाँ से चीफ मिनिस्टर की गाड़ी आ रही थी, वे दौड़कर गये उस गाड़ी के नीचे आते-आते एक बालक को बाल-बाल बचा लिया, यदि वे नहीं जाते तो नि:संदेह वह बालक मर गया होता, वे जैसे ही दौड़े खिलौने गिर पड़े और टूट गये। जिन खिलौनों से उन्हें बहुत प्रेम था, किंतु सामने का दृश्य देखकर हाथ के खिलौने पटक दिये और उस बालक को बचा लिया।

उस समय उनकी उम्र मात्र 12 वर्ष की थी। घर पहुँचे, माँ ने टूटे खिलौने देखे-पूछा अरे तू जिन खिलौनों के लिये लड़ता था वे सब क्यों तोड़ दिये? वे कुछ कहते उससे पहले ही पड़ौसी की महिला आ गयी अपने उस बालक को गोद में लेकर के कहने लगी-तेरे बेटे ने आज वो काम किया है जो काम एक भगवान् करता है। अगर आज ये नहीं होता तो मेरा बेटा नहीं बचता और सारी बातें बताती है। माँ ने पूछा बेटा-तुमने ये सब कैसे कर दिया-वे बोले माँ मैंने बस ये सोच लिया कि मेरे खिलौने माटी के हैं, इनमें मेरे प्राण बसते हैं ये टूट गये तो नये आ जायेंगे किंतु सामने वाले के प्राण जिस माटी में बसते हैं वे चले गये तो उसके प्राण कहाँ से आयेंगे। यह सोचकर के मैंने उसके प्राण बचाये थे। ऐसी भावना भाने वाला वह 12 वर्ष का बालक आगे चलकर संत की श्रेणी में आ जाता है।

महानुभाव ! वास्तव में हमारा मानवता के प्रति, देश के प्रति कितना समर्पण है। गोपालदास बरैया जी बहुत बड़े देशभक्त थे, एक

बार ट्रेन से यात्रा कर रहे थे, मुम्बई से आ रहे थे साथ में पत्नी और छोटा बालक था। पत्नी ने कहा-आज बेटे का जन्म दिन है, उन्होंने पूछा-कितने साल का हो गया, बताया-तीन साल का हो गया। तीन साल के बालक की आधी टिकट व आठ साल से ऊपर का हो तो पूरी टिकट लगती थी। गोपालदास जी कहते हैं तुमने पहले क्यों नहीं बताया मैंने तो बेटे की टिकिट ली ही नहीं, पत्नी बोली-अरे इतना तो चलता है, वे बोले-अरे-क्या चलता है, ईमानदारी रखना चाहिये, बेईमानी नहीं, उन्होंने टी.टी. को आवाज लगाई-टी.टी. आया उससे कहा-मुझे पता नहीं था मेरा बेटा आज ही तीन साल का हुआ है। मैंने अपनी व पत्नी की टिकट तो ले ली लेकिन बालक की नहीं ली आप लीजिये ये रुपये और बेटे की टिकट बना दीजिये।

टी.टी. ने कहा-टिकट की आवश्यकता नहीं मैं तुम्हारी ईमानदारी से बहुत खुश हूँ। उन्होंने कहा-दूसरा टी.टी. आकर मुझसे टिकट माँगेगा तब मैं क्या उत्तर दूँगा? वह बोला-कोई बात नहीं मैं ग्वालियर तक जाऊँगा और वह जैसे ही आयेगा मैं उसे बता दूँगा, वैसे भी तुम्हें तो मुरैना तक जाना है चिंता मत करो। वो बोले भईया मेरी यात्रा मुरैना तक नहीं आगे तक की है। मतलब ? जब मैं अगले भव में जाऊँगा तब भगवान् मुझसे पूछेगा कि तुमने बेईमानी क्यों की? चोरी क्यों की ? तब मैं क्या जबाव दूँगा। वह टी.टी. बहुत आश्चर्य चकित हुआ और वहाँ से चला गया।

गोपाल दास बरैया जी ने बाद में मुम्बई के रेलवे स्टेशन मास्टर के नाम क्षमा याचना पत्र लिखकर मनी ऑर्डर से जितना किराया बनता था वहाँ भेज दिया। उस पत्र को पढ़कर वह स्टेशन मास्टर दंग रह गया कि ऐसा व्यक्ति मैंने आजतक नहीं देखा। यह समाचार मंत्री तक भी पहुँचाया गया, उस समाचार को अखबार में छापा गया कि जैन इतने ईमानदार होते हैं कि बालक के तीन साल पूर्ण होते ही उसका चार्ज व पेनल्टी दोनों चीज दी। ऐसा उदाहरण यदि कहीं मिल

सकता है तो सिर्फ जैनियों में मिल सकता है अन्य किसी जगह नहीं। इसीलिये सरकार ने उस समय गोपालदास बरैया का रेलवे यात्रा पर टिकट फ्री कर दिया, कि यह परिवार कहीं की भी नि:शुल्क यात्रा कर सकता है यह व्यक्तित्व हमारे देश की निधि है, इन पर हमें नाज है।

महानुभाव ! ये कहलाता है समर्पण, देश भक्ति की भावना। क्या ये भावना हमारे चित्त में है? हम कहते जरूर हैं कि हम देश भक्त हैं, गुरुभक्त हैं, मातृपितृ भक्त हैं किंतु शब्दों के कहने से कुछ नहीं होता है, वास्तव में जब परीक्षा की घड़ी आती है उस समय कौन कितनी भक्ति दिखा पाता है, कौन कितनी निष्ठा से अपने कर्त्तव्यों का पालन कर पाता है वह तभी समझ में आता है।

महानुभाव ! हम कौन सी माटी पर मिटें-तीन प्रकार की माटी है-चाहे देश की माटी पर मिटने को तैयार हो जायें, चाहे शरीर की माटी पर किन्तु शरीर की माटी पर वे ही मिटते हैं जो प्राय:कर धर्मात्मा नहीं हैं। नहीं तो माँ जिनवाणी की रक्षा के लिये जो उनके धर्मसूत्र हैं उनको आत्मसात् करने के लिये अपने प्राण छोड़ने को तैयार हो जायें। यदि माँ जिनवाणी के लिये मिटने को तैयार हैं तब तो हम नि:संदेह परमात्मा बन जाऐंगे और देश भक्ति के लिये, संस्कृति की रक्षा करने के लिये मिटने को तैयार हैं तो हमें देवत्व मिल सकता है, किंतु शरीर की माटी के लिये मिटते रहेंगे तो बस नरक और तिर्यंचगति की ही यात्रा करनी पड़ेगी। अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक तीन यात्रा हैं जो भी यात्रा आपको पसंद आये उसे ही जीवन में चयन करना है, अपने जीवन में संकल्प लेकर उसी संकल्प के साथ आगे बढ़ना है। आप सभी लोग भी अपने कर्त्तव्यों को जानें, पहचानें, मानें, निश्चय के साथ उन कर्त्तव्यों का पालन करें ऐसी मैं आप लोगों के प्रति सद्भावना भाता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

प्रकरण 10

निन्यानवे का फेरफार

पड़े निन्यानवे के फेर में, भूले
हलवा पूरी, कैसे एक अशर्फी जुटाऊँ,
पोटली रही अधूरी।

निन्यानवे का चक्कर

संसारी प्राणी सुख चाहता है, चाहे सुख माता-पिता की सेवा करने से मिल जाये, चाहे सुख पत्नी को उचित बनाकर रखने से मिले, चाहे सुख बच्चों के भेष में प्रेम पूर्वक वार्तालाप करने से मिले, चाहे सुख प्रचुर मात्रा में धन प्राप्त करने से मिले, चाहे विपुल भौतिक साधन-सामग्री प्राप्त करके मिले, कैसे भी मिले सुख मिले। सुख की झलक तो दिखे, अरे अभी तो सुख की परछाई तक नहीं दिखी, कहाँ खोजूँ उस सुख को आखिर सुख है कहाँ समझ नहीं आता। ये सुख न जाने कैसी विचित्र चीज है दुनिया में सब चीज मिलती हैं, मिट्टी से लेकर रत्न तक मिलते हैं, खरीदे जाते हैं और भी महँगी औषधि भी मिलती है। छोटे से लेकर बड़े तक सभी प्रकार की सामान्य, विशेष, कीमती वस्तुयें मिलती हैं। इस दुनिया में झोपड़ी से लेकर महल तक दिखाई देते हैं, दुनिया में क्या नहीं है सब कुछ तो मिलता है। किंतु दुनिया में वह नहीं मिलता जिसे हम चाहते हैं।

हम जो चाहते हैं वह दुनिया में नहीं मिलता, जो दुनिया में मिलता है हम उसे चाहते नहीं हैं, किंतु जो भी दुनिया में मिलता है उसे ग्रहण करना पड़ता है। जिसे हम सहना नहीं चाहते उसे भी सहना पड़ता है, जिसे अपने मन में छिपा कर रखते हैं उसे भी कहना पड़ता है। कई बार इस जमाने की धारा में हमें भी बहना पड़ता है, कषायों के कुण्ड में इस आत्मा को दहना पड़ता है। आत्मा को दहन करने की प्रवृत्ति हो गयी है हमारी। हम सोचते तो ये हैं कि कब हमारी आत्मा को इन सभी विषय-कषायों के दूषण से मुक्ति मिलेगी किंतु सत्यता तो ये है कि आत्मा भी झुलस जाती है, आत्मा कष्ट व दुःख पाती है, वेदना का अनुभव करती है हम समझ नहीं पाते, न जाने क्यों उस कष्ट के मार्ग को छोड़ने में असमर्थ हो जाते हैं, कहते जरूर हैं-

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाये

किंतु जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत जितने भी प्राय:कर कार्य किये जाते हैं या तो विषयों का सेवन करने के लिये या कषायों का पोषण करने के लिये। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण किसी भी इन्द्रिय का विषय मिले, जो इन्द्रिय अनुकूल सामग्री है उसे प्राप्त कर मन में आनंद की कल्पना करते हैं। कषायों का पोषण करके, अन्याय मायाचारी का सहारा लेकर संसार में जो कोई भी दृश्यमान पदार्थ है जिसे आपका मन अच्छा कहता है, उसे प्राप्त करने की तीव्र भावना आपके मन में जाग्रत हो जाती है और ऐसे जाग्रत होती है जैसे जंगल में लगी अग्नि हवा लगने पर जाग्रत होती है, वृद्धि को प्राप्त होती है अथवा शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह एक-एक कला बढ़ती है वैसे ही जीवन में ज्यों-ज्यों पदार्थों की, साधनों की सम्प्राप्ति होती जाती है त्यों-त्यों नासमझ व्यक्ति उसमें उलझता चला जाता है।

समझ के बिना तो समय भी काटने से कटता नहीं है, समझ के बिना सामग्री भी दु:ख का कारण बन जाती है, समझ के बिना सामर्थ्य का दुरुपयोग हो जाता है, समझ के बिना साधन साधना के हेतु नहीं बन पाते। यदि समझ हो तो समय को सार्थक किया जा सकता है यदि समझ हो तो सामग्री का सदुपयोग किया जा सकता है। समझ हो तो साधन को साधना के रूप में प्रयोग किया जा सकता है, समझ हो तो यह आत्मा सम्यक्त्व, सम्यक्ज्ञान के माध्यम से संस्कारित होकर के सिद्धत्व को प्राप्त करने के लिये अग्रगामी हो सकती है। किन्तु एक समझ के बिना, नासमझ बनकर के अपना ही नाश कर बैठते हैं। समझ के बिना जो कुछ भी होता है सब मँझधार में दिखाई देता है, समझ के बिना दु:खों के बादल दिखाई देते हैं, समझ के बिना इष्टकारक पदार्थ भी अनिष्टकारक प्रतिभासित होते हैं।

आत्मा का हित करने वाला वैराग्य है, आत्मा का हित तो ज्ञान के माध्यम से होता है, किन्तु नासमझ व्यक्ति वैराग्य को दु:ख का कारण समझता है, नासमझ व्यक्ति ज्ञान को कष्टदायी समझता है। अरे कौन पढ़े, कौन समझे ? सब यूँ ही ठीक है, हमारा जैसा चलता है वैसा ठीक है, ये नासमझदारी बड़ी मुश्किल की चीज है और समझदार व्यक्ति के लिये संसार में कुछ भी न हो फिर भी वह प्रेमपूर्वक जीवन जीकर के अपने समय को सुखपूर्वक व्यतीत कर देता है, किंतु नासमझ व्यक्ति तो अपने समय को आर्त्तध्यान के साथ, संक्लेशतापूर्वक व्यतीत करता है।

काव्य शास्त्रविनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां, निद्रया कलहेन वा॥

जो बुद्धिमान पुरुष होते हैं वे काव्य शास्त्रों की रचना करने में, तत्त्वचर्चा करने में अपना समय व्यतीत करते हैं और मूर्ख प्राणी व्यसनों में, निद्रा में, कलह में व्यतीत करते हैं। नासमझ व्यक्ति उन्हीं साधनों को प्राप्त करके संक्लेशता बनाता है और समझदार व्यक्ति उन्हीं साधनों के माध्यम से विशुद्धि बढ़ाता है। नासमझ व्यक्ति वस्तु के अभाव में दु:खी होता है, रोता है, समझदार व्यक्ति उसका त्याग करके आनंद लेता है। नासमझ व्यक्ति वह है जो किसी भी वस्तु का सदुपयोग नहीं कर सकता और समझदार व्यक्ति वह है जो हर परिस्थिति को वरदान के रूप में स्वीकार कर सके।

एक व्यक्ति सकारात्मक सोच के साथ जी रहा है, वह कहता है-भगवान् मेरा बड़ा ख्याल रखता है, जो भी आवश्यकता पड़ती है मुझे दे देता है हे भगवान् ! तू धन्य है शुक्रिया-शुक्रिया।

दूसरा व्यक्ति इसी बात को सुनकर कहता है-चलो मैं देखता हूँ तेरे भगवान् को, जिसे तू बड़ा धन्यवाद दे रहा है क्या देता है तुझे।

सुबह से दोपहर हो गयी, वह फिर भी बैठा है, उसके सामने थाली रखी है, कोई व्यक्ति आया उसे दो रोटी व सब्जी उसमें दे गया, उसने देखा, कहा-वाह! भगवान् तू कितना ख्याल रखता है, तुझे पता है मुझे भूख लगी है तूने मेरे लिये भोजन भी भिजवा दिया तेरा क्या कहना। उसने भोजन से पहले आँख बंद कर भगवान् को धन्यवाद दिया इतने में वहाँ पर एक कुत्ता आया और उसकी थाली में से रोटी लेकर चलता बना और सब्जी को वहीं खा गया। सामने वाला व्यक्ति सोच रहा था अब जब ये अपनी थाली देखेगा तो भगवान् को गाली देगा क्योंकि रोटी तो कुत्ता लेकर भाग गया अब देखते हैं इसकी सोच क्या है। उस व्यक्ति ने आँख खोली और थाली देखकर खड़ा हो गया कहने लगा वाह भगवान् वाह तू सबका ध्यान रखता है मेरा भी तूने ध्यान रखा वैसे तो मैं उपवास करता ही नहीं आज तूने मुझे उपवास करने का मौका दे दिया, धन्य है तेरे लिये, तेरी लीला अपरम्पार है। वह व्यक्ति जो यह सब देख रहा था सोचने लगा-ऐसे व्यक्ति को कौन दु:खी कर सकता है।

जो व्यक्ति वस्तु के सद्भाव में सुख खोज सकता है और वस्तु के अभाव में भी सुख खोज सकता है। कि हे भगवान् ! तूने मुझे अकिंचन व्रत धर्म पालन करने का मौका दिया है, दरिद्रव्रत दिया है, लोग तो सम्पत्ति छोड़ के दरिद्रव्रत स्वीकार करते हैं मैंने तो कुछ छोड़ा नहीं सहज मौका मिल गया। संसार में ऐसे सैकड़ों-लाखों लोग हैं जिनके पास वह वस्तु नहीं जो मेरे पास है। यदि स्वास्थ्य ठीक है तो कितने लोग ऐसे हैं जो रोगी हैं और मुझे निरोगी बना दिया। अरे मेरा तो एक हाथ कटा है दुनिया में ऐसे कितने लोग हैं जिनके दोनों ही हाथ नहीं हैं।

तो जिसकी ऐसी सोच है उस समझदार व्यक्ति को दुनिया में कौन दु:खी कर सकता है। संसार में दु:ख का कारण तो नासमझी है।

वस्तु दु:ख और सुख का कारण नहीं है यह हमारी नासमझी है कि किसी वस्तु को पाकर हम दु:खी हो जाते हैं और किसी वस्तु को प्राप्त करके हम सुखी हो जाते हैं। ये दु:ख और सुख हमने अपनी कल्पनाओं पर आधारित किया है, दु:ख और सुख हमने परवस्तु को मान लिया है, और कई बार तो ऐसा होता है उस वस्तु की कल्पना करने से सुख मिलेगा, वस्तु मिल भी जाती है तब तक मन दूसरी वस्तु पर पहुँच जाता है, नहीं सुख इस वस्तु से नहीं इससे मिलेगा फिर ज्यों का त्यों दु:खी।

महानुभाव ! ये दु:ख और सुख बड़ी विडम्बना है। संसार में दु:ख और सुख तो कहीं कुछ है ही नहीं, ये तो लोग कहते हैं संसार में दु:ख है और दूसरे कहते हैं संसार जिसमें समीचीन सार भरा पड़ा है कोई कहता है संसार नि:सार है, असार है किन्तु जो समत्वभाव को धारण करने वाला योगी है वह कहता है संसार में न दु:ख है, न सुख है जो कुछ भी है वह मेरी आत्मा में है क्योंकि दु:ख और सुख आत्मा के स्वभाव हैं पुद्गल के नहीं हैं, ये जो आत्मा के शुद्ध स्वाभाविक या वैभाविक परिणाम हैं वे आत्मा में मिलेंगे। कई बार ऐसा भी देखा जा सकता है कि वह आत्मा वैभाविक परिणामों में सुख की कल्पना भी कर सकता है और दु:ख की कल्पना भी कर सकता है। सुख और दु:ख संसार में नहीं है, आत्मा में है किंतु जो संसार में देखता है वह मोही व्यक्ति है।

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान्पदार्थानां, यथा मदनकोद्रवैः॥

पूज्य आचार्य भगवन् पूज्यपाद महाराज लिखते हैं-जिसका ज्ञान मोहनीय कर्म के द्वारा ढक गया है, आवरणित है ऐसा व्यक्ति स्वभाव की ओर गति नहीं कर सकता। विभाव के खूँटे से जिसके जीवन की

नाव बंधी हुयी है, अब कितना भी प्रयास पुरुषार्थ किया जाये मिथ्यात्व के खूँटे से बंधी नाव सम्यक्त्व को कैसे प्राप्त करेगी। नकारात्मक सोच से बंधी नाव सकारात्मक किनारे तक कैसे पहुँचे। उस मोह से बंधी नाव मोक्ष तक कैसे पहुँचे, हमारी आत्मा पर तो मोह का पर्दा पड़ा हुआ है। जैसे कोंदों को खाकर के व्यक्ति मदोन्मत्त हो जाता है उसे फिर ख्याल नहीं रहता मैं क्या कर रहा हूँ क्या नहीं कर रहा हूँ, उचित अनुचित का भेद नहीं कर पाता। उस मोही, शराबी व्यक्ति को क्या कहें। एक शराबी व्यक्ति जिसके मकान के पास गर्मी के समय में प्रात:काल धूप आती थी और संध्याकाल छाया आती थी उसे प्रात:काल की धूप चुभती थी तो उसने सोचा क्या किया जाये-वह सोचता है मैं एक काम करता हूँ पहाड़ को ले आता हूँ इस मकान के पास, पहाड़ आ जायेगा तो छाया आ जायेगी, सोचता है पहाड़ कैसे खीचें, इतने में सूर्य जो पूर्व की ओर था अब पश्चिम दिशा की ओर हो गया छाया आ गयी। कहता है देखो मैंने इतना पहाड़ को ढकेल दिया कि मेरे मकान पर छाया आ गयी। सर्दी के समय पूर्व दिशा में प्रात:काल छाया होती है अब उसे धूप चाहिए तो सोचता है अब इस पहाड़ को अलग करना है सुबह से ढकेलना प्रारंभ करता है, शाम तक धूप आ जाती है तो कहता है मैंने पहाड़ ढकेल दिया, तो जैसी दशा उस शराबी की होती है ऐसी ही दशा उस मोही प्राणी की होती है।

मोही प्राणी कहाँ समझ पाता है कि हम सभी नाटक खेल रहे हैं इस संसार के रंगमंच पर आकर के। एक घर में आकर के हम पिता, पुत्र, पत्नी, पुत्री, चाचा, ताऊ आदि सब नाटक के पात्र हैं इन सभी का ये आवरण है। जैसे कपड़े मिले वैसा रोल करने लगे, अंदर से तो शरीर सब के एक हैं कपड़े सबके अलग-अलग हैं, ऐसे ही आत्मा सब की एक है शरीर रूपी वस्त्र सबके अलग-अलग हैं। ये शरीर रूपी वस्त्र उतरते ही यह रोल यहीं खत्म हो जायेगा।

महानुभाव ! इस समीकरण को यदि आप जान लो तो बहुत अच्छा है। ये हकीकत जिसको समझ आ जाये कि ये सब मिट्टी है, जो धनसम्पत्ति जोड़ ली वह भी माटी है, मकान-दुकान जो बना लिये हैं वो भी माटी है, जो कुछ भी मैं एक-एक सैकिण्ड में इकट्ठा करता चला जा रहा हूँ वह सब माटी है और माटी को माटी से धोना, माटी से माटी को माँजना, माटी को माटी से चमकाना इसमें कोई सार नहीं है।

आप आँख बंद करके थोड़ा आत्मा का ध्यान लगाओ अपना माथा परमात्मा के चरणों में चढ़ा दो, चाहे हाथ में श्रीफल हो या न हो अपना सिर ही श्रीफल है। अपनी निष्ठा, समर्पण, भक्ति, आत्मा का एक-एक प्रदेश भगवान् के श्री चरणों में चढ़ा दिया। आप समर्पित हो गये तो आपको सब कुछ मिल गया, केवल माटी पौद्गलिक को चढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। भगवान् के चरणों में तो तीन लोक की सम्पत्ति भी मिल जाती है, किंतु वह सम्पत्ति फिर भी माटी है जब तक कि आत्मा की निधि को प्राप्त न करोगे तब तक। भगवान् के चरणों में बाहर की माटी भी मिलती है और चेतना के गुण भी मिलते हैं जैसे किसान खेती करता है तो खेती करते समय उसे धान्य भी मिलता है और भूसा भी मिलता है, जितना ज्यादा धान्य होगा उतना ज्यादा भूसा भी आयेगा और यदि अनाज कम है तो भूसा भी कम है, तो ये बाह्य सम्पत्ति तो भूसे की तरह से है, आत्मा के गुणों को जानो, पहचानो, परखो, प्राप्त करने का पुरुषार्थ करो।

संसारी प्राणी दो चीजों में अटका हुआ है-

कान्ता कनक-सूत्रेण, वेष्टितं सकलं जेत्क।
तासु तेसु विरक्तो यो, द्वि-भुजा-परमेश्वरः॥

स्त्री और धन इन दो धागों ने पूरा संसार बांध दिया है। जो व्यक्ति इन दोनों से विरक्त हो गया वह दो हाथ वाला परमात्मा है।

वह दोनों हाथ लटकाकर खड़ा हो गया दिगम्बर मुद्रा में तो वह परमात्मा है। उसके न हाथ में कुछ है, न शरीर में कुछ है, न अंदर कुछ है वह दो हाथ वाला परमात्मा हो गया क्योंकि स्त्री से राग नहीं और कनक से भी राग नहीं। ये संसारी प्राणी दो के चक्कर में पड़ा है। जो दो के चक्कर में है वह धोखा खाता है। वे दोनों ही उसे धोखा देते हैं कौन? दौलत और औरत। दौलत वह है-जो दो लात मारती है आती है तो सामने से लात मारती है वह अकड़ जाता है, धन आते ही सीना तान के चलता है, जाती है तो पीछे से लात मारकर जाती है वह झुक जाता है, जमीन पर गिर पड़ता है। ये दौलत है दो लात मारने वाली, इस दौलत को यदि शुद्ध भावना से पर उपकार में लगा दिया, हजारों लाखों व्यक्तियों का धर्म ध्यान करने के लिए चाहे मूर्ति निर्माण, मंदिर निर्माण, तीर्थयात्रा, जीर्णोद्धार, शास्त्र प्रकाशन कहीं भी लगा दिया तब तो ठीक है।

और दूसरी चीज थी औरत यदि प्यार करना चाहे तो गले से लिपट जायेगी और रूठ जाये तो बस-मैं मर जाऊँगी, कुँए में गिर जाऊँगी, आग लगा लूँगी, जहर खा लूँगी, ट्रेन के नीचे आ जाऊँगी ये बहुत बड़ी आफत है। लक्ष्मी धन सम्पत्ति कम से कम गले से चिपकती तो नहीं है और रूठ जाये तो चुपचाप चली जाती है धमकाती नहीं है कि ऐसा-वैसा कर लूँगी। इसीलिए दौलत तो कम खतरनाक है, उससे ज्यादा खतरनाक तो ये औरत है, दौलत तो बस आते समय एक लात मारती है जाते समय रीढ की हड्डी तोड़कर चली जाती है किंतु औरत ज्यादा खतरनाक है। धन सम्पत्ति को चाहे जहाँ चुपचाप रख दो पर औरत तो मुश्किल है।

व्यक्ति इन दो कान्ता व कनक के चक्कर में अपना पूरा जीवन बर्बाद कर देता है। दौलत और औरत दोनों को मानकर न अपने तन का ध्यान रखता न तनुज का ध्यान रखता। वह व्यक्ति जो इन दो

लक्ष्मी में आसक्त है वह तीसरी लक्ष्मी मोक्षलक्ष्मी तक नहीं पहुँच पाता। जब तक उपरोक्त लक्ष्मी है तब तक संयम रूपी लक्ष्मी, आत्मध्यान रूपी लक्ष्मी व केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को भी प्राप्त नहीं कर पाता। दो के चक्कर में बढ़ता जाता है-बढ़ता जाता है और न जाने कहाँ तक पहुँच जाता है।

चलो एक बार एक क्षण के लिये आपकी बात मान भी ली कि आपकी स्त्री आज्ञाकारिणी है, मनोहारिणी, चित्ताकर्षक है किंतु फिर भी वह तुम्हें आत्मा का सुख नहीं दे सकती वह दु:ख का कारण है, राग तोड़ोगे तो दु:ख होगा, उससे दूर जाते हो तब भी दु:ख होता है, वह तुमसे दूर जाती है तब भी दु:ख होता है। धन सम्पत्ति भी माना कि आपके पास पर्याप्त है किंतु वह भी चिरकाल तक न रहेगी, शाश्वत न रहेगी वह छूटेगी, तुम्हें छोड़कर चली जायेगी, नहीं तो तुम उसे छोड़कर ये शरीर छोड़कर चले जाओगे, उसका भी वियोग है।

अंकों में जीव यहाँ से बढ़ता है। यदि अकेला आत्मा है तब तो ठीक है अपने में लीन है और यदि एक आत्मा शून्य का भी सहारा ले लेता है एक के साथ शून्य मिल गया तो दो हो गये (10) चाहे शून्य के रूप में उसने धन सम्पत्ति को जोड़ लिया या जीवन साथी को ले लिया, उन दोनों के चक्कर में बढ़ते-बढ़ते बढ़ता जाता है। और स्त्रियाँ चाहे 96000 भी हो जायें, धन सम्पत्ति चाहे छ: खण्ड की भी क्यों न हो जाये तृप्त नहीं हो पाता। यह तो अग्नि में घी डालने के समान है, धन सम्पत्ति चाहे कितना भी कमा लो फिर भी तृष्णा का अंत नहीं है, भोगों से भी तृप्ति नहीं। जो चक्रवर्ती नरक में गये उनसे पूछना क्या भोगों से तृप्ति हो गयी, जो स्वर्ग गये उनसे पूछना क्या जो छ: खण्ड का राज्य आपने भोगा, 96000 रानियों को भोगा क्या वास्तव में आप उनसे तृप्त हो गये, वे कहेंगे अरे तृप्ति काहे की इनसे तृप्ति होती है क्या। त्याग करने व वैराग्य में तृप्ति है राग में तो आग

ही आग है, इनसे जीवन में दाग ही दाग है, कैसी तृप्ति सब मूर्खता है।

जैसे अग्निकुण्ड में शीतलता नहीं होती ऐसे ही विषय भोगों में शीतलता कहाँ, जैसे नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता है ऐसे ही विषय वासनाओं को भोगते-भोगते मन संतृप्त नहीं होता है। संसार के समस्त पदार्थों को इकट्ठा कर दिया जाये तब भी तृप्ति नहीं होती। चाहे शरीर भले ही बूढ़ा हो जाये, किंतु ये तृष्णा पूरी नहीं होती। ये मन बूढ़ा नहीं होना चाहता है यदि भोग और मिल जाते तो और अच्छा होता। कई बार राजाओं महाराजाओं के बारे में पढ़ने में आता है 12-16 वर्ष से विवाह प्रारंभ होता है 60 वर्ष के हो जाते हैं तब तक शादी की भूख मिटती नहीं है। राजा इतना बड़ा हो गया बेटा हो गया, उसके भी बेटा अर्थात् पोता हो गया उसकी भी शादी हो गयी फिर भी दादा अभी शादी करने से मना नहीं कर रहा। आश्चर्य है नीतिकार कहते हैं-

ब्याह की चाह उठे मन माँहि तो पन्द्रह बीस पच्चीस लों कीजे,
तीस भये पैंतीस भये चालीस पचास में नाम न लीजे।
काम की चाह उठे मन माँहि तो, ज्ञान सुधारस ध्यान सु पीजे,
और साठ बरस में जी ललचाये तो जूता उतार कपाल में दीजे॥

यदि 60 साल में भी उसका मन बस में नहीं हुआ अभी भी वह तृष्णा का कीड़ा बना हुआ है तो उस व्यक्ति को अपना जूता अपने कपाल पर मारना चाहिये, धिक्कार है मेरे लिये मैं 60 साल में भी वासना को नहीं दबा पाया, और वे धन्य हैं जो 20-25 वर्ष की उम्र में बालब्रह्मचारी तपस्वी बन गये।

तृष्णा व्यसनों की भी बढ़ती है व धन की भी बढ़ती है और इनकी तीव्रता व्यक्ति में पायी जाती है या तो व्यक्ति विषयों में अंधा हो जाता है या धन में अंधा हो जाता है। यदि पत्नी में आसक्त है तो

धन की चिंता नहीं करता धन गँवा देता है और यदि धन के पीछे पड़ता है तो पत्नी चाहे बीमार पड़ी है या मृत्यु को प्राप्त हो रही हो तू जाने तेरा काम जाने मैं धन कमाना नहीं छोड़ सकता। चाहे दिन हो या रात बस धन-धन-धन और जिसको पत्नी व धन दोनों से विरक्ति हो गयी वही तो धन्य है। जिसका राग नष्ट हो गया विषयों के प्रति, चाहे कैसी भी स्त्री हो जब राग ही नहीं है तो कोई उसे बांध नहीं सकता और जब राग ही नहीं है तो क्या करेगा धन का, वह तो माटी है, इनसे विरक्ति हो गयी वह तो पंचमकाल का भगवान् हो गया।

महानुभाव ! दो के अंक में यदि अधिकतम नंबर आते हैं, सबसे बड़ी दो अंकों की संख्या होती है '99' निन्यानवे। व्यक्ति जैसे-जैसे आगे बढ़ता है और बढ़ना चाहता है किन्तु कहाँ तक बढ़कर जाये, वह सौगंध खाकर बैठा है तीसरा अंक मैं लूँगा नहीं, इन दो अंकों को छोड़ूँगा नहीं, इन दो अंकों में सौ (100) करके रहूँगा। और 100 तो कभी दो अंक में होते नहीं, तीन अंक में ही 100 होते हैं। क्योंकि तीन अंकों की सबसे छोटी संख्या 100 है। सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। पर तुम तो सौगंध खाकर बैठे हो कि मैं दो अंकों में ही 100 करके रहूँगा। दो अंकों में सौ तो तीर्थंकर आदि भी कर न पाये उनको भी गृहत्याग करके जंगल में जाना पड़ा। दो अंकों में दो चीज सम्यक् दर्शन सम्यग्ज्ञान तो प्राप्त हो गयी थीं घर में रहते हुये किंतु तीसरा अंक प्राप्त करने के लिये ये दो अंक छोड़ने पड़े। घर का सुख चाहे स्त्री संबंधी सुख चाहे धन संबंधी सुख वह सब छोड़ना पड़ा था तब मिला था आत्मा का सुख। जब आत्मा का सुख मिल गया तब मन वचन काय के सब सुख वहाँ मिल गये थे। जहाँ आत्मा का सुख नहीं है वहाँ एक भी सुख नहीं है क्योंकि एक आत्मा का सुख मिलते ही स्त्री और धन सम्पत्ति दोनों शून्य हो गये और जब दोनों शून्य हों अकेली आत्मा हो तो आत्मा आत्मा का अनुभव कर सकती है।

महानुभाव ! दर्शन और ज्ञान दो के माध्यम से मुक्ति नहीं मिलती कर्मों का क्षय नहीं होता। केवल आप जान सकते हैं कि मैं शक्ति रूप से परमात्मा हूँ, केवल मान सकते हैं किंतु केवल जानने-मानने से परमात्मा का अनुभव नहीं होता जब तक परमात्मा के मार्ग पर चलोगे नहीं। वह क्षयोपशम ज्ञान जब तक क्षायिक ज्ञान में, सम्यग्दर्शन क्षायिक दर्शन में न बदलेगा तब तक क्षायिक चारित्र की प्राप्ति न होगी और तीनों क्षायिक जब तक न होंगे क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक ज्ञान और क्षायिक चारित्र तब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती कर्मों का क्षय नहीं होता।

ये निन्यानवे का चक्कर बहुत खराब है। वैसे तो 'चक्कर' ही खराब है। चलता चलता व्यक्ति कभी थकता नहीं है। यदि उसे एक जगह बस घुमाये ही जाओ तो चक्कर लगाते-लगाते उसे चक्कर आ जाते हैं वह मूर्च्छित होकर के गिर पड़ता है। तो व्यक्ति चक्कर लगाता है इसीलिये संसार में गिर पड़ता है, यदि चक्कर न लगाये तो कोई बात नहीं, चक्कर लगाने वाला व्यक्ति कहीं पहुँचता नहीं है। सूर्य चन्द्रमा के विमान अनादि काल से चक्कर लगा रहे हैं, अनंतकाल तक लगाते रहेंगे।

चक्र दो प्रकार के होते हैं-एक तो वह जो अपनी धुरी पर केन्द्र पर ही चक्कर लगाते हैं और दूसरा बाहर में चक्कर लगाना, जो चाहे किसी धुरी पर चक्कर लगा रहा है, चाहे किसी परिधि पर चक्कर लगा रहा है, चक्कर लगाने वाला कहीं पहुँचता नहीं है। हम भी अभी संसार में चक्कर लगा रहे हैं, 84 लाख योनियों में यहाँ से वहाँ घूम रहे हैं चलते जा रहे हैं। जैसे किसी माला में 84 लाख मोती हों और एक चेन सी चलती चली जा रही है, बढ़ती जा रही है और वहीं चक्कर लगा रही है। हम भी ऐसे ही 84 लाख योनि में चक्कर लगा रहे हैं यदि अपना मुख मोड़ लें परिधि से केन्द्र की ओर तो केन्द्र पर

पहुँच सकते हैं और बाहर की ओर मोड़ लें तो बाहर की ओर पहुँच सकते हैं। अपनी धुरी पर चक्कर लगाते-लगाते थोड़ी देर के लिये रुक जायें तो संभव है चक्कर आना थोड़ा कम हो यानि हमें हमारी आत्मा में ठहर जाना चाहिये, अभी तो हमारा मन बार-बार घूमता है, हमारा शरीर भी परिभ्रमण कर रहा है 84 लाख योनियों में और हमारा मन भी इष्ट अनिष्ट पदार्थों में घूमता जा रहा है अपनी धुरी पर किंतु ये रुक नहीं रहा है, रुक जाये तो अपने आत्मा के स्वभाव को जान सकता है।

आप लोग ऐसे तो नहीं हैं, जो दो अंकों में 100 करना चाहते हों। जो दो अंकों में 100 करना चाहते हैं वे कभी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाते। जो ये स्वीकार कर लेते हैं कि दो अंकों में 100 नहीं होंगे, 100 की प्राप्ति के लिये मुझे 99 का चक्कर छोड़ना पड़ेगा, दोनों 9-9 के अक्षर (अंक) छोड़ने पड़ेंगे पुनः इसके बदले में डबल जीरो व एक लेना पड़ेगा, और 99 में एक मिलते ही (99+1=100) वह डबल जीरो अपने आप हो जाता है कुछ करना नहीं पड़ता है।

एक अवन्ति नाम का देश था उस देश में उज्जैनी नाम की नगरी थी, वहाँ भूपाल नाम का राजा राज्य करता था और उसी नगरी में श्री पाल नाम का श्रेष्ठी रहता था। भूपाल राजा की रानी का नाम विश्वम्भरा व श्रीपाल श्रेष्ठी की पत्नी का नाम धनवती था। उसी नगर में एक भद्रमित्र नाम का ब्राह्मण रहता था, भद्रमित्रा नाम की उसकी ब्राह्मणी थी। राजा भूपाल बहुत सम्पन्न था व श्रीपाल भी श्रेष्ठी था, धन दोनों के पास पर्याप्त था किंतु राजा अभी भी भूखा था धन के लिये व रानियों के लिये, इसीलिये आये दिन अपनी सेना लेकर कभी किसी नगर, किसी देश पर चढ़ाई करता था व लूटकर धन लाता था, वहाँ की कन्याओं को लाता था। इधर श्रीपाल सेठ भी बड़ा नगर श्रेष्ठी होने के बावजूद भी गरीब, चिन्तातुर, दुःखी था, सुख तो जैसे उसके

पास आता ही नहीं था जैसे किसी ने उस सुख के पैर बांध दिये हों या उस सुख ने सौगंध खा ली हो कि मैं तेरा मुँह देखूँगा ही नहीं। धन सम्पत्ति आदि सब कुछ था किंतु शांति नहीं थी।

संयोग की बात उस श्रीपाल श्रेष्ठी की हवेली के सामने एक छोटा सा आश्रम व भगवान् का मंदिर था, वहाँ वह भद्रमित्र व भद्रमित्रा ब्राह्मण-ब्राह्मणी रहते थे। वे बहुत मस्त, भगवान् की भक्ति में लीन रहते। सुबह दोनों नगर में चले जाते, एक मुट्ठी-दो मुट्ठी जो कुछ भी आटा मिला उसके माध्यम से दोनों भोजन पानी करते व चैन से रहते। कभी-कभार लोग उन्हें वहीं आटा आदि देने आ जाते थे तो उन्हें माँगने को नहीं जाना पड़ता था। एक दिन के लायक आटे से ज्यादा यदि कोई दूसरा व्यक्ति देने आये तो उससे मना कर देते थे।

श्रीपाल श्रेष्ठी ने बहुत प्रयास किया सुख शांति मिले, किंतु वह एक नंबर का कंजूस था। वह किसी संत-महात्मा के पास पहुँचा कहा-मैं दु:खी हूँ मुझे कहीं सुख शांति नहीं मिलती, उन महात्मा ने कहा-तू एक काम कर तेरी हवेली के सामने भद्रमित्र ब्राह्मण रहता है उसे चार चुटकी आटा गुड दे आओ। वह सोचता है चार चुटकी क्यों तीन दे दूँ तो क्या दिक्कत है। चलो कोई बात नहीं एक छोटा बालक बुलाया और उससे चार चुटकी आटा निकलवाया और लेकर उस ब्राह्मण के यहाँ गया। उसने जाकर आवाज लगायी-वह भद्रमित्र तो अपनी पूजा-भक्ति में लीन था। पुन: आवाज लगायी तो वह आया और कहा-अरे क्यों मेरे पूजा-पाठ में विघ्न डाल रहे हो? श्रीपाल ने कहा-अरे भाई ! मैं विघ्न डालने नहीं आया मैं तो तुम्हारी व्यवस्था बनाने आया हूँ, ये आटा-गुड़ लेकर आया हूँ। ब्राह्मण ने मना कर दिया मेरे पास है मुझे न चाहिये। उसने अपनी ब्राह्मणी भद्रमित्रा को आवाज लगायी ये व्यक्ति कुछ देने के लिये आया है वह अंदर से ही बोली-नहीं स्वामी नहीं चाहिये आज के लिये तो है।

श्रीपाल ने कहा-अरे ले लो शाम के काम में आ जायेगा, उन्होंने कहा-हम एक बार ही भोजन करते हैं। सेठ ने कहा-तो कल के लिये रख लो कल काम में आ जायेगा तो ब्राह्मण ने कहा अगर कल तक जीयेंगे तो भगवान् दुबारा भेज देगा। यह सुनकर उसे बहुत आश्चर्य होता है और अपना आटा-गुड़ लौटा कर वापस ले आता है। वह सोचने लगा-महात्मा जी ने तो इसको देने के लिए कहा था, किंतु आश्चर्य है ये तो कुछ लेता ही नहीं है फक्कड़ है, मस्त है चेहरे पर कोई शिकन नहीं है। छोटी सी झोंपड़ी व मंदिर है, इसके पास तो सम्पत्ति के नाम पर कुछ भी नहीं है।

वह दूसरे महात्मा के पास जाता है-कहता है महात्मा जी वे ब्राह्मण-ब्राह्मणी मेरी हवेली के सामने रहते हैं, कुछ नहीं है उनके पास फिर भी हमेशा मुस्कुराते रहते हैं। मेरे पास तो इतनी बड़ी हवेली है, धन सम्पत्ति है फिर भी मैं दु:खी का दु:खी हूँ। वह बोला महात्मा जी आप एक काम कर दो-ये ब्राह्मण-ब्राह्मणी थोड़े से दु:खी हो जाए, तो मेरे चेहरे पर थोड़ी सी खुशी दिखायी पड़ जायेगी, इनको हँसता हुआ देखता हूँ तो मेरा चेहरा मुरझा जाता है। महात्मा जी ने कहा-उसका एक उपाय है, तुम एक काम करो उनके घर में 99 रु. की पोटली डाल दो। उसने 99 रु. एक पोटली में बांधे और रात्रि में पोटली उनकी झोंपड़ी में डाल दी। प्रात:काल भद्रमित्रा उठी, उसने वह पोटली देखी तो भद्रमित्र से बोली देखो भगवान् ने हमारे लिये पैसे भेजे हैं, उन्होंने गिने तो 99 रु. निकले। भद्रमित्र ने कहा ये तो 99 हैं अरे पूरे 100 ही दे देते। भद्रमित्रा ने कहा-अरे पूरे भगवान् ही दे देगा तो तुम क्या करोगे? तुम्हारे हाथ-पाँव नहीं हैं क्या? थोड़ा तुम कमाओ पूरे 100 हो जायेंगे। वह बोला-बात तो तू ठीक कहती है।

अब क्या हुआ-दान दक्षिणा में जो आटा आता था वे उसमें से थोड़ा-थोड़ा बचाने लगे, क्योंकि एक सिक्का चाँदी का और बढ़ाना

है अब तो जो खाया हुआ भोजन था वह भी उनके अंग न लगे, भक्ति में मन कैसे लगेगा, चिंता जो लगी है सात दिन हो गये। उनके चेहरे मुरझा गये, सेठ अपनी हवेली में बैठा-बैठा बहुत खुश हो रहा है, महात्मा जी अच्छी विधि बतायी। वे तो सूखते जा रहे हैं और सेठ का खून बढ़ता चला जा रहा है। ब्राह्मण ने थोड़े दिन में 100 रु. कर लिये, अब उनके मन में आ रहा है कि 100 अच्छे नहीं होते शगुन तो 101 रु. का होता है अगले महीने तक 101 कर लिये। फिर सोचते हैं 101 के बीच में तो जीरो आता है 111 रु. कर लेते हैं और एक साल में हालत ये हुयी कि धर्म-ध्यान तो सब छूट गया और पड़ गये 111 रु. को बढ़ाने के चक्कर में।

वह सेठ पुन: उन्हीं महात्मा के पास गया। महात्मा ने पूछा-बताओ अब कैसा हाल है? वह बोला महात्मा जी बड़ी खुशी है बड़ा आनंद है। पूछा क्यों? वो यूँ कि उनकी दशा तो बहुत बिगड़ गयी है वे बहुत परेशान हो गये। एक दिन भद्रमित्र व भद्रमित्रा उन्हीं महात्मा के पास गये और कहा-हम बहुत परेशान हैं हमारा धर्म ध्यान सब छूट गया अब हमको क्या करना चाहिये, उन्होंने कहा वह 99 रु. की पोटली तुम नदी या कुँए में कहीं भी डाल आओ। वे दोनों गये और पोटली फेंक दी। कहा-जिस 99 ने हमारा धर्म ध्यान छीन लिया, हमे ऐसा निन्यानवे (धन) न चाहिये।

महानुभाव ! निन्यानवे का चक्कर वास्तव में बहुत बुरा चक्कर है, यदि 100 होते तो मन में तृष्णा नहीं जागती, एक होता तो भी नहीं जागती सोचता अरे अब 1 के 100 कौन करेगा, एक रु. तो ऐसे ही खर्च कर दो या 90 हैं तो कौन 10 जोड़ेगा। हाँ यदि निन्यानवे हैं तो व्यक्ति के मन में आता है अरे एक ही तो कम है, एक तो हम कहीं से भी जोड़ लेंगे और सौ कर लेंगे। तो वास्तव में ये 99 का चक्कर बहुत बुरा है।

अपने जीवन में भी ऐसा लगता है कि सफलता सामने है बस ये काम हो जाये तो सुख शांति मिल जायेगी, ये काम हो जाये तो ऐसा हो जायेगा, जैसे संसार के सभी काम तुम्हारे मन के अनुसार ही चलते हैं, तुम्हारे मन में जो काम आ रहा है वो काम वैसे ही होता चला जायेगा। अरे तुम्हारे मन से कुछ नहीं चलता है, तुम्हारे भाग्य में तुमने जैसे कर्म किये हैं वैसा ही मिलता है। व्यक्ति सोचता है कुछ, होता कुछ उल्टा ही है। जोड़कर रखे 2-4 लाख किसी अन्य कार्य के लिये और पड़ गया बीमार सारा जमाया हुआ वहीं खर्च हो गया फिर ज्यों की त्यों जीरो। फिर आगे बढ़ा, फिर जोड़ कर कुछ तैयार किया फिर कोई अन्य कारण लग गया चोरी हो गयी या घाटा लग गया तो फिर नष्ट हो गया फिर ज्यों की त्यों। फिर चढ़ता है पुनः गिर जाता है, इसी तरह होता रहता है। मिलना उतना ही है जितना भाग्य में है इस निन्यानवे के चक्कर में मत पड़ो, इस निन्यानवे के चक्कर में पड़कर आज तक कोई सुखी नहीं हुआ। थोड़ा-थोड़ा करके संतोष रूप से यदि खाते जाओगे तो दिक्कत नहीं है किंतु एक बार पूरा गटकने का प्रयास किया तो पकड़े जाओगे।

एक वृद्धा माँ अपने फलों के बगीचे की रखवाली करती थी, उसने वहीं एक मिट्टी की सुराही रख रखी थी और वहीं थोड़ा सा चना, गुड़ आदि रख रखा था। बड़ी बूढ़ी थी सोचती कौन बनाये वहीं वह थोड़ा चना व गुड़ खाकर अपनी क्षुधा शांत कर लेती। एक दिन बंदरों की टोली वहाँ आ गयी और ऊधम करने लगे, पानी फैला दिया और देखा कि यहाँ तो गुड़ चना भी रखा है फिर तो बंदरों के मजे ही आ गये, उनमें से जो सबसे तगड़ा बंदर था वह उस सुराही को ले गया और हिलाने लगा, हिलाने पर तो एक-एक, दो-दो चना ही निकल के आ रहे थे, बंदर ने सोचा हाथ डालकर मुट्ठी बांधकर निकाल लूँ, उसने जैसे ही हाथ डाला और मुट्ठी भर कर हाथ

निकालना चाहा तो हाथ चला तो गया किंतु मुट्ठी जैसे ही बांधी तो मोटा हो गया अब वह उस सुराही में से निकल नहीं पाया, अब बंदर खूब रोये चिल्लाये वह सोचने लगा इस बूढ़ी अम्मा ने इस सुराही में भूत बंद कर रखा है और इस भूत ने मुझे पकड़ के रखा है वह रोता है चिल्लाता है, किंतु उसका हाथ नहीं छूटता वह और सब बंदरों को बुलाता है मेरा हाथ छुड़ाओ इसमें कोई भूत छिप कर बैठा है।

महानुभाव ! ये दशा बंदर की नहीं अपनी भी यही दशा है जब मुट्ठी बांधकर किसी को पकड़ते हैं तो हमारी मुट्ठी वहीं पकड़ में रह जाती है और मुट्ठी खोल दें तो हाथ निकलने में देर नहीं लगती। लोभ मन में न रखो तो हाथ निकल आयेगा। वह बंदर तो वास्तव में मूर्ख था। हम तो मानव हैं, समझते हैं जब-जब भी हम मुट्ठी बांधेंगे, जब-जब भी हम पकड़ कर कुछ रखेंगे तब-तब हमारे अंदर अकड़ आयेगी और अकड़ आयेगी तो हम पकड़े जायेंगे, और जब-जब भी हम मुट्ठी खोल देते हैं तो निराकुलता के साथ चले जाते हैं। यदि मुट्ठी जीते जी खोल दें तब तो अच्छी बात है। जीते जी मुट्ठी खोल देंगे तो तुम्हारे दोनों हाथ भरे रहेंगे, अंजुली भर-भर कर आहार मिलेगा, बहुत मिलेगा और मुट्ठी आपने जीते जी नहीं खोली तो अंत समय में दोनों मुट्ठी खुल जायेंगी तब यूँ ही सब पड़ा रह जायेगा।

ये निन्यानवे का चक्कर वास्तव में बहुत बुरा चक्कर है

जहाँ लाहो तहाँ लोहो लाहो लोहो बड्ढदि।

जीवन में ज्यों-ज्यों लाभ होता है त्यों-त्यों लोभ की वृद्धि होती चली जाती है। एक रुपया से दो, दो से चार, चार से छः, दस, सौ, हजार, दस हजार ऐसी तृष्णा बढ़ती चली जाती है। किंतु जो व्यक्ति संकल्प ले लेता है परिग्रह परिमाण व्रत का, चाहे कितना बढ़े या घटे, इससे ज्यादा मैं नहीं रखूँगा, निकालता जाऊँगा। मेरा काम इतने से चल

जाता है बस। जिस व्यक्ति के पास दस करोड़ रुपया है भरोसा नहीं है कब पाप का उदय आ जाये और उसके पास दस पैसा भी न बचे। भले ही आज पैसा है किंतु फिर भी उसका मन धर्म में नहीं लग रहा, वह अपना धन धर्म में नहीं लगा पा रहा। लाखों रुपयों का घाटा लग गया, कहता है महाराज लाखों रु. डूब गये, भाई कैसे डूब गये तुम्हारे पास थे तभी तो डूब गये और दस करोड़ में से तुम 10 लाख भी दान कर देते तो तुम्हारा भी नाम हो जाता या ऐसा कोई काम कर देते, भरतचक्रवर्ती जैसा अथवा चामुण्डराय जैसा काम विशाल प्रतिमा बनवा देते। महानुभाव ! 10 करोड़ डूब तो सकते हैं किन्तु 10 लाख धर्म में नहीं लग सकते। जिसने जितना बड़ा दान दे दिया होगा तो उसे जीवन में घाटा सहन करने का अवसर नहीं आया होगा।

कहने का आशय यह है 99 का चक्कर छोड़कर 100 की यात्रा करना है। 100 की यात्रा का नाम है 'धर्म की यात्रा' और निन्यानवे की यात्रा है 'लोभ व तृष्णा' की यात्रा। तृष्णा, लोभ व मोह को छोड़कर के धर्म की शरण को प्राप्त करो, धर्म के माध्यम से ही प्राणी मात्र का कल्याण होता है। हमारा और आपका सबका कल्याण धर्म के माध्यम से ही होगा इसीलिये हम और आप सभी उस धर्म की शरण को प्राप्त करें यही आप सबके प्रति मैं मंगल भावना भाता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

200

प्रवचन 11

ममता में क्रूरता क्यों ?

जिस माँ के वात्सल्य को गाते
वेद पुराण, माँ से हत्यारिन बनी,
ले बेटी के प्राण।

ममता में क्रूरता क्यों ?

जब से यह सृष्टि है तब से इस सृष्टि पर अच्छाई और बुराई अनादिकाल से हैं जब से यह सृष्टि है तब से दिन और रात अनादि काल से हैं, तब से पुण्य और पाप अनादिकाल से हैं। कोई भी वस्तु जो पहले नहीं थी उसे उत्पन्न नहीं किया जा सकता और ऐसा भी नहीं किया जा सकता है कि जो वस्तु अनादिकाल से हो उसे नष्ट कर दिया जाये। संसार में जो कुछ भी है सब शाश्वत है दु:ख भी, सुख भी, अच्छाई भी, बुराई भी, प्रकाश भी, अंधकार भी, द्रव्यगुण भी, पर्यायगुण भी शाश्वत हैं। स्वभाव और विभाव शाश्वत हैं। एकान्तत: न तो वस्तु पूर्णत: अच्छी दिखाई देती है और न पूर्णत: बुरी दिखाई देती है। किसी भी वस्तु को ज्यादा से ज्यादा अच्छी नहीं कह सकते क्योंकि ज्यादा अच्छी हो गयी तो वह वस्तु सामान्य व्यक्ति के काम की वस्तु नहीं रही। जो कम अच्छी है वह सामान्य व्यक्ति के लिये तो कार्यकारी है किन्तु उससे ऊपर वाले के लिये पूर्ण संतुष्टि देने वाली नहीं है। इसीलिये संसार की सभी वस्तुओं को सर्वप्राणियों के लिये सर्व उपादेय नहीं कह सकते हैं।

संसार की किसी भी वस्तु को प्राणी एक मत से प्रशंसनीय नहीं कह सकते। यहाँ तक कि परमात्मा को भी नहीं, क्योंकि संसार में यह भी देखा गया है कि सुबह उठकर एक व्यक्ति तो भगवान् की पूजा कर रहा है और एक व्यक्ति भगवान् से कह रहा है कि हे भगवन् ! तू कितना दुष्ट है कि तूने मुझे इतना गरीब बना दिया, वह सुबह से भगवान् की निंदा करता है। एकान्तत: देखा जाये तो प्रभु परमात्मा के उपासक भी नहीं मिलेंगे। तो संसार में कोई भी चीज ऐसी नहीं कही जा सकती है जिसके बारे में सम्पूर्ण जीव राशि एक मत होकर कह सके कि यह सर्वथा बुरी ही बुरी है और ऐसा भी नहीं कहा जा

सकता कि यह सर्वथा अच्छी ही अच्छी है। जो किसी एक को आज अच्छी लग रही है वह कल किसी एक को बुरी भी लग सकती है।

प्रकृति का कभी उल्लंघन नहीं किया जा सकता। प्रकृति अलंघ्य है, जब-जब भी किसी ने प्रकृति का उल्लंघन करने का दु:साहस किया है तब-तब उसने अपने वैभाविक परिणाम के फलस्वरूप उन यातनाओं को, पीड़ाओं को, वेदनाओं को, कषायों को, आपत्तियों को झेला है जो उसे नहीं झेलना चाहिये। किन्तु व्यक्ति जब-जब अपनी मर्यादा में, अपनी सीमा रेखा में, अपनी हद में और अपने आपे में रहा है तब-तब व्यक्ति सुख और शांति के साथ रहा है। उसे वह सब कुछ अनुभव हुआ है जिसके लिये सामान्य व्यक्ति तरसता है। उसे वह हर चीज उपलब्ध हुयी है जो उपलब्धि हर को नहीं हो सकती, उसने वह सब कुछ प्राप्त कर लिया है जिसे प्राप्त कर आगे कुछ और प्राप्त करना शेष नहीं रहता। महानुभाव ! आज हम थोड़ी सी चर्चा करेंगे नारी के विषय में।

नारी का अर्थ नि:संदेह आप लोग जानते हैं-वैसे तो नीतिकारों ने स्त्री शब्द की व्याख्या करते हुए उल्टा ही व्युत्पत्ति अर्थ निकाला। उन्होंने कहा-

नारी कौन ? जिसके समान कोई अरि न हो।

महिला कौन ?-जो महि अर्थात् मिट्टी में मिला दे।

वधू कौन ?-जो वध का कारण बने।

कुमारी कौन ?-जो कुमरण कराये।

अबला कौन ?-जो बलहीन कर दे।

बामा कौन ?-जो हमेशा टेडी-टेडी चले।

किन्तु नारी क्या है इसे हम समग्र दृष्टि से देखने का प्रयास करें-

एक आँख से देखने वाले व्यक्ति को वस्तु पूर्ण दिख रही है या नहीं यह व्याख्या तो हम बाद में करेंगे किन्तु लोक व्यवहार में वह एक आँख से देखने वाला काना व्यक्ति अपशकुन है, वह मंगलमय नहीं माना जाता चाहे दाहिनी आँख से देखे या बायीं आँख से। चाहे श्याम पक्ष से देखे या धवल पक्ष से। एक ही पक्ष से देखने वाला व्यक्ति, एक ही अक्ष से देखने वाला व्यक्ति लोक व्यवहार में प्रशंसनीय नहीं है। वह काना कहलाता है और सवेरे-सवेरे दिखाई दे जाये तो व्यक्ति कहेगा कहाँ से दिखाई दे गया-पता नहीं शाम तक रोटी मिलेगी या नहीं। तो इसीलिये किसी विषय वस्तु को देखें तो एकाक्षी होकर न देखें। हम द्वि अक्ष, उभय पक्ष देखने का भाव रखें। तो नारी की परिभाषा इस प्रकार से भी तो रूपायित की जा सकती है-

यस्या अरि न विद्यते सा नारी-जिसका संसार में कोई भी शत्रु नहीं है वह नारी है अथवा-**या कस्याऽपि अरि न भवति सा नारी**-जो कभी भी, किसी की भी, कहीं भी शत्रु नहीं होती वह वास्तव में नारी होती है।

आचार्य शुभचन्द्र स्वामी ने ज्ञानार्णव ग्रंथ में नारी की बड़ी प्रशंसा की है-जो शीलवान्, धर्मवत्सला, संयमी, साधिका, कल्याणकारिणी, कल्याणदायिनी, ज्ञानअर्थिका नारियाँ हैं उनसे यह पृथ्वी सुशोभित है, पूज्यनीय है। सर्वथा नारी निंदा की पात्र नहीं है, सर्वथा नारी भोग्या नहीं है, सर्वथा नारी पुरुष के पैरों की जूती नहीं है, सर्वथा नारी पुरुष की पद-रज नहीं है सर्वथा ये उपेक्षणीय नहीं है।

आचार्य मानतुंग स्वामी क्या कह रहे हैं-नारी के संबंध में

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र रश्मिम्,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुर दंशु जालम्॥

संसार में सैकड़ों स्त्रियाँ, सैकड़ों पुत्रों को पैदा करने वाली होती हैं किन्तु आपके समान पुत्र को पैदा करने वाली जननी अन्य नहीं है। आपने तीर्थंकर जैसे पुत्र को जन्म दिया इसीलिये आप धन्य हैं। वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि सौधर्म इन्द्र अपनी शची इन्द्राणी के साथ अष्ट द्रव्य लेकर के मरुदेवी माँ की पूजा करने के लिये गया।

जन्म के समय नहीं वह तो गर्भ के समय ही आ गया और पूजा की। यदि कोई व्यक्ति कहे जैन दर्शन में तो नारी का कोई स्थान ही नहीं है, तो ऐसा नहीं है यदि जैन दर्शन में से नारी को निकाल दिया जायेगा तो जैन दर्शन में कुछ भी नहीं बचेगा। ये मानकर चलो कि दस में से एक निकाल दिया जाये तो शून्य बचेगा। ये जैनदर्शन का गणित है कि शून्य का महत्व दस गुणा होता है यह बात ठीक है किन्तु तब होता है जब दोनों मिल जायें दोनों मिलकर 10 गुने हो जाते हैं। नारी के बिना पुरुष का महत्व नहीं और पुरुष के बिना नारी का महत्व नहीं। जैसे जल के बिना नदी का महत्व नहीं होता है, जैसे उष्णता के बिना अग्नि का महत्व नहीं होता है, जैसे चिकनाई के बिना घी का महत्व नहीं होता है, जैसे घी के बिना दूध का महत्व नहीं होता है, उसी प्रकार नारी के बिना पुरुष का महत्व नहीं होता।

वेदज्ञ कहते हैं-

''यत्र नारी पूज्यन्ते बसते तत्र देवता''

जहाँ पर नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता भी आकर वास करते हैं। **किन्तु-''नरा यत्र पूज्यन्ते हँसते तत्र देवता''**-जहाँ नरों की पूजा होने लगे वहाँ देवता हँसते हैं।

नरों की पूजा यदि है तो नारियों के माध्यम से है। आप कहेंगे ये आप कैसी असंगत सी बात कह रहे हैं, क्या नर पूज्यनीय नहीं है? पूज्यनीय है किन्तु जब उस नर में बीच में कहीं नारी हो तो वह पूज्यनीय है। मतलब ! मुनिमहाराज पूज्यनीय नहीं हैं? हाँ मुनिराज पूज्यनीय हैं किन्तु उनके अंदर बोधि रूपी नारी है, दया रूपी, करुणा

रूपी, शांति रूपी नारी है तब तो वह नर भी पूज्य है। मुक्ति रूपी नारी को प्राप्त कर लिया तो सिद्ध भी पूज्य हो गये, अनंतलक्ष्मी को प्राप्त कर लिया तो अरहंत भी पूज्य हो गये, ऐसा नहीं कि पूज्य नहीं हैं। किन्तु महानुभाव !

जैसे गुण विहीन नर पूज्य नहीं है उसी प्रकार गुणविहीन नारी भी पूज्य नहीं है। आचार्य मानतुंग स्वामी जी ने बड़ा अच्छा उदाहरण दिया-**''प्राच्येवदिग्जनयति स्फुर दंशु जालम्''।**

''तारागण को सर्व दिशायें धरें नहीं कोई खाली''
''पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी दिन पति को जनने वाली।''

तारों को तो सभी दिशायें धारण करने वाली हैं किन्तु-पूर्व दिशा ही ऐसी सामर्थ्यवान् है जो सूर्य जैसे प्रतापी पुत्र को जन्म देती है अन्य दिशाओं में वह सामर्थ्य नहीं है। पूज्य आचार्य महोदय कह रहे हैं जो नारी तीर्थंकर जैसे पुत्र को जनने में समर्थ है वह नारी भी स्तुत्य है, वह नारी भी वंदनीय है, बंधन के योग्य नहीं है वह वंदन योग्य है। क्योंकि संसार में ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो बिना नारी की प्रेरणा के आगे बढ़ गया हो।

जीवन में एक बात तो तय है जब भी इस पुरुष का विकास हुआ है, पुरुष ने किसी आसमाँ को छूआ है, चाहे अग्नि के दरिया में कूदा हो, चाहे लोहे के चने चबाये हों, चाहे युद्ध में विजय प्राप्त की हो, असाधारण विजय प्राप्त करने में कहीं न कहीं नारी का हाथ अवश्य रहा है। ऐसा एक भी पुरुष संसार में खोजना मुश्किल है, असंभव जैसा कहिये कि जिस पुरुष के पीछे नारी का हाथ नहीं हो। जिस किसी भी पुरुष ने अपने जीवन में चरम और परम विकास किया है तो आप देख लेना उसके पीछे किसी न किसी नारी की प्रेरणा रही होगी। चाहे दादी की, चाहे माँ की, चाहे पत्नी की, चाहे बेटी या बहिन की, किसी की भी रही हो किसी नारी का संबल, संवर्धन मिला जरूर है। उसके बिना नर अधूरा है, जैसे पानी के बिना

नदी शोभा को प्राप्त नहीं होती, गंध के बिना पुष्प, पुष्प के बिना कोई वृक्ष शोभता नहीं है ऐसे ही नारी के बिना कोई घर शोभा को प्राप्त नहीं होता।

महानुभाव ! नारी ही गृहलक्ष्मी है, धनलक्ष्मी है, जिस घर में सुलक्षणा, सुसभ्य, मनोहारी चित्ताकर्षक नारी है, धर्म मार्ग पर अपने परिवार को लगाने वाली नारी है, उस घर में स्वर्ग का वास होता है। किंतु ये भारतीय संस्कृति है यहाँ नर को पूज्य व प्रमुख माना गया है नारी को गौण माना गया है। बीच में एक काल ऐसा आया जब नारियों का नाम ही नहीं लिया जाता था, पुरुषों का ही नाम लिया जाता था। किसी बच्चे से पूछा जाये कि किसके बेटे हो तो वह अपने पिता का नाम बताता है माँ का नहीं। यदि माँ का बताता भी तो अपने मामा के यहाँ किन्तु अन्य सर्वत्र पिता का नाम चलता था।

महानुभाव ! नारी का महत्व कोई कम नहीं है। नारी ने ही नर को नारायण बनाया है, नारी ने ही वीर महापुरुषों को प्रसूत किया है, नारी ने इंसान में भगवान् पैदा किया है, नारी ने वासनायुक्त पुरुष को शुद्ध और बुद्ध बना दिया और इतना ही नहीं उसे सिद्ध पुरुष बना दिया। नारी जहाँ पर कोमलता की मूर्ति कही जाती है, ममता की मूर्ति कही जाती है, समर्पण की मूर्ति कही जाती है, दान व त्याग के क्षेत्र में सर्वत्र आगे मानी जाती है वह नारी जिस किसी भी क्षेत्र में देखो पुरुषों से चार कदम आगे दिखाई देती है। नारी गिरते हुये पुरुषों को थामने में समर्थ भी है।

ये बात भी ठीक है कि नारी का आलंबन नर है जैसे अशोक वृक्ष का आलंबन लेकर कोई भी बेल अशोक वृक्ष से भी चार अँगुल ऊपर उठ सकती है, किंतु यह बात भी सत्य है इस बेल ने भले ही उस वृक्ष को नहीं थामा हो किंतु वृक्ष जब कमजोर होता है तो बेल उससे लिपटती चली जाती है फिर वह वृक्ष जीवन में कभी धराशाही नहीं होता, उस वृक्ष से लिपटी बेल चाहे कितनी ही आंधी आ जाये

वह वृक्ष टूटेगा नहीं, जिस वृक्ष से लतायें नहीं लगी संभव है वह वृक्ष किसी भी हवा के झोंके से गिर सकता है।

महानुभाव ! पाप कर्म के उदय में जब पुरुष का साहस छूट गया तब नारियों ने उस समय धैर्य दिया, आलंबन दिया। चाहे युद्ध के क्षेत्र में नारियों ने पुरुष से ज्यादा रण कौशल दिखाकर के अपनी वीरता सिद्ध की हो, चाहे नारियों ने त्याग के क्षेत्र में, चाहे व्रत उपवास के क्षेत्र में अपना एक ऐसा स्तंभ, आदर्श स्थापित किया कि पुरुषों के लिये उसे उखाड़ना कठिन हो गया। महानुभाव! हम प्रत्येक क्षेत्र में देखकर चलें-

जिनभक्ति के क्षेत्र में-चाहे मैना सुंदरी का नाम देखो, सीता का नाम देखो, चाहे भक्ति के क्षेत्र में मीरा का नाम देखो, चाहे मदनलेखा या रेवती रानी हो, चाहे वह गुल्लिका जी जिसने भगवान् बाहुबली की मूर्ति बनायी उस शिल्पकार की माँ, उसने नारियल की नरेली से दूध का अभिषेक किया। कालका देवी चामुण्डराय की माँ, जिन्होंने बाहुबली भगवान् का उत्तुंग जिनबिम्ब बनवाया, सिंधुला महारानी जो कि सम्राट खारवेल की पत्नी जिन्होंने उदयगिरि खण्डगिरि में 700 गुफायें बनवायीं, 700 मुनि का चौमासा कराया।

ऐसी कई नारियाँ हुयीं जिन्होंने सब कुछ देकर अपने भगवान् को बचाया। वह बघेरा की महिला जब यवन साम्राज्य था तब वहाँ उपसर्ग आया तो वह भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति को रात्रि में ही लेकर कुँए में जाकर कूद गयी यह सोचकर कि मेरे जीते जी मेरे भगवान् खण्डित नहीं हो सकते। यवन सेना आयी उससे पहले ही उसने अपने भगवान की सुरक्षा कर ली। अपने प्राणों को देकर भगवान् को अपने सीने से लगाकर कुँए में कूदी। कुछ समय पश्चात् जब वह मूर्ति कुँए से निकाली गयी तो साथ में वह नारी कंकाल भी निकला।

गुरुभक्ति के क्षेत्र में-गुरुभक्ति के क्षेत्र में चाहे चेलना रानी को देखें जिन्होंने मुनि महाराज पर आए उपसर्ग को दूर किया, चाहे

इलादेवी को देखें, चाहे जिनमति हो जिसने गुरुनिष्ठा में अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की।

शास्त्रभक्ति के क्षेत्र में-चाहे शास्त्र भक्ति में देखें वह अत्तिमब्बे, गुड्डूमब्बे जिन्होंने अपने धन का सदुपयोग कर अनेक ग्रन्थों को लिखवाया व जन-जन में उसे बँटवाया। कर्नाटक की शांतला देवी ने हजारों धवला ग्रंथ लिखवाए। रानी सिंधुला ने भी 75 लाख सोने के सिक्के खर्च करके द्वादशांग वाणी लिखवायी।

महानुभाव ! नारी किस क्षेत्र में पीछे रही? कहाँ पीछे है नारी? मदनलेखा को देखो-जिसने अपने पति युगबाहु की किस तरह समाधि करायी, अपने पुत्र चन्द्रवर्धन व नमि को किस प्रकार से संबोधन दिया। अंजना को देखो जो अपने पति के प्रति इतनी समर्पित रही कि 22 वर्ष का पति वियोग सहन कर लिया किंतु पति पर कभी आक्षेप नहीं लगाया। चाहे सीता थी, चाहे मृंगाकलेखा थी, चाहे हंसावली कितनी ही नारियाँ ऐसी रहीं, जिन्होंने बहुत संघर्ष का सामना किया।

संस्कारों के रूप में-माँ कौशल्या को देखो जिन्होंने ऐसे सपूत को जन्म दिया जो पिता के संकेत को पालन करने के लिये राज्य का त्याग कर जंगल में चले जाते हैं, कोई गिला-शिकवा नहीं। विशेषता तो कौशल्या के संस्कारों में थी। धन्य है सुमित्रानंदन लक्ष्मण जो अपने भाई के साथ परछाई की तरह से चले गये। धन्य है वह माँ यशोदा जिसने श्रीकृष्ण को ऐसे संस्कार दिये, देवकी तो धन्य है ही। धन्य है वह छत्रसाल महाराज की पत्नी जिसने मानसिंह जैसे पुत्र को जन्म दिया और धन्य है वह पन्नाधाय जिसने देश की रक्षा करने के लिये अपने बेटे को भी कुर्बान कर दिया। धन्य है वह दानवीर भामा शाह की माँ जिसने प्रेरणा देकर के भामाशाह को कहा कि देश की रक्षा के लिये धन काम में आना चाहिये देश सुरक्षित रहेगा तो धन सुरक्षित रहेगा, उन वीर भामाशाह ने अपनी माँ की प्रेरणा से अपना सारा धन महाराणा प्रताप के चरणों में रख दिया।

उस रत्नावली को देखो जिसने तुलसिया को गोस्वामी तुलसीदास बना दिया। जो तुलसीदास अपनी पत्नी में बहुत आसक्त थे। विजय विजया जिन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था और धन्य है वह सरस्वती माँ जिन्होंने आचार्य शांतिसागर जैसे रत्न को जन्म दिया।

देशभक्ति के क्षेत्र में देशभक्ति के क्षेत्र में भी नारियों की कहीं कमी नहीं रही, लक्ष्मीबाई से लेकर कितने सारे नाम दिखाई देते हैं। महारानी वीरादेवी जो अपनी वीरता के कारण भैरव देवी के नाम से भी जानी जाती थी, उसने भी धर्म और देश की रक्षा की। जक्कमव्वे, झूसी सिंहपथा, सिंधुला आदि रानियों ने हाथ में तलवार उठा अपने देश की रक्षा की। उस जीजाबाई को देखो जिसने शिवाजी को ऐसे संस्कार दिए कि वह छोटा सा गटुआ सा शिवाजी मुगलों की सेना पर अकेले ही भारी पड़ा। महाराणा प्रताप की माँ जयवंता जिन्होंने अपने पुत्र को न्याय नीति, वीरता के ऐसे संस्कार दिए जिससे उसने देश की रक्षा में ही अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। धन्य हैं वे नारियाँ जो अपने पुत्रों को संस्कार दे गुणवान बनाती हैं। यह काम केवल नारी ही कर सकती है-किसी कवि ने कहा भी है-

धन्य-धन्य हैं वे जननी जो ऐसे पूत प्रसव करतीं,
गा-गाकर के मधुर लोरियाँ, भाव वीरता के भरतीं।
बचपन से ही उन्हें सिखाती प्राण न्यौछावर कर देना,
तभी तो रण में आता उनको बैरी से लोहा लेना॥

एक राजपूतानी ने अपने तीनों बेटों को लड़ाई में भेजा। एक दिन कोई बुरी खबर लेकर आया कि आपका बड़ा बेटा शहीद हो गया है, राजपूतानी रोयी नहीं। दूसरे दिन वही आदमी खबर लाया कि आपका मँझला बेटा भी शहीद हो गया है। राजपूतानी नहीं रोई। वह तीसरे दिन खबर लाया कि आपका छोटा बेटा भी शहीद हो गया, यह सुनकर राजपूतानी फूट-फूटकर रोने लगी। खबर लाने वाले ने पूछा कि आपको छोटा बेटा ज्यादा प्यारा लगता था। तब राजपूतानी बोली कि

माँ की नजर में सभी संतान समान प्यारी होती हैं, लेकिन लड़ाई चालू है, दुश्मन जिंदा है और मेरे पास लड़ाई में भेजने के लिए चौथा बेटा नहीं है इसीलिए मैं रो रही हूँ।

महानुभाव ! पूर्व में जब राजा-महाराजा आदि युद्ध के लिए जाते थे तो वे नारियाँ ही थीं जो उनको विजय तिलक कर उनके अंदर उत्साह का संचार करती थीं। नारियों ने चाहे स्वयं युद्ध लड़कर किया या प्रेरणा स्रोत बनकर, देशभक्ति में भी अपना अग्रगण्य स्थान प्राप्त किया है।

किन्तु वर्तमान का दौर ऐसा चल रहा है कि नारियों का नाम प्राय:कर के पीछे कर दिया जाता है यद्यपि नारियाँ सदैव पीछे रही हैं और पीछे रहने में अपना सौभाग्य मानती रही हैं। चाहे राम के साथ सीता है। किन्तु इतिहास ने पूर्व में पहले नारी के नाम को आगे रखा है इसीलिये आज तक भी कहा जाता है-सीताराम-सीयाराम। राधाकृष्ण कहा जाता है कृष्ण राधा नहीं। नारी का महत्व ज्यादा रखा क्योंकि नारी के अंदर वह समर्पण, वह त्यागशीलता विशेष दिखाई दी। मैना सुंदरी जिसे किसी से शिकायत नहीं मेरे भाग्य में जो है वह स्वीकार है। अपनी भक्ति, निष्ठा के माध्यम से मैना सुंदरी ने अपने कुष्ठी पति को कामदेव जैसा बना दिया, तो वहीं सीता ने अग्निकुण्ड को जल कुण्ड कर दिया। सोमासती ने अपने शील के प्रभाव से नाग का हार बना दिया, मनोवती के पग रखते ही फाटक खुल गया।

महानुभाव ! तुंकारी को देखो जो क्षमा के क्षेत्र में प्रसिद्ध रही, 7 घड़े लाक्षातेल के फूट जाने पर भी जिनदत्त पर क्रोध नहीं आया, वही भट्टा जो 'तू' तुंकारी कहने से चिढ़ती थी ऐसे अनेक उदाहरण हैं। दमयंती को देखो जो राजा नल के साथ रही, तारा को देखो जो हरिश्चन्द्र के साथ रही, पीछा नहीं छोड़ा, सुख-दु:ख दोनों घड़ियों में साथ रही।

महानुभाव ! यह देश इन नारियों से सम्मानीय, गौरवशाली रहा है। किस-किस नारी की प्रशंसा करें। चाहे महारानी सिंधुला हो या मुरा देवी-चन्द्रगुप्त की माँ हो, चाहे वह गोवर्धन आचार्य की माँ जो सुधर्माचार्य के साथ चले गये थे। वे श्रीमती आचार्य पूज्यापाद स्वामी की माँ, मन्दालासा आचार्य कुंद-कुंद स्वामी की माँ जिन्होंने क्या संस्कार दिये। नारी चाहे तो अपने बेटे को बहुत वीर बना सकती है, दाता बना सकती है, संत बना सकती है, डाकू बना सकती है। नारी की शक्ति अचिंत्य है। महानुभाव ! वह कैकयी इतनी पराक्रमी थी कि युद्ध भूमि में जब महाराज दशरथ को लगा कि वे पराजित होने को हैं तब कैकयी ने स्वयं सारथी बन उनके रथ का संचालन किया, युद्ध में उनकी सहायता की। कैकयी ने वरदान भी माँगा किन्तु राम को कष्ट देने के लिये नहीं अपितु वह तो अपनी ममता को सँभाल न पायी। वह सोचती थी कि मेरा बेटा तो वैरागी है। जिस समय सीता-राम का स्वयंवर हुआ राम के गले में वरमाला डाली गयी तब मेरे बेटे के मन में वैराग्य का भाव आया था, अब दशरथ राम का राज्याभिषेक कर दीक्षा लेना चाहते हैं, मेरा बेटा भी दीक्षा लेने चला जायेगा तो मैं किसके सहारे रहूँगी।

नारी के तीन ही स्थान हैं-घर में पिता का सहारा, ससुराल में पति का सहारा, वृद्धावस्था में बेटे का सहारा। पिता मेरे दीक्षा ले चुके, पति दीक्षा लेने जा रहे हैं यदि पुत्र भी साथ में दीक्षा लेने चला जायेगा तो फिर मैं किसके सहारे रहूँगी। वह अपने मोह को सँभाल न सकी। वह ममता की मूर्ति थी। लोग उपहास करते हैं कोई अपनी बेटी का नाम कैकयी नहीं रखता किंतु वास्तव में उसका पराक्रम व मातृत्वभाव अपने आप में उज्ज्वल था। कल्याणमाला, उर्मिला, वनमाला कितनी सारी नारियों के नाम जो पुरुषों के लिये आदर्श रहीं।

महानुभाव ! नि:संदेह नारी ममता की मूर्ति है। उसकी दो आँखें ममता की कटोरी हैं। नारी कोमल हृदया है। मोम तो तब पिघलता है

जब मोमबत्ती जलती है किंतु नारी के लिए ऊष्णता भले न हो केवल जिसको वह चाहती है उसकी उपेक्षित दृष्टि ही पर्याप्त है। जिससे उसका मन पिघल जाता है, आँखें नम हो जाती हैं। उस नारी को नीतिकारों ने कहा-'वृद्धानारी ईश्वरी'-वृद्ध पुरुष को ईश्वर का रूप नहीं कहा-वृद्धनारी को ईश्वर का रूप कहा वह परमात्मा के समान है। जितनी ऋजुता मृदुता, सहजता, सरलता नारी में पाई जाती है उतनी एक पुरुष में नहीं आ पाती। पुरुषों ने अत्याचार किये, अत्याचार की सीमा पार कर दी किंतु नारी अत्याचार सहते-सहते थकी नहीं, पुरुष भले ही अत्याचार करते-करते थक गये। वह भी एक जमाना देखा था जब नारी ने अपने प्राण अपने पति के लिये समर्पित किये, अपने पुत्र, देश व भगवान् के लिये समर्पित किये, सब कुछ विसर्जित कर दिया।

नारी के अनेक रूपों को देखा इतिहास में, जहाँ वह त्याग की साक्षात् मूर्ति रही। जमाना बदलता चला गया। आज यह देखकर सुनकर बड़ा आश्चर्य होता है क्या यह वही नारी है जो दूसरों के बेटे की सुरक्षा करने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा देती थी, जो दूसरों के बेटे को कुँए के पाट से गिर गया या नदी में गिर गया उसे बचाने के लिये स्वयं कूद गयी जो स्वयं तैरना नहीं जानती थी किंतु फिर भी अपने प्राणों की बाजी लगा दी। वही नारी जो पशु-पक्षी या अन्य प्राणियों के बच्चों को बचाने के लिये स्वयं अपने ऊपर आपत्ति ले ले, क्या वही नारी आज अपना ही गर्भपात करा सकती है? क्या वही नारी इतनी क्रूर परिणामी हो सकती है कि वह अपने ही अंशज, अपने ही हृदय के टुकड़े का घात करा सकती है? कभी इतिहास ने यह सोचा नहीं था कि नारी का रूप ऐसा भी हो सकता है।

जिस घर में गर्भपात होता है या जिस घर की नारी ने कभी गर्भपात कराया है वह घर कलंकित रहता है। वह शमशान होता है।

उस घर में साधु आहार करने नहीं जा सकता, उस घर में भगवान् की पूजार्चना नहीं की जा सकती। वह नारी पापिष्ठ कहलाती है उसे प्रायश्चित लेना चाहिये। उसे आहार आदि दान देने का अधिकार नहीं, जिनवाणी छूने का अधिकार नहीं। जैसे एक हत्यारा व्यक्ति भगवान् का अभिषेक नहीं कर सकता, ऐसे ही गर्भपात कराने वाली नारी त्यागी व्रतियों को आहारादि नहीं दे सकती। वह भगवान् की पूजा करने की अधिकारिणी नहीं, वह तो हत्यारिन है, वह कहाँ है धर्मात्मा ?

अफसोस होता है कि यह पाप प्राय:कर के बड़े-बड़े नगरों शहरों में देखा जाता है। लोग कहते थे, जो अशिष्ट नारियाँ हैं उनके जीवन में यह काम होता होगा किंतु सर्वे करने से यह सिद्ध होता है कि गाँवों में गर्भपात की घटनायें कम होती हैं, शहरों में प्राय:कर ज्यादा होती हैं। शहरी व्यक्ति भोगी विलासी हो गया है। वह कहता है ''हम दो, हमारे दो''। अथवा एक है तो पर्याप्त है किंतु वह अपनी वासनाओं पर नियंत्रण नहीं कर पाता। वह जीव जब गर्भ में आता है तो उसे मरवा दिया जाता है, जैसे उसे मारते हुये उसे दर्द नहीं होता।

आश्चर्य है कहाँ गयी वह नारी की ममता, कहाँ गया पिता का प्यार, कहाँ गया वह दादी माँ का लाड़-दुलार जो अपनी बहू को ही घर के बाहर निकाल देती है कि मुझे तो बेटा चाहिये था तेरे गर्भ में तो बेटी है, कहाँ गया वह बाबा का प्यार, पिता का प्यार जो अपनी बेटी के लिये प्राण देने को तैयार रहता था। वह ममता कहाँ मर गयी? कहाँ उसकी हत्या हो गयी? लगता है आज हमने धर्म को बिल्कुल भुला दिया है।

जिस घर में भ्रूण हत्या हो जाये उस घर में तो हमेशा पातक ही पातक रहता है। वह घर शुद्ध नहीं है। चाहे कितने भी व्रत उपवास

करो, चाहे कितनी ही तपस्या करो या पूजा पाठ करो। जब तक उस आत्मा से क्षमा न माँगोगे, प्रायश्चित न करोगे, तो वह आत्मा तुम्हें क्षमा न करेगी। इसका अभिशाप हो सकता है तुम्हें सात भवों तक न छोड़े क्योंकि तुम जानबूझ करके हत्यारे हो, तुम्हारी शरण में आया था वह जीव।

महाराज मेघरथ ने भी अपने शरण में आए कबूतर की रक्षा की। हंस पक्षी को राजपुत्र सिद्धार्थ ने बचाया (जो गौतम बुद्ध बने) अपनी शरण में आये हुये को कौन मार सकता है। अपने प्राणों की बाजी लगाकर के भी शरणार्थी की रक्षा की जाती है।

महानुभाव ! वह जीव जिसको तुमने ही बुलाया है, अपनी भावनाओं से, तुम्हारी धातु-उपधातु से उसका शरीर बनेगा, तुम्हारे संस्कारों से ही उसकी आत्मा में संस्कार आयेंगे उसी जीव का वध, उसका ही घात कहाँ का धर्म है। तुम दिन में एक बार नहीं तीन-तीन बार भी जिनदेव का अभिषेक करो, किंतु जब तक अंतरंग की तुम्हारी यह क्रूरता नष्ट नहीं होगी तब तक कौन तुम्हारी आत्मा का कल्याण करने वाला हो सकता है। संसार में कोई ऐसा धर्म नहीं है जिसमें हिंसा के माध्यम से तुम्हारा कल्याण हो जाये। वह हिंसा कितनी बड़ी हिंसा है जो अपने ही अंगज का अपने ही अंशज का घात करने को तैयार हो जाये। धिक्कार है ऐसे दम्पत्ति को, धिक्कार है ऐसी वासना को। कई बार तो ऐसा भी सुना कि शादी के पहले भी ऐसा कोई कृत्य हो गया तो उदाहरण आता है हमारे शास्त्रों में कुन्ती का, कुन्ती ने गर्भपात नहीं कराया, अपने बेटे कर्ण को जन्म दिया, भले ही उसका भरण-पोषण अलग हुआ किंतु उसने गर्भपात तो नहीं कराया, जन्म तो दिया।

छत्तीसगढ़ में राजघराने की एक कन्या शादी होने के उपरांत वह गर्भवती हुयी, ससुराल वाले चाहते थे कि पहली संतान बेटा ही हो।

बेटी हो या बेटा इसमें नारी क्या करे। वैज्ञानिक कहते हैं रज और वीर्य के शुक्राणु की मात्रा के अनुपात से ही संतान की उत्पत्ति होती है। धर्म कहता है-जब तक तुम्हारे भाग्य में पुत्र सुख नहीं है, कितने ही उपाय कराओ, चाहे कहीं भटकते फिरो मंत्र-तंत्र करो भाग्य में यदि नहीं है तो बिना पुण्य के नहीं मिलेगा। वह कन्या जब गर्भवती हुयी तो उसकी जाँच करायी, जाँच में बेटी आयी हालांकि यह जाँच कराना भी अपराध है भारतीय दंड संहिता के अनुसार। वह अपने पति से कहती है यह मेरी पहली संतान है मैं इसे जन्म दूँगी।

पति कहता है-घर से बाहर निकल मुझे बेटा ही चाहिये, तू इसे जन्म नहीं दे सकती। उस कन्या ने अपनी सास के पैर पकड़े, सास ने भी मुँह फेर लिया, मैं क्या करूँ तू जाने तेरा पति जाने। उसने ससुर के पैर पकड़ लिये किन्तु उन्होंने भी सहारा न दिया, बेचारी क्या करे, वह कहती है मैं तो इसे जन्म दूँगी ही, उस कन्या ने अपने भाई को फोन लगाया। भाई ने कहा-बहिन तू चिंता मत कर घरवाले जो भी कहें उनसे कह देना मैं इस बेटी को जन्म दूँगी यह बेटी तुम्हारी नहीं है। इसे मेरा भाई गोद ले लेगा वही इसका पालन पोषण करेगा। कुछ दिन बाद ससुराल वालों ने फिर से परेशान किया तू हमारी नाक कटायेगी, उसने पुनः भाई को फोन कर दिया।

भाई पुलिस लेकर पहुँचा-वहाँ जाकर ससुराल वालों से कहा-आखिर चाहते क्या हो? जेल जाना चाहते हो या सीधे-सीधे बात मानते हो यह बेटी मेरी है। इसका जन्म होगा, जिस दिन जन्म होगा उसी दिन मैं बेटी ले जाऊँगा। ससुराल वाले ठंडे पड़े किंतु फिर भी बहु से कुड़े-कुड़े, जले-जले से रहे। जन्म का समय आया भाई पहुँचा उसने बेटी को धाय से प्राप्त किया, उस बेटी का चेहरा उसके पिता, दादी-बाबा को भी नहीं देखने दिया, अपने घर ले आया, उसका पालन पोषण किया। उसने बेटी को अच्छी शिक्षा प्रदान

करायी। उस बेटी को बाद में पता चला कि मेरे पिता जी, दादा, बाबा मुझे गर्भ में ही मार देना चाहते थे, उसे संसार से ग्लानि हो गयी उसे बाद में पता चला कि मेरा पालन-पोषण मेरे मामा-मामी ने किया है उसने संसार से विरक्त होकर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का नियम लिया।

महानुभाव ! कई बार तरस आता है कि वास्तव में ऐसी क्रूरता, नि:शृंस हत्यायें जैनकुल में, जैन समाज में हो सकती हैं। कोई भी जैन व्यक्ति हत्या कर दे। पहले ऐसा था कि समाज का कोई भी व्यक्ति हो, जैन या जैनेतर ऐसे व्यक्ति को समाज से अलग कर दिया जाता था। वैदिक परम्परा थी गंगा स्नान करने जाओ, दान करो, ब्राह्मणों को भोजन कराओ तब तुम्हारा प्रायश्चित होगा। किन्तु जैन कुल में जो हत्या करने वाला था अपना मुँह नहीं दिखाता था किन्तु अब तो हद कर दी कि तुम्हारी शरण में आया हुआ जीव उसकी इतनी नि:शृंस हत्या? उसके पूरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े किये जा रहे हैं। आप क्या समझते हैं कि आपकी पूजा भक्ति आपको इन कृत्यों को करके नरक में जाने से बचा लेगी। आपने अपने पुत्र-पुत्री के टुकड़े-टुकड़े करवाये हैं, आप चिंता न करें बस देर है नरक में जाने की, वहाँ भी तुम्हारे ऐसे ही टुकड़े-टुकड़े होंगे। जो गर्भपात कराता है, अनुमोदना करता है, सलाह देता है नि:संदेह नरक का अधिकारी बनता है।

महानुभाव ! नारी जिसे धर्ममूर्ति कहा जाता है क्योंकि धर्म उससे ही चलता है नारी यदि चाहे तो अपने पति या परिवार को धर्म में लगा सकती है। चेलना जैसी स्त्री जिसका पति बौद्धधर्म का अनुयायी था उसे भी तीर्थंकर जैसी प्रकृति का बंध करा दिया, भगवान् महावीर स्वामी का परम भक्त बना दिया। वह नारी जो धर्म क्षेत्र में प्राण की तरह से है, वह यदि धर्मक्षेत्र में अपना कर्त्तव्य न निभाये तो धर्म मुर्दे की तरह से हो जाये। पूज्य आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज कई बार कहते हैं कि माता-बहिनें धर्म को छोड़ दें तो साधुओं के कमंडल में

पानी डालने वाला कोई न हो, आहार देने वाले भी न मिलें।

दक्षिण भारत में जहाँ स्त्रियाँ अभिषेक करती हैं वहाँ पुरुषों से ज्यादा संख्या नारियों की रहती है और जहाँ पर नारियाँ अभिषेक नहीं करतीं उन मंदिरों में देखा है कि पुजारी पैसों में पूजा कर रहे हैं बहुत कम स्थान हैं जहाँ पुरुषों की मात्रा बहुत अधिक है।

महानुभाव ! मैं बस आपसे इतना कहना चाहता हूँ कि अतीत को भूलकर के भविष्य के लिये नियम ले लो, चाहे कुछ भी हो जो कोई भी जीव गर्भ में आ रहा है, सभी जीव अपना पुण्य पाप लेकर के आते हैं, तुम्हारे भाग्य से कोई नहीं खाता है, तुम अपने भाग्य से मरो या जियो, दूसरों को मारने का जो भाव करते हो वही तो पाप है, वही तो हिंसा है वही तो हत्या है, फिर तुम उस हत्या का पाप अपने सिर क्यों लेते हो। यह जीव अपने आप मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो तुम्हें दोष नहीं लगेगा किंतु जो जन्म लेने में समर्थ है उसके आपने टुकड़े-टुकड़े करवा दिये ये कितनी क्रूरता है।

महानुभाव ! क्रूरता की सीमा पार हो गयी, कत्लखानों को देखकर तो आपकी आँखों में आँसू आ जाते हैं और आप चमड़े का भी त्याग कर देते हैं कि हम चमड़ा नहीं पहनेंगे, हिंसा होती है। जो माँ, बहिन, भाई, बंधु चमड़े का त्याग किये हुये हैं क्योंकि उसमें जीव है तो क्या गर्भ में आया हुआ वह जीव नहीं है उसकी हत्या, क्या हत्या नहीं है। वह भी बहुत बड़ी हत्या है, बहुत बड़ा पाप है। मैं अब आपसे इतना कहना चाहता हूँ कि कृत, कारित, अनुमोदना से भ्रूण हत्या का त्याग करें। वे कौन हैं-जो भगवान् वर्धमान स्वामी के सच्चे भक्त हैं, श्री रामचन्द्र के सच्चे भक्त हैं या किसी भी भगवान् के सच्चे भक्त हैं जो प्रण ले लें कि आज के बाद जीवन में कभी भी भ्रूण हत्या के लिये किसी पर दवाब नहीं डालेंगे, प्रेरणा नहीं देंगे। यदि

कहीं ऐसा कोई कृत्य सामने आयेगा तो मैं उसे बचाने का प्रयास करूँगा।

यदि आपने यह नियम ले लिया तो मैं समझता हूँ आपने सैकड़ों, हजारों, लाखों, करोड़ों यज्ञ कराने का पुण्य कमा लिया। हम किसी जीव के ठेकेदार नहीं हैं। उस जीव का स्वयं का पुण्य पाप है। तुम्हें तो एक ही बात करनी है यदि तुम स्वयं को जैन कहते हो तो कभी भी भ्रूण हत्या कराने की प्रेरणा नहीं देनी अपितु उसको रोकने का प्रयास करना है। यही वास्तव में सच्ची तपस्या है। यदि आपने एक जीव के प्राण बचा लिये तो मैं समझता हूँ हजारों सुमेरु पर्वत आपने दान में देने के बराबर का पुण्य प्राप्त कर लिया, मानो पूरी वसुन्धरा को स्वर्ण से मढ़कर दान देने के बराबर पुण्य प्राप्त कर लिया। एक जीव के प्राण बचा लिये तो करोड़ों गायों को दान देने का पुण्य प्राप्त कर लिया और आपने एक जीव के प्राण बचा लिये तो सहस्रों मुनियों को आहार देने का पुण्य प्राप्त कर लिया।

महानुभाव ! एक जीव की हत्या करना मैं तो समझता हूँ वह जीव भविष्य का मुनि या आर्यिका हो सकता है। जिसकी आपने हत्या करायी है वह मुनि या आर्यिका की हत्या हो सकती है। एक ही हत्या करवाना मैं समझता हूँ सैकड़ों मंदिरों को तुड़वाना है, मूर्तियों को खण्डित करना है। आप समझ सकते हैं कि मंदिर व मूर्ति को खण्डित करने में कितना पाप लगता है उससे ज्यादा पाप जीव हत्या में लगता है। तो आप सबने मेरी बात को ध्यान से सुना, मैं अनुग्रहीत हूँ कि आपने मेरी बात को स्वीकार भी किया, नियम भी लिया कि जीवन में कभी भ्रूण हत्या जैसे दुष्कृत्य की मनसा, वाचा, कर्मणा, अनुमोदना भी नहीं करूँगा।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

12
मास्टर मेडीसन

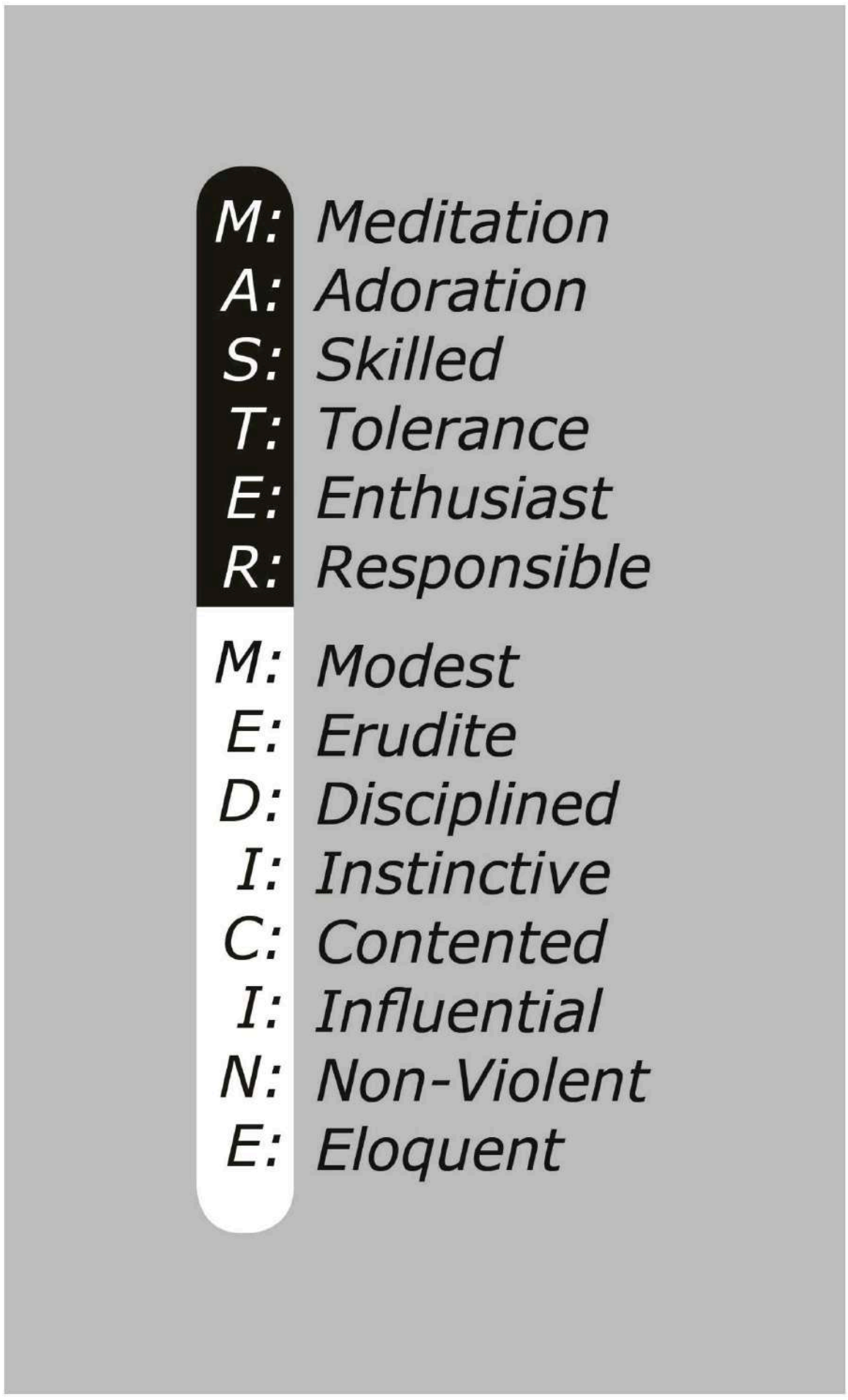

M: Meditation
A: Adoration
S: Skilled
T: Tolerance
E: Enthusiast
R: Responsible

M: Modest
E: Erudite
D: Disciplined
I: Instinctive
C: Contented
I: Influential
N: Non-Violent
E: Eloquent

मास्टर मेडीसन

संसार का प्रत्येक प्राणी रोगी है, किंतु इस बात को हर व्यक्ति जानता नहीं। जो अपने रोगों की पूर्ण जानकारी रखता है वह योगी है, जो रोगों में ही मस्त हो जाता है वह भोगी है और रोगों को भोगना जिसकी मजबूरी है वह नियोगी है, जिसे कभी-कभी रोगों का आभास, प्रतीती होती है वह वियोगी है। योगी, भोगी, नियोगी, वियोगी, संयोगी ये सब बाते हैं।

रोग का होना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है, **''शरीरं व्याधि मंदिरं''** शरीर व्याधियों का घर है। रोग होने पर जब रोग की जानकारी हो जाती है तब विवेकी व्यक्ति औषधि लेकर उस रोग से निजात पा लेते हैं किंतु जब तक रोग की जानकारी न हो तब तक वह चाहे किसी मेडीकल स्टोर पर भी पहुँच जाये वह मेडीसन उसके रोग को दूर नहीं कर सकती। जो व्यक्ति रोग की औषधि के बारे में जानता है, एक रोग की सौ-सौ औषधियाँ जानता है किंतु यह नहीं जानता कि उसे ही यह रोग है तब तक औषधि का सेवन भी नहीं करेगा और निरोगी भी न हो सकेगा।

महानुभाव ! औषधि के बारे में जान लेना मात्र पर्याप्त नहीं है, औषधि पर विश्वास कर लेना पर्याप्त नहीं है, औषधि की विधि जान लेना पर्याप्त नहीं है सबसे पहले आवश्यक है अपने रोग के बारे में ज्ञान कर लेना। रोगों के बारे में भी जानकारी है कि अमुक रोग का ऐसा लक्षण है, सामने वाले व्यक्ति को पहचान लेता है कि वह किस प्रकार के रोग से पीड़ित है, नाड़ी पकड़कर जान लेता है, पीली आँखों को देखकर जान लेता है, अँगुली और पैर के नाखूनों को देखकर जान लेता है, पेट को लूज और टाइट देखकर पहचान लेता है या उसकी चाल-ढाल को देखकर पहचान लेता है अमुक व्यक्ति को कौन सा रोग है।

वह उसकी श्वसन क्रिया, आहार, विहार, निहार की क्रिया को देखकर पहचान लेता है कि अमुक व्यक्ति को कौन सा रोग है। वह दुनियाभर के रोगों को जानता है और दुनियाभर के व्यक्तियों के रोगों को पहचानता है किंतु जब तक अपने रोग को नही जानेगा, नहीं पहचानेगा तब तक उसका समाधान उसे प्राप्त नहीं हो सकता। जो औषधि आप दूसरों को बाँटते चले जा रहे हैं उसी रोग से स्वयं पीड़ित हैं तो स्वयं सेवन किये बिना आपका रोग दूर नहीं हो सकता। और सेवन तो आप तब करेंगे जब आपको ज्ञात हो कि मुझे भी रोग है।

महानुभाव ! मुख्य रूप से हम तीन-चार प्रकार के रोग देख सकते हैं। पहला-''शारीरिक रोग'-शरीर में मूलतः तीन प्रकार के रोग होते हैं और उन तीन रोगों से पुनः बहुत सारे रोग हो जाते हैं। वे तीन रोग हैं-वात, पित्त और कफ। इन तीन धातु उपधातु के न्यून व अधिक होने से अन्य रोग होते हैं। कभी पित्त की अधिकता से अनेक प्रकार के ज्वर होते हैं, वात की अधिकता से मोटापा अधिक बढ़ता है उससे भी बहुत प्रकार के रोग होते हैं, कफ की प्रधानता से भी शरीर में श्वसन क्रिया संबंधी बहुत सारे रोग होते हैं किंतु मूलतः इन तीनों से ही सभी रोग उत्पन्न होते हैं।

वैसे तो आचार्य महाराज कहते हैं-

पंचणवय कोडीओ, तह चेव अडसट्ठी लक्खाणी।
णव णवदि च सहस्सा पंच सया होंति चुलसीदी॥

पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी रोग मानव शरीर में पाये जाते हैं। खुशी तो हमें इस बात की है कि इनमें से कोई भी रोग हमें अपने अनुभव में नहीं आता हम अपने आपको निरोगी अनुभव करते हैं। यदि कदाचित् ये रोग एक साथ उदय में आ जायें तो? यदि दो-चार भी एक साथ आ जायें तो व्यक्ति का जीना मुश्किल हो जायेगा। इस शरीर में आत्मा के प्रदेशों का रहना बड़ा कठिन हो जायेगा। ये शरीर संबंधी रोग हैं इन शरीर संबंधी रोगों की

क्या औषधि है? औषधि की चर्चा भी हम करेंगे। और ऐसी औषधि जो सभी रोगों की ही औषधि बन जाये तब तो कहना ही क्या है।

अभी तो आप एक-एक तरह की औषधि लेते हैं और वह औषधि ऐसी है कि अवसर पर जो मिल गयी सो औषधि। जिसने अवसर देखकर के रोग को दबा दिया ऐसी औषधि आपके लिये लाभदायक मानी जा रही है। जो रोग को मूलत: नष्ट करे उस औषधि के पास आप जाते ही नहीं, खोज करते ही नहीं और मिल जाये तो सेवन नहीं करते। आपको बुखार है, आयुर्वेदाचार्य आपको औषधि देते हैं कि जड़ से बुखार चला जायेगा आप चिरायते का काढ़ा पीकर तो देखो, आपको कोई वैद्य औषधि देता है पपीते का सेवन किया करो, एलोविरा खाया करो, मट्ठे का सेवन करना चाहिये, धनिया, मैथी, सौंफ और इलायची, हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी आदि का सेवन करो सैकड़ों से ज्यादा रोगों से बच जाओगे।

किंतु ये औषधि आप सेवन करते नहीं हो, क्योंकि आपको तो यदि जुकाम भी हो जाए तो तुरंत टेबलेट ले लेते हो। लेकिन इस टेबलेट से आपका रोग ठीक नहीं हुआ उस रोग को तत्काल में दबा दिया। अब दबा हुआ रोग कुछ समय बाद पूरी शक्ति के साथ उभर कर आयेगा, अपने साथ में एक-दो रोगों को और लायेगा। जैसे आपका किसी व्यक्ति से झगड़ा हो गया, आपने उसको या उसने आपको पीट दिया, किंतु दोनों की कषाय अभी पूरी निकली नहीं। दोनों के अंदर क्रोध की अग्नि धधक रही है मौका पाकर के आपने उसे पीट दिया, अब वह भी मौके की तलाश में रहेगा, जब आप कमजोर होंगे तब वह आप पर वार करेगा अथवा जब आप अकेले होंगे तब वार करेगा, जब वह वार करेगा तब अपने साथ में दो-तीन मित्रों को लेकर चलेगा, वे मिलकर के वार करेंगे।

आपको जो रोग था शत्रु संबंधी, उसने आपको, आपने उसको पीटा किंतु रोग दूर नहीं हुआ। वह पुनः बाद में आयेगा, पुनः-पुनः

मौके की तलाश में रहेगा चाहे जब भी आयेगा आपका अहित करेगा। ऐसे ही जो एलोपैथिक औषधि होती है वह रोग को दूर नहीं करती बस थोड़ी देर के लिये टाल देती है। दुबारा से वह रोग मौका देखकर के जब भी शरीर में कमजोरी होगी रोग निरोधक क्षमता आपकी जब भी कम हो जायेगी तब वह आप पर प्रहार करेगा, न केवल अकेला अपितु साथ में अपनी मित्र मण्डली को भी लायेगा।

किंतु आयुर्वेदिक औषधि ऐसी है झगड़ा तो हुआ था शत्रुता संबंधी रोग पैदा हुआ था किंतु आपने हाथ जोड़ लिये, पैर पकड़ लिये भैया जो कुछ है वह यहीं निपटा लें। उसने एक बार में क्षमा नहीं किया, कोई बात नहीं दुबारा फिर पकड़े, तीसरी-चौथी बार पकड़ लो, घंटेभर पकड़े रहो उससे कह दो मैं तेरे पैर छोड़ूँगा नहीं तू अपनी आत्मा से मुझसे कह कि तूने मुझे क्षमा कर दिया, अब हम मित्र बन गये शत्रुता का भाव नष्ट हो गया। मैं समझता हूँ इससे वह घंटे दो घंटे में पानी-पानी हो जायेगा, वह भी अपनी शत्रुता नष्ट कर देगा। तो शत्रुता रूपी रोग मूलतः नष्ट हो गया।

ऐसे ही आयुर्वेदिक औषधि होती है जो रोग को मूलतः नष्ट करती है और ऐलोपैथिक सिर्फ दबा देती है। तो शरीर के रोगों का निदान आप एलोपैथिक, होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक औषधियों के माध्यम से या योगा के माध्यम से या कोई एक्यूप्रेशर से भी करते हैं, इन शरीर संबंधी रोगों का उपचार संगीत के माध्यम से भी होता है। नाना प्रकार के छन्द, काव्यों का वाचन, गायन, उच्चारण करने से भी शारीरिक रोगों का उपचार होता है।

शारीरिक रोगों का उपचार टेलीपैथी के माध्यम से भी होता है, रैकी पद्धति से भी होता है। शारीरिक रोग के साथ-साथ व्यक्ति के पास वाचनिकरोग भी होते है। **वाचनिक रोग** भी तीन प्रकार से हो सकते हैं। 1. अहितकारक वचन 2. अप्रियवचन और 3. निस्सीम वचन। कोई न कोई व्यक्ति आपको सुनाये ही जा रहा है, सुनाये ही

जा रहा है और आप सुनना नहीं चाह रहे, आप बड़े परेशान हैं क्या करें? किसी ऐसे व्यक्ति की संगति आपको मिल गयी जो बोलना शुरू हो जाये फिर चुप होने का नाम ही न ले। किसी ने पूछा बीबी और टी.वी. में क्या अंतर है। तो जवाब मिला-टी.वी. का स्विच ऑफ कर दिया जाता है, पर बीबी का स्विच ऑफ नहीं होता। एक बार चालू कर दी भूल से तो फिर बोलती चली जायेगी।

जो व्यक्ति किसी ज्यादा बोलने वाले व्यक्ति के बीच में फँस जाये तो दूसरा व्यक्ति मौन ले लेता है। एक बार भी हुँकारा दे दिया तो फिर तो ये अपनी बात को आगे बढ़ावा देता ही जायेगा इसीलिये शांति से बैठ जायेगा। वाचनिक रोग भी होता है जो आपको अप्रिय वचन सुनने पड़ते हैं, निस्सीम, अहित कर वचन भी सुनने को मिलता है या कोई आपको उल्टी सलाह दे रहा है या आपका अपमान कर रहा है, उपेक्षा, अवहेलना करता है या आप किसी से अच्छा बोलना चाहते हैं फिर भी आपके मुँह से कटु, कठोर वचन निकल जाते हैं अब वचन तो निकल गये क्या करें, लौट के वापिस तो नहीं ले सकते तो ऐसे वाचनिक रोग भी हो सकते हैं।

एक है **मानसिक रोग**-राग, द्वेष, मोह। किसी के प्रति राग में डूबे हो या किसी के प्रति द्वेष से भरे हो या अपने अस्तित्व को भूल करके पर के अस्तित्व को अपना मान करके बैठ गये तो मोह के आवेग में लिप्त हुये हो। इन तीन के कारण संताप को प्राप्त हो रहा है, अशुभ वेदन हो रहा है, मन:पीड़ा हो रही है, शोक हो रहा है या आप क्षुभित हो रहे हैं। मानसिक वेदना भी बहुत बड़ी वेदना है। व्यक्ति जब मानसिक रुप से पीड़ित होता है तब शरीर का सुख उसे सुख नहीं लगता मन की पीड़ा शरीर के सुख को नष्ट कर देती है। महल, मित्रजन, स्वजन, पुरजन सब सुख नहीं दे सकते, जब मन दु:खी है तो न तो फिर तन का सुख अनुभव में आता है, न धन का

सुख अनुभव में आता है, न स्वजन-परजन का सुख अनुभव में आता है, न वसन का सुख अनुभव में आता है, न सेवक-वाहन-आभूषण का सुख अनुभव में आता है। जो व्यक्ति मन से दु:खी होता है तो मन के दु:खी व्यक्ति को कौन सुखी करे।

महानुभाव ! यह मानसिक रोग भी बड़ा खतरनाक है। चिंता, खेद, क्लेश, आसक्ति सब खतरनाक हैं। ऐसा व्यक्ति कहता है भाई ! मेरे शरीर में सैकड़ों रोग होते तो भी मैं सहन कर लेता किंतु मेरा शरीर तो स्वस्थ दिखाई देता है, सुंदर, हृष्ट पुष्ट दिखाई देता है, मेरी वचन शैली भी बहुत अच्छी है लोग मुझसे प्रेम से बोलते हैं किंतु इस मन के रोग का तो कहीं उपचार नहीं है। मेरे मन में धारणा बैठ गयी है कि मेरा कोई नहीं है, मेरे मन में धारणा बन गयी है कि मैं मर जाऊँगा, मुझे बेचैनी होती है, भूख नहीं लगती इस मन के रोगों से कैसे छुट्टी मिले, कैसे मुक्ति मिले। मन में कितने ही प्रकार के भाव होते हैं आवेगी, संवेगी, निर्वेगी भाव होते हैं जो इन सभी रोगों का कारण बन सकते हैं। यदि मन में वात्सल्य भाव भी अति हो, अति जब हो जाती है तो वहाँ भी मन दु:खी हो जाता है। यहाँ तक कि दया के परिणाम भी संक्लेशतम हो जायें तो भी वह मन रोगी हो जाता है। आनंद ज्यादा हो जाये तो वह भी रोग बन जाता है।

अगला रोग है-**सामाजिक रोग।** सामाजिक रोग भी होते हैं कैसे ? समाज में मेरी कोई प्रतिष्ठा ही नहीं है। मेरे पास धन तो है, शरीर भी स्वस्थ है, मन भी अच्छा है, वचन भी ठीक हैं किंतु किसी व्यक्ति के पास जाओ और वह तुम्हें जुहार तक न करे, कह दे कि धन्ना सेठ होंगे अपने घर के, विद्वान होंगे अपने घर के। कहीं तो कोई व्यक्ति सामान्य व्यक्ति को भी आदर और प्यार देते हैं, सम्मान देते हैं और मुझे तो कोई पूछ ही नहीं रहा। अरे क्या औचित्य मेरे इस धन का, क्या औचित्य मेरे इस वचन का, क्या औचित्य मेरे इस सुंदर तन

का और क्या औचित्य मेरे निर्मल मन का, जब कहीं भी प्रतिष्ठा नहीं। समाज में जब मेरी प्रतिष्ठा नहीं है, मेरा सम्मान नहीं है, मेरे प्रति मैत्री का भाव नहीं है। समाज में तिरस्कार मिलता है, समाज से उपेक्षा मिल रही है, समाज निंदा कर रही है, समाज में बदनामी हो रही है तब व्यक्ति सामाजिक रोग से पीड़ित हो जाता है, वह व्यक्ति भी रुग्ण है, स्वस्थ नहीं है, स्वस्थ चित्त नहीं है। अगले रोग होते हैं-

आध्यात्मिक रोग-ये रोग कौन से होते हैं?-तो वह हैं हर्ष भाव, दूसरा है आर्त्तभाव, तीसरा है रौद्रभाव ये आध्यात्मिक रोग हैं। हर्ष का आशय है-पर पदार्थों से प्राप्त सुख का वेदन। जब तक पर पदार्थों में सुख का वेदन कर रहा है तब तक आध्यात्मिक दृष्टि से वह निरोगी नहीं है। पर पदार्थों के माध्यम से आर्त्त संक्लेशता का वेदन कर रहा है तब तक वह निरोगी नहीं है। पर पदार्थों के माध्यम से रौद्र परिणाम कर रहा है तब तक आध्यात्मिक दृष्टि से निरोगी नहीं है। हिंसा में आनंदित होकर के, चोरी करके आनंद मानकर के, झूठ बोलकर आनंदित होकर के, विषयों का संरक्षण या सेवन करके, परिग्रह का सेवन करके आनंदित होता है तो ऐसा व्यक्ति भी आध्यात्मिक दृष्टि से रोगी है उसे निरोगी नहीं कहा जा सकता। एक होता है-

आत्म रोगी-जिस आत्मा में जन्म-जरा-मृत्यु तीनों रोग लगे हुये हैं वह आत्मा भी रोगी है। तीन में से एक भी शेष है तो आत्मा रोगी है उसे निरोगी आत्मा नहीं कह सकते। यहाँ तक कि परमेष्ठी बन गये तब भी आत्मा रोगी है, देव हैं तब भी आत्मा रोगी है, अहमिन्द्र आदि बन गये भले ही शरीर में रोग नहीं है पर आत्मा में तो फिर भी रोग है। साधु, उपाध्याय, आचार्य बन गये तब भी आत्मा रोगी है, अरिहंत अवस्था प्राप्त हो गयी तब भी वह आत्मा रोगी है निरोगी नहीं है।

महानुभाव ! ये सभी रोग हैं, आपको इन सभी रोगों की पहचान हो गयी कि आपके शरीर में भी रोग हैं, मन में भी रोग है, वचन में

भी रोग है, सामाजिक रोग भी है और आध्यात्मिक दृष्टि से भी आप रोगी हैं, आत्मा की दृष्टि आदि सब प्रकार से आप रोगी हैं अब ऐसी कौन सी औषधि मिले जिससे सब प्रकार के विकार ठीक हो जायें। एक औषधि जो किसी भी बुखार में काम आ जाये। यदि ऐसी औषधि मिल जाये तो फिर आनंद आ जाये, ऐसी औषधि जो वात-पित्त-कफ तीनों विकारों संबंधी रोगों का निदान करने वाली हो।

एक वैद्य जी थे, उन्होंने एक हंडिया में, हरड, बहेड़ा, आँवला कुटा हुआ रख लिया और जो कोई भी रोगी आता कहता वैद्य जी ये बीमारी है तो हड़िया में से 1/2 चुटकी, किसी को 1 किसी को दो-तीन चुटकी निकाल कर पुड़िया बना कर दे देते और कहते बस दूध से या पानी से शाम को ले लेना। वह वही चीजें सब को देता चला जा रहा है बस मात्रा थोड़ी सी आगे-पीछे करता चला जा रहा है, चाहे रोग कोई भी हो। और दवा भी कैसी है-

आये वैद्य गुरु जी, ले लो दवा मिले बिन फीस की।
दवा मिले बिन फीस की ना रुपया दस बीस की॥

फ्री की वह दवा ऐसी है जो सौ रोगों की भी एक दवा है। लोग तो कहते हैं पानी, मिट्टी और हवा। किन्तु यह सौ रोगों की क्या पाँच करोड़ अडसठ लाख निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी रोग हैं उन सभी रोगों की भी ये ही दवा है। अरे ! जब ऐसी दवा है तब तो कहना ही क्या, वह मिल जाये फिर तो मैं बस निरोगी हो गया। ऐसे भी कहते हैं-कम खाओ, गम खाओ, नम जाओ ऐसी हिदायत देते हैं, ये औषधि है। अथवा

भोजनं कृत्वा शतपदं गच्छेत्।

भोजन करके सौ कदम चलना चाहिये जिससे स्वास्थ्य ठीक रहे अथवा आहार से पहले दीर्घ शंका (शौच) के लिये जाओ और

आहार के बाद लघुशंका जाओ तो ठीक रहेगा अथवा कोई कहता है भोजन के अंत में गुड़ खाओ या छाछ पीयो या दूध पीयो सब अलग-अलग कहते हैं ये शारीरिक रोगों से मुक्ति पाने के लिये कहते हैं।

वाचनिक रोगों से मुक्ति पाने के लिये कहते हैं भाई हितमित प्रिय वचन बोलो। कम बोलो, आगम के अनुसार बोलो, किसी की हँसी मत उड़ाओ, झूठ मत बोलो, क्रोध में मत बोलो, लोभ से मत बोलो, डर करके मत बोलो, निंदा आदि के भाव से मत बोलो, किसी पर व्यंग मत कसो तो वाचनिक रोगों से मुक्ति मिल सकती है।

समाज में सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करो, मित्रता से सबके साथ बैठो, सबके सुख-दु:ख में शामिल हो जाओ, जिसको आवश्यकता है वह वस्तु तुम्हारे पास है तो उसकी सहायता करो, उपकार की भावना रखो, ये भावना लेकर समाज के बीच में रहो, सहयोगी भावना को रखो तो सामाजिक दृष्टि से आप निरोगी कहलायेंगे। ये औषधि ही सामाजिक रोग दूर करने के लिये है।

मानसिक रोगों के उपचार के लिये प्रभु भक्ति करो, गुरु चरणों की सेवा करो, जिनवाणी का स्वाध्याय करो इनसे मन के रोग दूर होते हैं। भगवान् की भक्ति डूब कर करो, जब तक डूबोगे नहीं तब तक कुछ मिलेगा नहीं। भक्ति खूब करो ऊब के नहीं किंतु डूब के।

सम्राट महाबल सैनानी उस क्षण को टाल सकेगा क्या

ठीक है, ये सब पढ़ो, चिन्तन करो किंतु ये पूजा भक्ति नहीं है ये तो चिन्तन का विषय है, सामायिक में चिन्तन करो। पूजा के समय में सामायिक क्यों कर रहे हो। सामायिक में पूजा नहीं, पूजन में सामायिक नहीं। सामायिक में अपने गुणों का चिन्तन करो, शक्ति का चिंतन करो भगवान् का आधार लेकर के। भक्ति तो वह कहलाती है **''पूज्येषु गुणानुरागो भक्ति''** पूज्य पुरुषों के गुणों में अनुराग करना

भक्ति है। जब भगवान् की पूजा करोगे तो मानसिक रोगों से, दु:खों से शांति मिलेगी। भगवान् की पूजा खूब करना है, डूब करके करना है, भक्ति से ऊब गये तो पूजा आपको फल न दे सकेगी और डूब के की तो पूजक पूज्य बन जाता है, भक्त भगवान् बन जाता है, आराधक आराध्य बन जाता है।

मानसिक रोगों को दूर करने के लिये संत चरणों की सेवा करना, उसकी साधना में सहायक बनकर के अन्य प्रकार से वैय्यावृत्ति आदि करके भी मानसिक शांति मिलती है। जो आहारादि, औषधि आदि दान देते हैं ज्ञानोपकरण, शौचोपकरण या अन्य पाटा, चटाई आदि देते हैं उन्हें भी शांति मिलती है। चाहे वह हाथ पैर दबायें तब भी शांति मिलती है, मन के परिणाम निर्मल होते हैं। भगवान् की भक्ति से मन शांत होता है। आप पढ़ते भी हैं स्तुति में-

मन शांत भयो मिट सकल द्वन्द
चाख्यो स्वातम रस दु:ख निकंद।

भगवान् की भक्ति करने से मानो सुख का कुण्ड ही मिल गया हो, कहाँ से? भगवान् की मूर्ति का अवलोकन करने से। टकटकी लगाकर भगवान् को देख रहे हैं प्यासे चातक की तरह से ऐसा लग रहा है जैसे भगवान् की मूर्ति में से दिव्य आभा निकल रही है, वे किरणें मेरी आत्मा के अशुभ विचारों को शांत कर रही हैं, मेरे विकल्पों को शांत कर रही हैं तो मन की शांति मिलती है। इस प्रकार भी भक्ति सेवा रूपी औषधि के सेवन करने से मानसिक रोगों से शांति मिलती है।

यदि आध्यात्मिक रोग है तो उसकी शांति के लिये-व्रतों का पालन, शील का पालन, संयम, चारित्र का पालन, वैराग्य, तपस्या से आध्यात्मिक रोगों से शांति मिलती है। यदि राग बढ़ रहा है तो तप करना प्रारंभ कर दो, वैराग्य की औषधि का सेवन करो, यदि विषयों

के प्रति आसक्ति बढ़ रही है तो नियम, व्रत, संयम को ग्रहण कर लो, यदि मन में पाप का भाव आ रहा है तो पुनः धर्म-ध्यान में लग जाओ, सम्यक्त्व आदि को स्वीकार करो इसके माध्यम से आध्यात्मिक रोगों से शांति मिलती है।

अब आते हैं 'आत्मिक रोग'। आत्मिक रोगों की शांति करने के लिये क्या उपाय है? मुख्य रूप से आत्मा के तीन रोग थे जन्म, जरा, मृत्यु उन तीन रोगों को शांत करने के लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र व सम्यक्तप, ये चार आराधना करते हैं।

महानुभाव ! यदि इन सभी प्रकार के रोगों की एक ही औषधि मिल जाये तो? जिससे शारीरिक रोग भी दूर हो जायें, मानसिक, वाचनिक, सामाजिक, आध्यात्मिक व आत्मिक रोग इन सभी के कष्टों से निजात मिल जाये ऐसी कोई औषधि है क्या? महाराज जी ऐसी औषधि मिल जाये तब तो कहना ही क्या। मास्टर मेडीसन का तो यही अर्थ है कि एक ऐसी औषधि जो सभी प्रकार के रोगों के लिये, सभी प्राणियों के लिये सब स्थानों पर, सब कालों में अपना असर दिखाये वही तो मास्टर मैडीसन हो सकती है। महानुभाव !

एके साधे सब सधें, सब साधे सब जायें।
जो तू सींचे मूल को, फूलें फले अघाय॥

यदि वृक्ष चाहता है कि फूल खिलते रहें तो कैसे खिलें ? क्या फूलों पर पानी डालने से ? नहीं। पत्ते भी हरे भरे रहें तो क्या पत्तों पर पानी डालने से ? नहीं, फल भी लगते रहें तो क्या फलों पर पानी डालने से ? नहीं। फिर कैसे? यदि मूल का सिंचन करें, मूल में खाद सामग्री दें तब निःसंदेह वृक्ष हरा-भरा रहेगा। छाया भी देगा, शीतल हवा भी देगा, सुन्दरता भी प्रदर्शित करेगा, अपनी गंध भी देगा, चित्त को आकर्षित करने वाला, तनाव को दूर करने वाला, क्षुधा को शांत करने वाला, वह वृक्ष सबके लिये आश्रयभूत बन जायेगा। यदि वृक्ष की जड़ में नित्य सिंचन करते रहें तो।

महानुभाव ! आपको ज्ञात होगा अर्जुन ने श्री कृष्ण से महाभारत के युद्ध के लिये सेना नहीं माँगी थी, क्या माँगा था? कहा था-मात्र आप ही पर्याप्त हैं सेना से मुझे क्या लेना। आप अकेले ही मेरे साथ खड़े हो जायें और पूरी सेना आपके सामने खड़ी हो तो भी आप अकेले सभी को हरा सकते हैं आप अकेले सब पर भारी हैं।

भरत चक्रवर्ती का वह प्रसंग आपको याद होगा-जब भरत चक्रवर्ती दिग्विजय करके लौट रहे थे और अयोध्या में प्रवेश करने की तैयारियाँ थी। भरत चक्रवर्ती की श्रवण शक्ति बहुत थी वे बारह योजन तक की दूरी की बात को सुन लेते थे। चक्षु इन्द्रिय का क्षयोपशम भी बहुत विशाल था वे अपने महल की छत पर खड़े होकर सूर्य चन्द्र विमान में विद्यमान अकृत्रिम जिनबिम्बों का दर्शन कर लेते थे। वे बहुत स्वाध्यायी भी थे एक बार वे रात्रिकाल के अंतिम प्रहर में अपने किसी कार्य में संलग्न थे तभी अचानक उन्होंने अपना उपयोग बाहर की तरफ लगाया तो उन्हें कुछ चर्चा सी सुनाई दी।

दो सैनिक आपस में चर्चा कर रहे थे कि अरे-भाई देखो तो सही-अन्याय की कोई सीमा तो होती है। यह प्रकृति का भी क्या नियम बन गया है कि एक व्यक्ति राजा बन कर बैठ जाता है अपने आप सेना को मरवाता है। सेना युद्ध लड़ती है वह स्वयं राज्य भोगता है। तुम ये नहीं सोचना कि जो राजा बनता है वह अलग से कोई होता है वह तो हम जैसा या तुम जैसा ही कोई व्यक्ति होता है। उसमें कोई ताकत ज्यादा थोड़े ही होती है। हमारे राजा साहब छः खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती बन गये यदि सेना न हो तो उन्हें मालूम पड़ जाये। कोई एक अच्छा सा पहलवान आ जाये तो उन्हें चारों खाने चित कर दे।

ये चर्चा भरत चक्रवर्ती ने सुन ली। बड़े व्यक्ति तो वे कहलाते हैं जो छोटों की गलती को क्षमा कर दें यदि चाहते तो उन्हें बुलाकर

मृत्यु दण्ड भी दे सकते थे किंतु बड़े व्यक्ति अकेले क्षमा ही नहीं करते बल्कि उनका सही समाधान भी करते हैं। यदि वह व्यक्ति शंका में पड़ा रहेगा तो अपना अहित कर लेगा, वे समाधान अवसर आने पर अवश्य ही किया करते हैं। भरत चक्रवर्ती ने प्रात:काल ही घोषणा करवा दी कि आज मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है मेरी कनिष्ठा अँगुली में बहुत दर्द है। प्रात: काल से ही वैद्य हकीम आने लगे। महाराज भरत चक्रवर्ती दरबार में विराजित हुये उन्होंने अपनी अँगुली दिखाई कहा वैद्य जी ये अँगुली सीधी नहीं होती।

वैद्य जी ने लेप लगाया खूब औषधि लगाई किंतु अँगुली सीधी नहीं हुयी, सभी राजवैद्यों ने खूब उपचार किया, पुन: चक्रवर्ती ने कहा-इस अँगुली में बहुत दर्द होता है, पूरी सेना को बुलाओ, जब तक ये अँगुली सीधी नहीं होगी तब तक मुझे चैन न पड़ेगा। सेना आई उनसे कहा-जो कोई भी हो मेरी अँगुली सीधी करो, सेना में से सबसे पहले पहलवान आये अँगुली पर रस्सा बांधकर वे लटक गये किंतु अँगुली सीधी न हो सकी, सौ-दो सौ पहलवान भी अँगुली सीधी न कर सके। रस्सा खूब खींचा फिर भी सीधी नहीं हुयी।

भरतचक्रवर्ती ने कहा-चलो ऐसा करो पूरी सेना मिल करके इस रस्सी को खींचो शायद अँगुली सीधी हो जाये, किंतु अँगुली तो तब भी सीधी न हुयी। नव निधि व चौदह रत्नों की रक्षा करने वाले देव भी इस कार्य में लग जायें, तो शायद अँगुली सीधी हो जाये, वे भी आ गये। किंतु अँगुली में कोई दर्द तो था नहीं, टेड़ी तो उन्होंने जानबूझ के कर ली थी। उन सभी ने जैसे ही जोर लगाया तो उन्होंने अँगुली अपनी ओर झुकायी जिससे सब आगे की ओर खिंच गये और जैसे ही उन्होंने अँगुली को सीधा किया तो पूरी सेना चारों खाने चित्त गिर पड़ी। इसे देखकर वे सैनिक जो रात्रि में चर्चा कर रहे थे आश्चर्य चकित हो गए और वे दोनों सैनिक बाहर निकल कर राजा के सामने आये कहने लगे-महाराज ! चाहे तो क्षमा करो नहीं तो हम प्राण दण्ड

स्वीकारने को तैयार हैं। हमें वास्तव में आपके बारे में ज्ञान नहीं था कि आपकी सामर्थ्य इतनी है हम तो यही जानते थे कि चक्रवर्ती बन जाते हैं और सेना को मरवाते हैं इनमें कोई ताकत नहीं होती।

महाराज आज ज्ञात हुआ वास्तव में जो ताकत सेना में नहीं है उससे ज्यादा ताकत सेना नायक में होती है। सेनानायक जब मर जाता है तो सेना अपने अस्तित्व को बचा नहीं पाती। सौधर्म इन्द्र और उसकी इन्द्र सेना, नारायण और उसकी सेना, उस सेनानायक में बहुत बल होता है, भरत चक्रवर्ती ने कहा-बस तुम जाओ तुम्हें क्षमा किया जाता है।

महानुभाव ! यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि हम बहुतों को क्यों समेटें, एक को समेट लिया वही बहुत है। ऐसे ही आप सोच रहे थे कि मास्टर मेडीसन मिले। एक माँगने से सब मिल जाये तो बार-बार अन्य चीजें क्यों माँगी जायें? बार-बार भगवान् के पास जाओ कभी कहो भगवान् भूख लग रही है रोटी दे दो, प्यास लग रही पानी दे दो, बारिश हो रही है छाता दे दो, धूप पड़ रही है भवन दे दो, तो ऐसे करके सौ, दो सौ, हजार बार भगवान् के सामने माँगने क्यों जाते हो? माँगना ही है तो एक बार माँग लो ना। दूसरी बार माँगना न पड़े और माँगो उसी से जो दे दे खुशी से और जो देता ही नहीं है उससे माँगने से क्या? जो तुमसे ही माँग बैठे, तुम्हारे ही सामने भिखारी बन जाये तो उससे माँगने से कोई लाभ नहीं।

एक महात्मा के दो युवा शिष्य थे। दोनों ने महात्मा की खूब सेवा की। महात्मा जी का जब अंतिम समय समीप आया तो उन्होंने अपने शिष्यों से कहा-अब मैं समाधि लेता हूँ आप दोनों को आशीर्वाद, जो कुछ भी आप दोनों को माँगना हो सो माँग लो। पहला शिष्य बोला-महात्मा जी मैं बड़ा हूँ पहले मैं माँगूगा। महात्मा जी बोले-माँगने का अधिकार पहले छोटों का होता है, बड़ों का नहीं। बड़े व्यक्ति

पहले देना प्रारंभ करते हैं। यदि बड़ों ने ही पहले बड़ी चीज ले ली तो छोटों तक पहुँचते-पहुँचते कुछ भी न रहेगा। छोटों से देना प्रारंभ करते हैं, छोटों की छोटी-छोटी माँग होती है उनकी पूर्ति करते चले आओ तो पुनः बड़े तक आ जाओ, बड़ों को नहीं भी दोगे तब भी काम चलेगा छोटों को न दोगे तो काम नहीं चलेगा। इसीलिये महात्मा जी ने कहा, पहले तो माँगने का अधिकार छोटों का है। बड़ा बोला-नहीं मेरा अधिकार है, मैंने पहले सेवा की। छोटे ने हाथ जोड़कर कहा-महात्मा जी आप पहले इन्हीं को दे दो कोई बात नहीं, मुझ पर तो बस आपकी कृपादृष्टि बनी रहे।

महात्मा जी ने बड़े से कहा-ठीक है तुम बताओ क्या चाहिये? वह बोला-महात्मा जी मेरे घर में तीन लोग हैं मैं, मेरी पत्नी और माँ मुझे तीन वरदान चाहिये। महात्मा जी ने कहा-सेवा तो अकेले तुमने की है तो तीन वरदान क्यों मिलेंगे। तू खायेगा तेरे अकेले का ही तो पेट भरेगा। वह बोला नहीं महात्मा जी तीन वरदान चाहिये। महात्मा जी ने कहा-ठीक है तथास्तु। वह घर गया, कहा-महात्मा जी मेरी सेवा से खुश हो गये हैं उन्होंने मुझसे तीन वरदान माँगने को कहा है। पुनः छोटे शिष्य से भी महात्मा जी ने वरदान माँगने को कहा। वह बोला-नहीं-नहीं मुझे तो सिर्फ आपकी कृपा दृष्टि चाहिये। महात्मा जी ने कहा-अरे! नहीं तुम भी जो चाहो सो माँग लो। मैं तुझे दूँगा अवश्य, तू नहीं माँगेगा तो तेरा कर्ज मेरे ऊपर रह जायेगा। वह भी घर गया, उसके घर में भी तीन प्राणी थे, माँ पत्नी व वह स्वयं।

उसने घर में वरदान की बात अपनी माँ से कही-वह बोली बेटा मैं तो अँधी हूँ यदि तुझे महात्मा जी वरदान देना चाहते हैं तो मेरी आँखों की ज्योति माँग ले अन्यथा बुढ़ापे में अंधे व्यक्ति की क्या दुर्दशा होती है तू तो जानता ही है। पुनः पत्नी के पास गया-पूछा महात्मा जी से मैं क्या वरदान माँगू-पत्नी बोली शादी हुये सोलह साल हो गये कोई संतान अपने पास नहीं है, वंशवृद्धि कैसे होगी? बस एक

प्रार्थना है महात्मा जी से एक बेटा तो माँग ही लो वह कुलदीपक हो, वंश की वृद्धि करने वाला हो। वह सोचता है माँ से भी पूछ लिया, पत्नी से भी पूछ लिया। अब मुझे मेरे मन की बात भी सुननी चाहिये। मेरा मन कहता है यदि मेरे पास पर्याप्त धन होता तो माँ को और पत्नी को सम्पत्ति दे देता जिससे वे अपना जीवन यापन कर लेती और मैं दीक्षा लेकर अपना कल्याण कर लेता। मेरे पास इतना धन वैभव नहीं है, मैं इतना ही कमा पाता हूँ कि हम तीनों का ही पेट भर पाये। मैं तो सोच रहा था कि महात्मा जी से धनसम्पत्ति माँग लूँ किंतु क्या करूँ समझ नहीं आता, माँ कुछ कहती है, पत्नी कुछ कहती है, मेरा मन कुछ और कहता है।

वह दूसरे दिन महात्मा जी के पास पहुँचा और बोला महात्मा जी एक दिन का समय और दे दो। ठीक है कल तक और सोच लो। इतनी ही देर में बड़ा शिष्य भी आ जाता है-कहता है महात्मा जी मेरे साथ मेरी माँ व पत्नी दोनों आ गयी हैं वे आपसे अभी माँग लेती हैं। वह छोटा शिष्य तो वहाँ से चला गया किसी दिगम्बर साधु के पास सलाह लेने कि मैं क्या वरदान माँगू। बड़ा शिष्य अपनी माँ से कहता है माँ आपने मुझे जन्म दिया है पहले मैं आपकी भावना पूर्ण कर दूँ-माँ आप पहला वरदान माँग लो।

माँ ने महात्मा जी से कहा-महात्मा जी मैं वृद्ध हो गयी हूँ मेरा शरीर जर्जर हो गया है आप से प्रार्थना है मुझे सोलह साल की कुँवारी अत्यन्त रूपवती अप्सरा जैसी बना दो। इतना उसका कहना ही था कि महात्मा जी ने कहा-'तथास्तु'। जैसे ही तथास्तु कहा वह तो सोलह साल की सुंदर अप्सरा जैसी बन गयी। बाजू में उसकी बहूरानी खड़ी थी, उसके सामने अब वो लगने लगी नौकरानी जैसी। उसने सोचा-अरे सासू माँ इतनी सुंदर बन गयी, इस चुड़ैल को अब मैं देखती हूँ। उसने कहा-महात्मा जी मुझे भी वरदान दोगे-उन्होंने कहा हाँ माँगो। वह

बोली मेरी सासु को गधी बना दो। महात्मा जी ने कहा-'तथास्तु' और कहते ही अप्सरा जैसी सुंदर सास अब गधी बन गयी।

उसे देखकर बेटा भी घबरा गया ये माँ के रूप को क्या हो गया। वह महात्मा जी के पैर पकड़ कर रोने लगता है। महात्मा जी कहते हैं हाँ-अभी तुम्हारा एक वरदान और रह गया है। माँग लो क्या चाहते हो? वह बोला-महात्मा जी मेरी माँ को वैसा ही बना दो जैसी वह पहले थी। महात्मा जी ने तथास्तु कह दिया और माँ पुनः उसी रूप में आ गयी। तीनों वरदान इसी तरह पूर्ण हो गये। जैसे वे आये वैसे ही खाली हाथ चले गये, तीनों ने वरदान भी माँग लिया किन्तु फिर भी हाथ कुछ नहीं लगा। माँ ने जो माँगा, बहू ने ईर्ष्यावश उसे छीन लिया और बेटे को माँ पर दया आयी तो पुनः माँ को उसी रूप में माँग लिया।

अब महात्मा जी का छोटा शिष्य आता है-वह कहता है महात्मा जी आपकी कृपादृष्टि है मुझे वरदान तो नहीं चाहिये किन्तु आपका मन है तो ठीक है। महात्मा जी ने कहा-मैंने बड़े शिष्य को भी वरदान दिये तो तुम्हें भी वरदान दूँगा। वह बोला नहीं महात्मा जी मैंने आपकी बात मानी इसीलिये वरदान माँग रहा हूँ किन्तु तीन नहीं एक ही वरदान माँगूगा। महात्मा जी मैं चाहता हूँ कि "मेरी माँ अपने पोते को सात मंजिल के मकान पर सोने-चाँदी के बर्तनों में खीर खाते देखे।" बस यही छोटा सा वरदान माँगता हूँ। महात्मा जी ने कहा 'तथास्तु'।

महानुभाव ! उस शिष्य ने कैसा वरदान माँगा- कि मेरी माँ देखे किंतु देखे कैसे, जब आँखों में ज्योति आयेगी तभी तो देखेगी। फिर कहा-अपने पोते को अर्थात् पुत्र भी माँग लिया जिससे पत्नी की इच्छा भी पूर्ण हो गयी, फिर कहा सात मंजिल के मकान पर रत्नजड़ित स्वर्ण-रजत के बर्तनों में खीर खाते देखे-तो सातमंजिल का मकान, स्वर्ण बर्तन क्या किसी गरीब कंगाल के यहाँ मिलेंगे ? नहीं।

तो उस शिष्य ने अपने मन की बात माँग ली। अब जब महात्मा जी ने तथास्तु कह दिया तो जब वह घर पहुँचा तो देखा माँ भी संतुष्ट, पत्नी भी संतुष्ट और वह भी संतुष्ट और पुनः वह शिष्य अपने संकल्प के अनुसार अपना कल्याण करने चला जाता है। उस शिष्य ने एक वरदान माँगा। एक माँगने वाला प्रायःकर के सब कुछ माँग लेता है और सब कुछ माँगने वाला प्रायःकर कुछ भी नहीं माँग पाता।

तो महानुभाव ! हम पचासों दवाईयों का सेवन करते हैं तब उनसे भी एक रोग को दूर नहीं कर पाते और यदि एक ही औषधि हमें मिल जाये तो सभी रोगों को दूर किया जा सकता है। उस मास्टर मेडीसन का नाम क्या है? जो सभी शारीरिक, वाचनिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, आत्मिक रोगों का शमन कर दे।

क्या ऐसी कोई मेडीसन है? हाँ है वह औषधि है-'आत्मध्यान'। आत्मध्यान करने वाला व्यक्ति आत्मा के सभी रोगों से मुक्त हो जाता है, सभी आध्यात्मिक रोगों से मुक्त हो जाता है। सभी सामाजिक, वाचनिक, मानसिक, शारीरिक रोगों से मुक्त हो जाता है। आत्मध्यान ही सामायिक है, वही स्वाध्याय है, वही प्रतिक्रमण है, वही संवर भाव है, वही निर्जरा है, वही पूजा, भक्ति, स्तुति, व्रत, उपवास सब उसी में निहित हैं। आत्मध्यान ही संवेग, वैराग्य तप है, वही ऐसी औषधि है जिससे जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों का भी नाश हो जाता है।

किंतु आत्मध्यान तक पहुँचे कैसे? पहले देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करता है, व्यवहार रत्नत्रय को स्वीकार करता है, वह स्वाध्याय, गुरुसेवा करता है, धर्म का सेवन करता है इस सब व्यवहार धर्म को करते हुये निश्चय आत्मध्यान में लीन होता है। वह आत्म ध्यान की औषधि बहुत ऊँची है। तप में भी अंतिम बारहवें नंबर का तप 'ध्यान'

है। आर्त्तरौद्र ध्यान अनात्म ध्यान हैं। धर्म व शुक्ल ध्यान आत्म ध्यान हैं क्योंकि वे आत्महित के गमन में सहकारी हैं।

तो वह मास्टर मेडीसन ''आत्मध्यान'' है। इस आत्मध्यान की प्राप्ति के लिये हमें पर्याप्त पुरुषार्थ करना है, वह आत्मध्यान कहाँ मिलेगा? वह आत्मध्यान यहाँ नहीं मिलेगा, वह योगियों के पास मिलेगा और अभी नहीं मिलेगा, जब छटवें सातवें गुणस्थान पर चढ़ने लगोगे तब मिलेगा। छटवें से प्रारंभ होकर चौदहवें तक आत्मा की शुद्ध परिणति के साथ मिलेगा। वह आत्मध्यान योग साधना में मिलेगा। जीव विराधना में नहीं भोग के माध्यम से नहीं अपितु पर पदार्थों से विरक्त होने पर मिलेगा। त्याग से मिलेगा राग से नहीं मिलेगा। आत्मध्यान जब भी मिलेगा आत्मा में मिलेगा, अनात्मा में नहीं मिलेगा। आत्मध्यान जब भी मिलेगा अन्तरात्मा को मिलेगा बहिरात्मा को नहीं मिलेगा। वह तो सातिशय पुण्यात्मा को ही मिलेगा, निन्दनीय पापात्मा को नहीं मिलेगा। आत्मध्यान जब भी मिलेगा किसी आसन्नभव्य को ही मिलेगा, दूरानुदूर भव्य को नहीं मिलेगा।

महानुभाव ! आप सभी लोग भी उसी ''आत्मध्यान'' रूपी औषधि का सेवन करें जिससे नि:संदेह आत्मा को निरोगी बनाया जा सकता है। और हम चाहते हैं आप सभी लोग चौबीस घंटे में से चौबीस मिनट कम से कम निकालें उस आत्मध्यान के लिये। पहले तत्त्व चिंतन के लिये प्रभु के चरणों में ध्यान लगायें, गुरु के चरणों में ध्यान लगायें, जिनवाणी के वचनों में ध्यान लगायें, आत्मा के स्वभाव के बारे में ध्यान लगायें, व्यवहार में ध्यान लगायें उसके बाद निश्चय तक पहुँच जायें। व्यवहार में ध्यान लगाते-लगाते ही निश्चय की प्राप्ति होगी। व्यवहार में उस धर्म ध्यान की भूमिका नहीं बनेगी तो निश्चय की प्राप्ति असंभव है।

चौबीस मिनट शांति से बैठकर के अरिहंत भगवान् का चिंतन करें, सिद्ध परमेष्ठी का चिंतन करें, भगवान् की भक्ति में लीन हो जायें। उन चौबीस मिनट के लिये बाह्य विकल्पों को शांत कर दें, खूब मुस्कुरायें। चौबीस मिनट के लिये मुक्त कंठ से खूब गायें किसी भी प्रकार से आपकी ग्रंथियाँ खुलनी चाहिये। आनंद के सागर में डूब जाईये आपके मन में जो-जो भावनायें, कल्पनायें, इच्छायें हैं वे भावनायें पूर्ण हो गयीं और आपको बहुत आनंद आ रहा है। बस देखें कि क्या अनुभूति हो रही है। चौबीस मिनट के लिये नहीं तो अठारह मिनट ही सही, वह भी नहीं तो बारह मिनट के लिये वह भी नहीं तो दस, दो या एक मिनट के लिये ही सही, कम से कम उस प्रकार का अनुभव तो करो। चौबीस सैकेण्ड के लिये भी कर लिया तो आपको लगेगा कि कितने ही रोग भाग गये। सकारात्मक ऊर्जा जहाँ होती है तो नकारात्मक ऊर्जा से उत्पन्न होने वाले सभी विकार नष्ट हो जाते हैं, भाग जाते हैं।

महानुभाव ! आप कम से कम चौबीस सैकेण्ड के लिये ही सही साम्यभाव से, होठों को बंद करके अंदर ही अंदर हँसे, आवाज बाहर नहीं निकले क्योंकि आवाज बाहर आते ही ऊर्जा शक्ति भी बाहर आयेगी और अपने मन को गुरु, प्रभु के चरणों और वचनों में लगायें। उनकी सकारात्मक ऊर्जा, वर्गणायें आपके सभी तन, मन, आत्मा के व अन्य सभी रोगों को शमन करने में मास्टर औषधि का कार्य करेंगी। महानुभाव ! व्यवहार धर्म को धारण करते-करते निश्चय ही निश्चय की संप्राप्ति, उस आत्मध्यान की संप्राप्ति संभव है। आप और हम सभी लोग उस परम आत्मध्यान की पूर्णता को प्राप्त हों और अनादिकाल से ग्रसित उन शारीरिक, वाचनिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और आत्मिक रोगों से दूर हों, इन्हीं शुभ मंगल भावनाओं के साथ।

।। श्री शांतिनाथ भगवान् की जय ।।